* श्रीः *

सचित्र

प्रसूतितन्त्र ।

(सूतिकाशास्त्र के मूल तत्व अथवा धात्री-विद्या)

लेखक-

स्व० डा० काशीनाथ नारायण गोखले

प्रकाशक-

चिकित्सक कार्यालय

कानपुर

मूल्य २॥)

मुद्रक-
राधामोहन वाजपेयी
ब्राह्मण यंत्रालय
कानपुर



प्रकाशक-
चिकित्सक कार्यालय
नयागंज-कानपुर।

भूमिका।

मूल पुस्तक के लेखक श्री काशीनाथ नारायण गोखले महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। आपने डाक्टरी में एल० एम० एस० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। डाक्टर होते हुये भी आप देश और देशी के पक्ष पोषक थे और आयुर्वेद को आदर की दृष्टि से देखते थे। इसी कारण डाक्टरी समाज में रहते हुये भी बंबई के आयुर्वेद विद्यालय में आपके प्रसूति-शास्त्र के भिन्न भिन्न विषयों पर बराबर व्याख्यान होते थे। पहिले आपके व्याख्यानों से और पीछे 'सूतिका शास्त्रों की मूल तत्वें किंवा सुईण" नामक पुस्तक से मराठी भाषा भाषियों का बड़ा उपकार हुआ और मराठी भाषा भाषियों ने इसके सहारे बडी सरलता से इस विषय का ज्ञान प्राप्त किया। आपने कहीं कहीं पर अंग्रेजी औषधि के स्थान में देशी औषधि का प्रयोग भी दिया है, वह सब भालचन्द्र कृष्ण भाटवड़ेकर जी की अबला-सजीवन पुस्तक से उद्धृत किया है।

हिन्दी साहित्य आयुर्वेद की अच्छी पुस्तकों से शून्य है। उसमें जो पुस्तकें टीका या मूल रूप से भाषा में हैं भी, उनका अधिकांश भाग निरर्थक अशुद्ध और अप्रयोजनीय या अवि

साधारण है। इस बात को विचार कर राजवैद्य प० किशोरीदत्त शास्त्री के विचारानुसार चिकित्सक-कार्यालय कानपुर ने उपर्युक्त पुस्तक अनुवादित करा कर प्रकाशित की है। इस पुस्तक से आयुर्वेदिक विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होने की पूर्ण आशा है। इस पुस्तक को पढ़ कर प्रसूतिशास्त्र की सैकड़ों बातें विद्यार्थी सहज में जान सकेंगे। हमारी समझ में प्रसूति तंत्र की इतनी पूर्ण पुस्तक अभी तक हिन्दी में यही प्रकाशित हुई है। प्रत्येक आयुर्वेद पढ़ने वाले और आयुर्वेदज्ञ वैद्य को इसका अनुशीलन करना चाहिये।

ब्रह्मावर्त्त
पौ० शु० १ स० ८१
कृष्ण बलवंत रिसबुड
वैद्य



प्रकाशक का निवेदन।

आयुर्वेद विद्यापीठ, स्थापित हुये कई वर्ष बीत चुके। कई विद्यालय भी खुल गये। उनमें अष्टांग शिक्षा का नाम भी रख दिया गया। पर अनेक विषयों के पाठ्य क्रम की पुस्तकें आज तक बनाने या तयार करने का उपक्रम नहीं किया गया। तारीफ तो यह है कि परीक्षार्थियोंके लिये नियमावलीमें पुस्तक के नाम तो दिये जाते हैं पर उस विषयकी पुस्तक का अभाव रहता है। उदाहरण के लिये "व्यवहार वैद्यक" का नाम लेना ही पर्याप्त होगा।

विद्यार्थियों की अड़चन और पाठ्य पुस्तकों का अभाव देखकर हमने इन विषयों पर पुस्तक लिखवानी चाहीं परन्तु सफलता न मिली। कारण स्पष्ट है–हम अज्ञान और उनमें अभिमान। इस समय जो विषय डाक्टरी में हैं उन्हें लिखकर देश को लाभ पहुंचाने की प्रवृत्ति डाक्टरों में नहीं। वैद्य तो उन विषयों में अल्पज्ञ हैं, इसीसे यह काम पार नहीं पड़ा। लाचारी प्रसूति तन्त्र का अभाव घटाने के लिये "सुईण" नाम की मराठी पुस्तक का यह अनुवाद श्री पं० लक्ष्मीधर जी बाजपेयी द्वारा तयार कराकर प्रकाशित किया है। पहिले यह

पुस्तक चिकित्सक मासिक पत्र में छापनी आरम्भ की गई थी, परंतु कुछ कारणों से चिकित्सक के स्थगित हो जाने से इसे अलग ही प्रकाशित करना पड़ा है। अभी इसमें अनेक त्रुटि हैं जो द्वितीय संस्करण में ठीक होंगी, परन्तु तब तक यही संतोष है कि इससे पाठक प्रसूति की कुछ बातें जान सकेंगे और आगे जानने के लिये उनकी इच्छा प्रबल होगी। तब तक संभव है कि कोई सज्जन इससे उत्तम पुस्तक प्रकाशित करदें।

प्रस्तुत पुस्तक एक बहुत अच्छे अनुभवी डाक्टर की लिखी हुई है। इससे निर्दोष कहने में भी कोई हर्ज नहीं है। अभी तक जो २/१ पुस्तक हिंदी में इस विषय की निकली हैं, अधूरी हैं। पर छोटी होने पर भी इस पुस्तक में सभी आवश्यक विषयों का समावेश हो गया है। हमें आशा है कि विद्यार्थी गण इससे लाभ उठाकर हमें अवश्य अनुगृहीत करेंगे।

प्रकाशक



प्रसूतितन्त्र ।

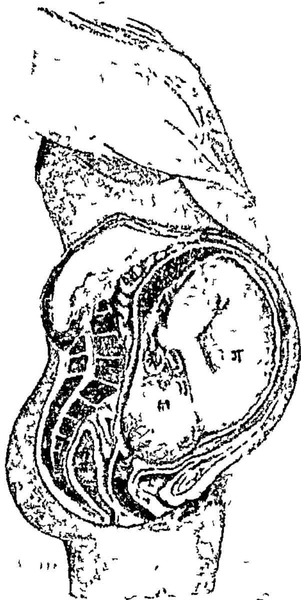
भाग–विषय–सूची ।

-भाग-

-भाग-

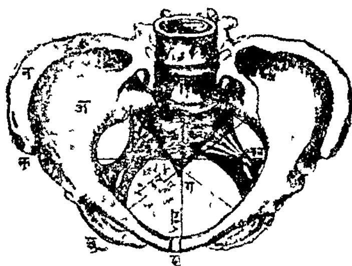


पूर्ण काल गर्भ की स्थिति।



आ–अन्न यो–योनिमार्ग ग–गर्भ घा–जरायु
म–मलाशय मू–मूत्राशय ना–गर्भनाल–पृ–२८

स्त्री-कटीर



पृष्ठ-१६

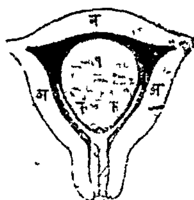
अ—नितंबास्थि, क—नितंबास्थि की नोक,

इ—जघनास्थिसन्धि, ग—गुदास्थि,

घ—नितम्बास्थि की गुलाई, ङ—आसनास्थि का किनारा

न—त्रिकास्थि,

सगर्भावस्था के कारण तीसरे महीने की गर्भाशय की फुलाई ।



पृष्ठ ४६

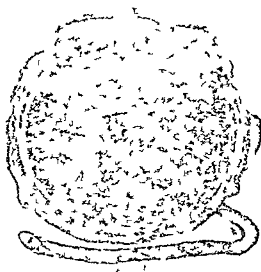
१ अंडा

कक–परावृत्तकोश

ख–मिथ्या गर्भकोश

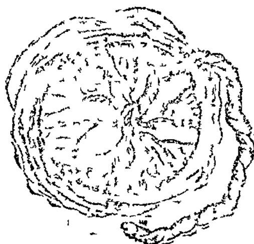
अअ–सत्य गर्भकोश

गर्भ नाल और जरायु का गर्भाशय की ओर का भाग।

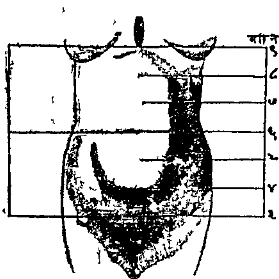


पृष्ठ–४८

गर्भ नाल और जरायु का गर्भ की ओर का भाग,



गर्भाशय का ऊर्ध्व भाग गर्भावस्था के भिन्न भिन्न महीनों में कहां तक पहुँचता है।



पृष्ठ ६२

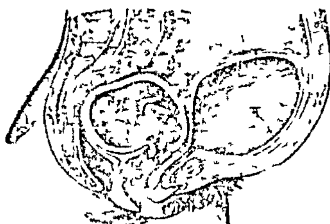
प्लासैंटा प्रीविया ।



पृष्ठ–६५

[११]

पश्चाद्गमन ।



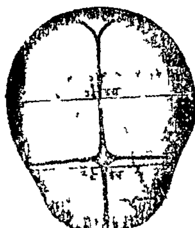
पृष्ठ १०२

म–मलाशय

मू–मूत्राशय

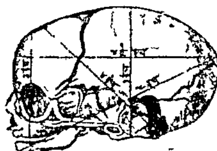
ग–गर्भाशय–ग्रीवा

शिरोस्थि (गर्भ के शिर की हड्डियां) और उसकी
उपर का व्यास और उत्लव।



पृष्ठ १३७

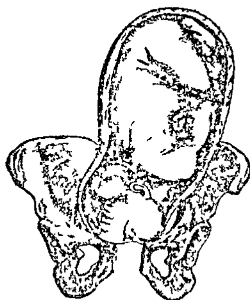
गर्भ का मस्तक।



पृष्ठ १३८

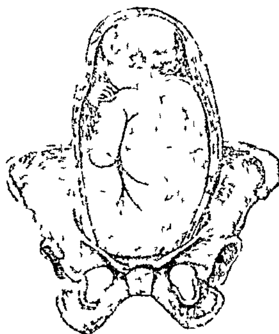
गर्भ का शिरोस्थि और उसका बगली व्यास।

मुखदर्शन ।



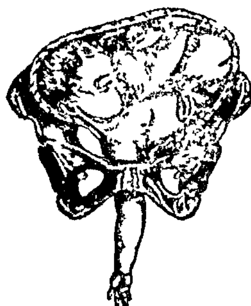
पृष्ठ २२३

गुदद‍र्शन ।



पृष्ठ २२७

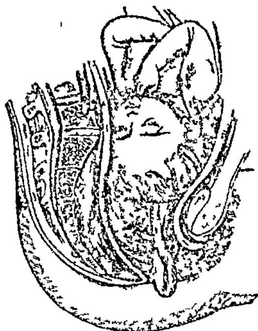
निरद्धीन जनन ।



पृष्ठ-३२

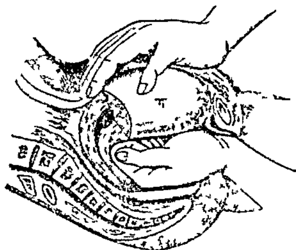
हस्त दर्शन ।

नालभ्रंश अथवा नाल दर्शन।

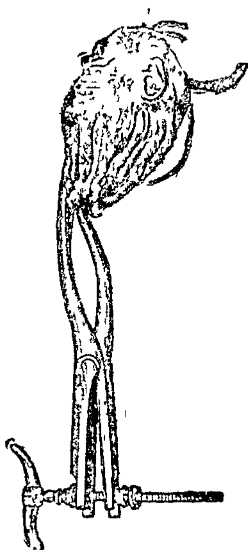


पृष्ठ २१४

गर्भाशय दाबने की रीति।

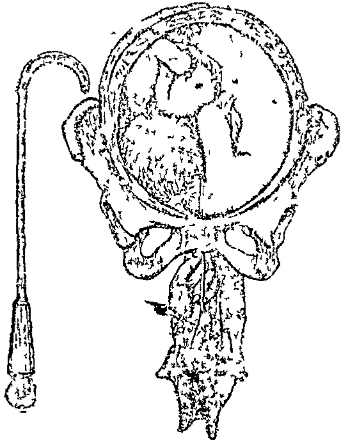


पृष्ठ २६०



क्रैनियोटमी फार्सेप्स की प्रयोग विधि। पृष्ठ २५४

गर्भग्रीवाच्छेदनविधि ।



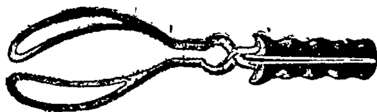
पृष्ठ २

छोटा चिमटा ।



पृष्ठ २८५

बड़ा चिमटा ।



पृष्ठ २८५

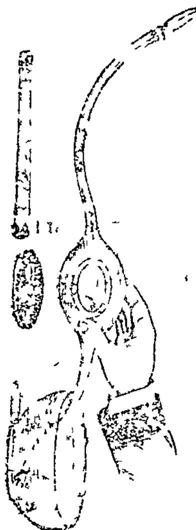
[२२]

बच्चा घुमाने की विधि।



पृष्ठ २६४

वस्ति।



पृष्ठ ३६३

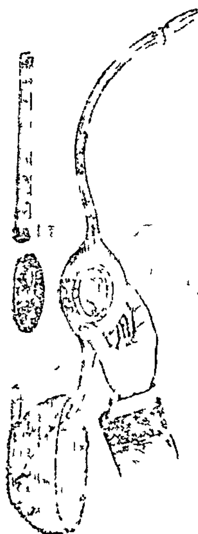
(हिजिन्सन की पिचकारी)

बच्चा घुमाने की विधि ।



पृष्ठ २६४

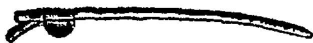
वस्ति।



पृष्ठ ३६२

(हिग्गिन्सन की पिचकारी)

मूत्रोत्सर्जक नलिका ।



पृष्ठ ३७०

॥ प्रसूतितन्त्र ।

(सूतिकाशास्त्र के मूलतत्व
अथवा
धात्री-विद्या)

पहला भाग ।

प्रास्ताविक विचार ।

कोई कार्य, चाहे बड़ा हो या छोटा, उसकी सरलता अथवा
ठिनता, अधिकांश में उसके करनेवाले पर अवलम्बित रहती
अर्थात् कार्यकर्ता मनुष्य यदि जानकार और कुछ युक्तिवान् हो,
बड़े बड़े कार्य भी बिलकुल सरलता से होजाते हैं, परन्तु
सके पास युक्ति और अनुभव दोनों का पूर्ण अभाव रहता है,
सके हाथ से, बड़े काम की तो बात ही अलग है, क्षुद्र से क्षुद्र
म भी भय-पूर्ण होता है। वह काम उसको बहुत कठिन जान
ता है, और उसको पूर्ण करने में उसे बहुत प्रयास करना
ता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि, सचमुच ही कोई
ई महत्व का कार्य ऐसे ही अज्ञानी के हाथ में आजाता है,
वह पूर्णतया बिगड़ जाता है। यह नहीं कहा जासकता कि

वह किस तरह बिगड़ता है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसमें कभी कभी धन का, और कभी कभी जीवन का, तथा कभी कभी धन और जीवन दोनों का नाश होता है।

प्रस्तुत विषय भी इसी प्रकार का है। चाहे इसलिये हो कि प्रसूति की कठिनता की हमको कल्पना नहीं है, अथवा चाहे इसलिये कहो कि, इस शास्त्रसे हमारा परिचय नहीं है, अथवा इसलिये हो कि, अधिकांश स्त्रियां प्राकृतिक क्रम से ही छुटकारा पाजाती हैं, जो भी कुछ हो, परन्तु हमको प्रसूति विषय का विशेष महत्त्व नहीं मालूम होता, और इसीलिये जब किसी स्त्री के प्रसूति होने का समय आता है, तब किसी अशिक्षित परन्तु थोड़ासा अनुभव रखनेवाली; पड़ोसिन को ही हम दाई का काम करन के लिये ठीक समझ लेते हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ भी प्रयत्न हम इसके लिये नहीं करते।

सच पूछिये तो दाई का काम, जितना हमको सरल मालूम होता है, उतना सरल नहीं होता। यही नहीं, बल्कि यह कहने में भी अतिशयोक्ति न होगी कि दाई के ऊपर ही सूतिका के जीवन-मरण का भी दायित्व रहता है। स्वाभाविक रीतिसे यदि प्रसव होजाता है, तो अच्छी दाई का ही क्यों, प्रसूति का भी हमको कोई महत्त्व नहीं जान पड़ता। इसलिये हमको बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि, हम लोग इस विषय में कुछ कुछ क्यों, अधिकाश में लापरवाही से ही काम लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि, हमको अपनी इस लापरवाही का फल, प्रत्यक्ष-

अथवा अप्रत्यक्ष रीति से कभी न कभी अवश्य ही भोगना पड़ता है। एकबार कोई स्त्री सुख से छुटकारा पाजाती है, और दूसरी बारभी वह उतनेही सुखसे प्रसव पा जायगी, इसका कोई नियम नहीं। शायद दूसरी बार वह बड़ी गड़बड़ी में पड़ जाय, और यदि दाई अच्छी न हुई, तो कदाचित् उस गड़बड़ी का परिणाम केवल कष्ट ही पर समाप्त न हो, बल्कि शायद प्रसूता के प्राणों पर भी आ जाय, और अकसर ऐसा होता भी है। ऐसे समय में आसपास की स्त्रियां, अथवा प्रसूता के आसपास की गन्दगी उठानेवाली, धनकुन या चमारिन, अथवा छोटी मोटी पुस्तकें पढ़कर तोते की तरह बोलनेवाली अनुभव शून्य दाई कहां तक काम दे सकेंगी? उनके हाथ से उपकार के स्थान में अपकार होने का ही विशेष भय रहेगा। ऐसी दशा में बहुतसा, धन, पानी की तरह बहाकर भी हम एक निरपराधिनी अबला की हत्या होने का पाप अपने सिरपर लेलेते हैं। इसलिये यदि यह इच्छा हो कि उपर्युक्त प्रकार की दुर्घटना न हो, और स्त्रियों का प्रसव से कुशलपूर्वक छुटकारा होजाय, तो पहिले अच्छी दाई की तलाश हमको अभीष्ट जान पड़ती है।

अब इस बात का थोड़ासा विचार करना चाहिये कि दाई कैसी हो। इसके लिये निम्नलिखित ज्ञातव्य दिया जाता है।

पहले मुख्य बात जो बतलानी है, वह यही है कि दाई की पोशाक चाहे सादी ही हो, परन्तु वह बिलकुल साफ, धोई हुई और चुस्त दुरुस्त होनी चाहिये। इसकी सिवाय उसमें ये दो गुण

अवश्य होने चाहिये कि, प्रत्येक कार्य ठीक समय पर करे, और अपने से अधिक जानकार मनुष्य की आज्ञा का पालन करे। चिड़चिड़े और ऊटपटाँग स्वभाव की स्त्री दाई के काम के लिये बिलकुल अयोग्य है। दाई सदैव शान्त वृत्ति की होनी चाहिये, उसका स्वभाव मिलनसार और अन्तःकरण करुणा से ओतप्रोत भरा हुआ होना चाहिये। यह बात उसे बहुत जल्द मालूम हो जानी चाहिये कि, हमारे रोगी के लिये किन पदार्थों की आवश्यकता है। रोगी से उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि, उसे देखतेही कमसे काम क्षणभरके लिये तो अवश्य रोगी अपने सामयिक कष्ट को भूल जाय। पीडा चाहे छोटीही क्यों न हो, परन्तु दाई ऐसी होनी चाहिये जो प्रत्येक बातका बारीकी के साथ निरीक्षण करसके, और चाहे जैसा विकट मोका क्यों न आपड़े, अपनी दृढ़ता को तिलमात्र भी न डिगने दे। बस, ऐसी ही स्त्री दाई का काम उत्तम प्रकार से कर सकती है। जो स्त्री और किसी की नहीं सुनती, अपना ही हठ रखना चाहती है, और केवल अपने कोरे पाण्डित्य के बल पर इधर उधर की बातें मारती है, ऐसी स्त्री को प्रसव के समान नाजुक और महत्वपूर्ण कार्य के लिये कभी नियुक्त न करना चाहिये।

दाई को प्रतिदिन स्नान अवश्य करना चाहिये। यह स्नान न सिर्फ उसकी स्वच्छता के लिये ही आवश्यक है; किन्तु इससे उसके श्रमका परिहार भी होता है। यदि संयोगवश स्नान करने

का मौका न मिले, तो तौलिये को साबुनके पानीमें भिगोकर उस से सम्पूर्ण शरीर को पोंछ डालना चाहिये, इसमें चूक न हो।

दाई को अपने व्यवसाय का तो पूरापूरा ज्ञान होनाही चाहिये किन्तु उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीरके भिन्न भिन्न अवयवों और इन्द्रियों का ज्ञान, तथा प्रत्येक इन्द्रियके कार्य का साधारण ज्ञान भी अवश्य होना चाहिये। इस अल्प सञ्चित ज्ञान का भी, समयानुसार उसके व्यवसाय में बहुत उपयोग होसकता है। इसलिये प्रत्येक दाई को "परिचारिका" के कर्तव्यों का भी थोडा थोडा ज्ञान होना चाहिये।

जन्तुनाशक औषधियां और उनका उपयोग।

जन्तुनाशक औषधियोंऔर उनके उपयोग तथा महत्त्व का ज्ञान भी प्रत्येक दाईको होना आवश्यक है, क्योंकि प्रसूति तन्त्र की नींव अधिकांश में इसी तत्वके आधार पर अवलम्बित है। जिन लोगों का यह खयाल हो कि प्रसूतिके बाद स्त्रियोंको रोग जन्तुजन्य विकार होनेका कोई भय नहीं है; अतएव जन्तुनाशक औषधियों के ज्ञानकी इस विषयमें क्या आवश्यकता है? उनको इस बात का सूक्ष्मरूप से विचार करना चाहिये कि सूतिका-ज्वर से प्रतिवर्ष कितनी स्त्रियां काल के गाल में चली जाती हैं। इससे भलीभांति मालूम होजायगा कि जन्तु-नाशक शास्त्र का कितना अधिक महत्त्व है; और उसके परिशीलन की कितनी अधिक आवश्यकता है।

सूतिका-ज्वर।

सोवड में स्त्री को अकसर जो ज्वर आजाता है, उसी को सूतिकाज्वर कहते हैं। इस ज्वर में पूतिज्वर* की भांति रक्त दूषित होकर विषैला और व्याप्त होजाता है। इस कारण यह ज्वर, जब एकबार शुरू होजाता है, तब रोगी स्त्री को ही नहीं, किन्तु आसपास की अन्य प्रसूता स्त्रियोंको भी हानि पहुँचाता है; और इसका परिणाम अत्यन्त भयङ्कर हुये बिना नहीं रहता। गत शताब्दी से जन्तुनाशक शास्त्र का चूकि बराबर उत्कर्ष होरहा है, अतएव जन्तुनाशक अनेक ओषधियों का भी आविष्कार हुआ है, इससे सूतिकावस्था के विकार के समान भयङ्कर विकारों पर यथोचित उपचार करने का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण साधन भी हाथ आगया है। वर्तमान समय में वैद्यक शास्त्र की धीरे धीरे जो उन्नति होरही है, इसका कारण भी एक प्रकार से अर्वाचीन जन्तुनाशक शास्त्र ही समझना चाहिये। इस शास्त्रके आविष्कारसे प्रतिवर्ष कितनी ही प्रसूता स्त्रियों का जीवन बचने लगा है।

पहले इंगलेंड के भिन्न भिन्न सूतिकागृहों में पन्द्रह या बीस फी सदी स्त्रियां मृत्यु को प्राप्त हुआ करती थीं। फ्रान्स और, और जर्मनी, इत्यादि देशों में भी यही दशा थी। परन्तु जन्तुशास्त्र का आविष्कार होजाने पर ज्योंही जन्तुनाशक ओषधियों

*गन्दगी से पैदा हुआ बुखार।

का उपयोग प्रारम्भ हुआ, त्योंही उपर्युक्त मृत्युसंख्या की सारी दशा बदल गई। लन्डन, पेरिस, एडिनबरा, डबलिन, कोपेनहेगन इत्यादि बड़े बड़े शहरों के सूतिकागृहों में सूतिकाज्वर से पन्द्रह अथवा बीस फी सदी की तो बातही जाने दो, मृत्यु का एक अंश भी न दिखाई पड़ने लगा। यह क्या थोड़ी बात है? वास्तव में यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति न होगी कि, वैद्यकशास्त्र के इतिहास में यदि कोई अपूर्व बात लिखने योग्य होगा, तो वह जन्तुनाशक शास्त्र और उसका उपयोग ही है। सारांश यह है कि, सूतिकाज्वर का सर्वथैव विध्वंस करने के लिये जन्तुनाशक औषधियां ही रामबाण उपाय हैं।

सूतिकाज्वर के कारण और उनका प्रतीकार।

हमने यह बात ऊपर बतादी है कि सूतिकाज्वर, पूतिज्वर की ही भांति रक्त के दूषित होजाने से होता है। रक्त किसी न किसी विषैले पदार्थ के प्रविष्ट होजाने से दूषित होजाता है। यह विषैला पदार्थ अनेक प्रकार से रक्त में प्रविष्ट होसकता है, परन्तु प्रायः वह किसी न किसी जखम के द्वारा रक्त में जाता है, और यदि स्त्री निर्बल होती है-फिर वह चाहे ही किसी कारण से निर्बल होगई हो, तो उसका परिणाम बहुतही भयङ्कर होने की सम्भावना रहती है।

सूतिकाज्वर का विष प्रविष्ट होने के लिये बहुत से, अथवा बड़े बड़े घावों की ही आवश्यकता नहीं रहती; किन्तु प्रसूति के

समय, चाहे जननेन्द्रियों पर, अथवा गर्भाशय की ग्रीवा पर भी यदि कोई छोटे मोटे जखम होजाते हैं, अथवा कहीं छिल भी जाता है, तो उससे भी इन विष-जन्तुओं का रक्त में प्रवेश होजाता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशयके भीतरी ओर का जरायु वाला स्थान तो,प्रसव होने के बाद,घाव के ही समान होता है, अतएव उसके द्वारा भी इन रोग जन्तुओं का सहजही में प्रवेश होजाता है। प्रसूति में कष्ट होने से घाव भी विशेष होते हैं। इन सब प्रकार के घावों से विषैले द्रव्य भीतर फैल जाते हैं; और इसीसे प्रसूतिका ज्वर होता है। ये विषैले द्रव्य अनेक जाति के होते हैं, पर सब का परिणाम एक ही होता है। प्रसूति के समय जरायु का कुछ भाग अथवा रक्त की गाठें यदि शेष रह जाती हैं, तो वे वहीं सड़ती हैं, और इससे विषैले अंश बनकर रक्त में मिल जाते हैं, तथा वहीं बढ़कर स्त्रियों को सूतिकाज्वर आजाता है। इसलिये दाई को अपने दोनों हाथ, नख प्रसूति के काम में आने वाले छोटे मोटे कपड़े लत्ते रूमाल तथा मल मूत्र विसर्जन के पात्र, इत्यादि बिलकुल साफ रखने चाहिये। इनमें से यदि कोई भी वस्तु अस्वच्छ रहेगी, और उसका सम्बन्ध प्रसूता स्त्री के जननमार्ग से होजायगा, तो उस गन्दगी का विष सूतिका के रक्त में मिलाने से सूतिकाज्वर के उत्पन्न होने की विशेष सम्भावना होगी।

सब प्रकार के सड़नेवाले प्राणिज पदार्थ,मृत शरीर बहता हुआ घाव, पीपसे भरेहुये गन्दे लत्ते, पटीहुई नालियां, चेचक,

खसरा, गलौग्र, विसर्प (छाले) प्रत्येक प्रकार का दूषित ज्वर, और विशेष कर, बहुत सी सूतिकावस्था की स्त्रियों के एक ही स्थानमें रहने के कारण घिरी हुई गन्दी हवा इत्यादि के कारण सूतिकाज्वर का विष उत्पन्न होता है। भली चङ्गी प्रकृतिका रज-स्राव भी इस विषके उत्पन्न होने का कारण होता है, अधिक क्यों ? किसी दूषित ज्वर के विसर्प अथवा चेचक के रोगी को देखने के बाद यदि वैसेही सूतिका स्त्री को देखने के लिये चल जायँ, तो भी उस स्त्री को सूतिका ज्वर होसकता है। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गये हैं। अतएव इस स्पर्श सक्रामकज्वर को बन्द करने के लिये वैसाही कोई उपाय भी करना चाहिये।

लन्डन इत्यादि शहरोंमें ज्योंही एकबार लोगों का यह मत निश्चित होगया कि सूतिकाज्वर सांसर्गिक है, और इसकी उत्पत्ति जन्तुजन्य विष से है, त्यों ही वहा के सूतिकागृहों की सब सूतिकाओं को भिन्न भिन्न कारखानों में भेज दिया गया। और इस प्रकार का नियम बनाया गया कि जो दाई किसी सूतिका स्त्रीका उपचार करती हो वह उस सूतिका का उपचार बन्द होजाने के बाद भी कुछ दिन तक दूसरी सूतिका के उपचार के लिये न आनेका नियम किया गया। परन्तु इससे भी सूतिका ज्वर का प्रतीकार न होसका। इससे यह विचार निरर्थक सिद्ध हुआ कि, कुछ दिन के बाद विषजन्तु आपही आप मर जाते हैं लाचार होकर वहां के लोगों ने जन्तुनाशक औषधियों का

परन्तु इसमें एक दुर्गुण है वह यह कि, धातु का बर्तन इसके संसर्ग से बहुत जल्द बिगड़ जाता है, इसलिये मरक्युरिक परक्लोराइड का द्रव सदैव कांचके पात्रमें तैयार करना अच्छा होता है।

जन्तु द्वारा रोग के प्रादुर्भाव होने की जहां जहां सम्भावना हो, वहां वहां अपने हाथ पहिले टरपेन्टाइन लगाकर साबुन के पानी से भलीभांति धो डालना चाहिये। ऐसा किये बिना जन्तु नाशक औषधि में हाथ कभी न डालना चाहिये और एकबार जब जन्तुनाशक औषधिमें हाथ डाल दे, तब ऐसा कोई भी पदार्थ भी हाथ में न ले जो जन्तु विरहित किया हुआ न हो, यहांतक कि ऐसे हाथ मामूली कपड़े में भी न पोंछना चाहिये। नाखून न बढ़ने देना चाहिये और उनमें मैलभी न बैठने देना चाहिए। जन्तुनाशक औषधि में इस प्रकार हाथ धोकर साफ करलेने के बाद फिर उनको सुहाते हुए गरम पानी में धोना चाहिए। इसके बाद फिर मधु ग्लिसरीन और गरम पानी का लपेटा ऊन चढ़ाना चाहिए। फिर उनको पोंछ कर सुखा लेना चाहिए। इससे हाथ मुलायम होजाता है।

दाई को यह कभी न भूलना चाहिए कि यद्यपि उपयुक्त औषधियाँ जन्तुनाशक अवश्य हैं, परन्तु फिर भी यदि उनका अनावश्यक उपयोग किया जायगा, तो वह प्रयोग ही स्वयं विषप्रयोग होजायगा। इस प्रकार के यदि कोई विषैले लक्षण दिखाई देने लगें तो तुरन्त डाक्टर को खबर देनी चाहिए।

कारबालिक एसिड का विषप्रयोग होनेसे खासकर पेशाब कुछ काला और हरा रङ्ग का होता है, इसके बाद कै शुरू होजाती है, नाड़ी निर्बल होजाती है, और शरीर की गर्मी कम होजाती है। कभी कभी लार अधिक आती है, और जच्चा बेहोश होजाती है।

मरक्युरिक परक्लोराइड के विषप्रयोग से मसूड़े सूज जाते हैं, और उनमें दर्द होने लगता है वांति होती है, लार गिरने लगती है, पेट में पैंठन शुरू होती है, और रक्तातिसार होजाता है। मूत्रपिंड वाले रोगी को इस औषधि से बहुत कष्ट होता है। इसलिये ऐसी जगह दाई को बहुत सावधानी से अपना काम करना पड़ता है।

उन्नत देशों के सूतिकागृहों में काम करनेवाली दाइयों को जिन नियमों का पालन करना पड़ता है, वे बड़े ही महत्वपूर्ण हैं, हमारे देश की दाइयों के लिए भी वे नियम बड़े उपयोगी हैं, अतएव वे यहां पर दिये जाते हैं।

पहले निम्नलिखित, उपर्युक्त जन्तुनाशक औषधियों के पांच प्रकार के द्रव तैयार कर रखने चाहिए, और उनको, जैसा कि आगे बतलाया गया है, समय समय पर काम में लाना चाहिये।

अ-इस मिश्रण में पानी और कारबालिक एसिड का परिमाण क्रमशः बीस में एक रहता है (२०-१)

आ-इस मिश्रण में कारबालिक एसिड यदि एक भाग हो तो पानी उन्तीस भाग रहता है (३०-१)

इ-इस मिश्रणमें कारबालिक एसिड एकभाग हो तो पानी उन्तालिस भाग रहता है (४०-१)

ई-इस मिश्रण में मरक्युरिक परक्लोराइड एक भाग हो तो पानी ९९९ भाग रहता है (१०००-१)

उ-इस मिश्रण में मरक्युरिक परक्लोराइड एकभाग हो तो पानी १९९९ भाग रहता है (२०००-१)

१-हाथ धोना-प्रत्येक दाई को अपने हाथ साबुन से साफ करके धो डालने चाहिये, नाखूनों का मैल निकाल कर उनको साफ कर डालना चाहिये। इसके बाद अ अथवा उ मिश्रण में हाथ डुबोकर निकाल लेना चाहिये। हाथ धोये विना कोई भी दाई, कभी भी, और किसी कारणवश भी स्त्री की जननेन्द्रिय का स्पर्श तक न करे।

२-सूतिकागृह के प्रत्येक कमरे में अथवा प्रत्येक सूतिकागृह के कमरे में टेबल पर सदैव निम्नलिखित औषधियां तैयार रखनी चाहिये।

१-अ जाति का मिश्रण।

२-ई " " "

३-बीस में एक के परिमाण की कारबालिक तेल की एक छोटी सी शीशी।

४-एक औंस में दो ग्रेन के परिमाण का वेसलीन और मरक्युरिक परक्लोराइड का मिश्रण।

३-जननेन्द्रिय के ऊपर का प्रत्येक रूमाल, सूतिका स्त्री के शरीर पर से निकालते ही धोने के स्थान में ले जाकर इ-मिश्रण में डालना चाहिये।

४-इस प्रकार के प्रत्येक रूमाल के धोने, खौलाने और सुखाने का काम स्वयं दाई को ही न करना चाहिये।

५-नवीन रूमाल जब सूतिका स्त्री को पहनाया जाय, तब पहिले उसे दाई अ-अथवा उ-मिश्रण में भिगोले, और तब उसे गीला अथवा सूखा, जैसी आवश्यकता हो, पहनावे।

६-सब मूत्रोत्सर्जक शलाका और योनिमार्ग में डालने की शलाका, काम होजाने पर, ४० में एक के परिमाण वाले कारबालिक तेल में रखे।

७-मूत्रोत्सर्जक शलाका का उपयोग करते समय दाई अपनी उंगलियाँ और मूत्रोत्सर्जक नलिका २० में एक के परिमाण वाले कारबालिक तेल में, अथवा एक औंस में दो ग्रेन के परिमाणवाले मरक्युरिक परक्लोराइड के वेसलीन में भिगोले।

८-काम होजानेपर मूत्रोत्सर्जक शलाका अ-अथवा ई-मिश्रण में धोकर फिर ४० में १ के परिमाण वाले कारबालिक एसिड के तेल में रखदे।

९-सब प्रकार की पिचकारियाँ और स्पंज सदैव इ-अथवा ई-मिश्रण में डुबाकर रखने चाहिये।

१०-पिचकारी का उपयोग करते समय दाई अपनी उँगलियें और पिचकारी की योनिमार्ग में डालने की नली २० में १

के परिमाण वाले कारबालिक तेल में, अथवा एक औंस में दो ग्रेन के परिमाण वाले मरक्युरिक-परक्लोराइड की घेमलीन में डुबाले, और जब पिचकारी की सब हवा बाहर निकल जाय, तथा भीतर से पानी आने लगे, तब उसका उपयोग करे।

११—पिचकारी मार कर अथवा मामूली तौर से धोने के प्रयोग जब करने हों, तब इ-अथवा ई-मिश्रण में करना चाहिये।

१२—सब प्रकार के मोम अथवा रबर के कपड़े, यदि वे सूतिका स्त्री के शरीर के नीचे रहे हों तो, आ-अथवा ई-मिश्रण में साफ करने चाहिये।

१३—जो पलँगपोश या चादरें खराब हो गई हों उनको सूतिका स्त्री के कमरे में न रखना चाहिये। उनको तुरन्त ही धोने के लिये दे देना चाहिये।

१४—यदि किसी सूतिका स्त्री का देहान्त हो गया हो, तो उसका शव तुरन्त ही सूतिका गृह से अन्तिम संस्कार के लिये भेज देना चाहिये।

१५—सूतिका स्त्री से मिलने के लिये व्यर्थ को लोगों की भीड़ न होने देना चाहिये।

१६—जो लोग शव कार्य करने अथवा उसके चीरने फाड़ने का काम करते हों, अथवा संक्रामक और स्पर्शजन्य

रोगियों के पास आते जाते हों, उनको सूतिका स्त्री के कमरे में जाने की सख्त मुमानियत रहनी चाहिये।

दाई को अपने शरीर के विषय में भी बहुत स्वच्छता रखनी चाहिये। काम करते समय उसे ऐसे वस्त्रों की पोशाक पहननी चाहिए, कि जो बारम्बार धोकर साफ किये जा सकें। ऐसे मौके पर दाई की पोशाक स्वच्छ सूती वस्त्र की होनी चाहिये।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यही सिद्ध होता है कि, अत्यन्त स्वच्छता और जन्तुनाशक द्रव्यों का काफी उपयोग-बस इन्हीं दो उपायों से सूतिकाज्वर के समान भयङ्कर रोग को भी पीछे हटा सकते हैं, और इन दोनों बातों को पूर्ण करने का कार्य अधिकांश में दाई पर ही अवलम्बित रहता है। अतएव अपनी उत्तरदायिता का भार प्रत्येक दाई को भलीभांति विचार कर लेना चाहिये।

दूसरा भाग

कटीर की हड्डियां।

अस्थि पंजर के निचले भाग और जाँघों के बीच की जगह को, अर्थात् साधारणतया कमर के सम्पूर्ण भाग को कटीर (Pelvis पेलविस) कहते हैं। (चित्र १ देखो) इसी कटीर के निचले भाग से प्रसूति के समय बच्चा बाहर

निकलता है इसलिये इस महत्वपूर्ण भाग का विशेष ज्ञान होना आवश्यक है।

सम्पूर्ण कटीर चार अस्थियों से बना होता है। इनमें से त्रिकास्थि (Sacrum सेक्रम) और गुदास्थि (Coccyx काक्सिक्स) नामक दो हड्डियां कटीर के पिछले भाग में किन्तु मध्य में होती हैं और शेष दो अस्थियां दोनों ओर से कमान की तरह आकर कटीर को पूर्ण करती हैं। इन दोनों अस्थियों को अनामकास्थि (As innominatum स् इन्नामिनेटम) कहते हैं। मूत्राशय (Bladder ब्लडर) गर्भाशय (Uterus यूटरस) और मलाशय (Rectum रेक्टम) नामक तीन अवयव कटीर की पोलाई में क्रमशः आगे-पीछे होते हैं।

छुटपन में प्रत्येक अनामकास्थि की भिन्न भिन्न तीन हड्डियां होती हैं। इनको नितम्बास्थि [Illium इलियम], आसनास्थि (Ischium इश्चियम), और जघनास्थि [Pubis प्यूबिस्] कहते हैं। बड़े होने पर ये तीनों हड्डियां मिल कर एक हड्डी के रूप में परिणत हो जाती हैं। कमर के पीछे का भाग और कूले का भाग, ये दोनों भाग मिल कर नितम्बास्थि होती है। बठने पर जो भाग नीचे टिक जाता है, वह आसनास्थि का सिरा होता है, और जो भाग सामने की दूसरी ओर की हड्डी से मिलने के लिए अगली ओर को आया हुआ होता है, उसको जघनास्थि कहते हैं। इसी जघनास्थि के आधार पर गुह्य जननेन्द्रिया रहती है।

त्रिकास्थि—यह हड्डी कुछ चौड़ी सी, तिकोनी और चपटी होती है। इसका पीठ की रीढ़ से, ऊपर की ओर से, सम्बन्ध रहता है। यह पहले भिन्न भिन्न पांच गुरियों से मिल कर बना होता है। इसकी भीतरी बाजू कुछ गहरी सा और ऊपर का सिरा आगे की ओर निकला हुआ होता है।

गुदास्थि—यह हड्डी त्रिकास्थि के अन्त में लगी हुई होती है। इसका आकार छोटा होता है, और यह हड्डी आगे-पीछे हिलती सी रहती है। कभी कभी यह जोड़ अचल रहता है, इसलिए अचल होने से प्रसूति के समय बहुत ही कठिनाई पड़ती है।

अनामकास्थि के तीन भाग।

१—नितम्बास्थि—यह अनामकास्थि का पहला भाग है, और इसका आकार कुछ चौड़ा और चपटा सा होता है। स्वाभाविक स्थिति में आंत का बहुतेरा भाग और गर्भावस्था में गर्भाशय का कुछ भाग इसके सिरे पर रहता है। इसके आगे की ओर अन्त में एक सिरा रहता है।

२—आसनास्थि—यह अनामकास्थि का दूसरा और बीच का भाग है। इसके ऊपर एक गाठदार भाग, एक सिरा और एक लम्बा सा भाग रहता है। गाठदार भाग बैठते समय नीचे टिकता है, और लम्बा सा भाग वैसा ही आगे आकर जघनास्थि में मिलता है।

३—जघनास्थि यह हड्डी सामने की दूसरी ओर की जघनास्थि से मिलती है, और इन दोनों के योग से एक कमान तैयार होती है।

कटीर का पिछला भाग त्रिकास्थि और गुदास्थि से बनता है, और आजू-बाजू का भाग तथा अगला भाग अनामिकास्थि के योग से बनता है।

इन हड्डियों की सन्धियाँ।

(१) दोनों जघनास्थियों के बीच की सन्धि-(Symhhysis Pubis सिफिसिस प्युबिस)।

(२) त्रिकास्थि और नितम्बास्थि की दाहिनी और बाई सन्धि (Sacro Illiac सेक्रो इलीयाक)।

(३) त्रिकास्थि और गुदास्थि की सन्धि-(Sacro Coccygeal सेक्रो कार्कसीजीयल) यह सन्धि भाग सबसे अधिक हिलने वाला है।

कटीर में भिन्न भिन्न छोटे बड़े सन्धि बन्धन हैं। बड़ा सन्धि बन्धन त्रिकास्थि से लेकर आसनास्थि की गाठ तक चला जाता है, इसके द्वारा त्रिकासनास्थि का छोटा छिद्र बनता है। छोटा बन्धन आसनास्थि के सिरे पर लगता है। इसके द्वारा त्रिकासनास्थि का बड़ा छिद्र बनता है। इन बन्धनों को

अधनास्थि की कमान के प्रत्येक तरफ एक एक छिद्र रहता है। उसको अंग्रेजी में आबट्यूरेटर (Abturator) कहते हैं। इस छिद्र पर एक पतला सा पडदा रहता है।

अनामकास्थि के बाहरी ओर असीत्येबुलम (Acetabulum) नामक एक कटोरी के सदृश गढ़ा रहता है। जांघ की हड्डी का ऊपरी भाग इसी गढ़े से जुड़ा रहता है। इन दोनों के योग से ऊरु नितम्ब सन्धि बनती है।

कटीर के दो भाग माने गये हैं। एक मिथ्या (False) और दूसरा सत्य (True) इन दो भागोंके बीचमें एक कँगूरा होता है। इस कँगूरे के ऊपर के भाग को मिथ्या कटीर कहते हैं। इसका विशेष महत्व नहीं होता। निचले भाग को सत्य कटीर कहते हैं। यही भाग महत्त्वपूर्ण है। इस सत्यकटीर के फिर और तीन भाग हैं। पहले भाग को प्रवेशमार्ग (Inlet इन्लेट) कहते हैं। दूसरे को पोलाई (cavity केविटी) और तीसरे को निर्गममार्ग (out-let आउट लेट) की संज्ञा दीगई है।

प्रवेशमार्ग साधारणतया तिकोना होता है। निर्गममार्ग चौकोना होता है। इसके आगे की ओर जघनास्थियों की सन्धि और पीछे की ओर गुदास्थि का सिरा रहता है। इसके बाहरी और बाईं ओर आसनास्थियों की गाड़ें और त्रिकासनास्थि-बन्ध रहते हैं।

सत्यकटीर को भिन्न भिन्न स्थानों में नापकर उसके व्यास

निकालने चाहिये, इससे यह मालूम होजायगा कि, यह किस जगह कितना लम्बा चौडा है।

कटीर के व्यास।

१ सामने का व्यास- (Antero posterior एन्टीरो पोस्टीरियर) यह प्रवेशमार्ग के पास त्रिकास्थि की उंचाई से लेकर जघनास्थि सन्धि के ऊपरी किनारे तक चार इंच तक रहता है। निर्गम मार्गकी ओर यह व्यास गुदास्थि के सिरे से लेकर जघनास्थि सन्धि के निचले किनारे तक साढे चार इंच रहता है।

२ आडा व्यास-(transverse ट्रान्सवर्स) यह प्रवेश और निर्गममार्ग की ओर क्रमश पाँच और सवा चार इंच रहता है।

३ दाहना और बाया तिरछा व्यास-(oblique ओब्लीक) दाहना तिरछा व्यास दाहिनी त्रिकनितम्बसन्धि से आगे बायें ओर पेक्टीनियल सिरे पर समाप्त होता है। बायां तिरछा व्यास बांई त्रिकनितम्बसन्धि से दाहनी पेक्टीनियल सिरे पर समाप्त होता है। यह व्यास प्रवेश मार्ग, पोलाई और निर्गममार्ग नामक तीनों स्थानों में क्रमशः साढे चार, सवा पांच और साढे चार इंच रहता है।

कटीर के व्यासों का नक्शा।

	सामने का	तिरछा	आड़ा
	इंच	इंच	इंच
प्रवेश मार्ग	४	४½	५
पोलाई	४½	५¼	४¾
निर्गम मार्ग	४½	४½	४¾

कटीर की बाहिरी माप।

एक नितम्बास्थि के किनारे से दूसरे किनारे तक सबसे बड़ा अन्तर लगभग ग्यारह इंच रहता है। दोनों ओर के नितम्बों के कटक तुल्य सिरों में यह अन्तर लगभग दस इंच रहता है।

कटीर की अक्षरेखा।

यह एक काल्पनिक रेखा है। इसी रेखा से बच्चा बाहर निकलता है। प्रवेशमार्ग की अक्षरेखा का रुख पीछे की ओर और निर्गममार्ग की अक्षरेखा का रुख आगे की ओर झुका रहता है। सत्य कटीर के जो भिन्न भिन्न व्यास ऊपर दिये

गये हैं, उनमें अस्थियों पर रहने वाले मृदु भागों के कारण बहुत अन्तर पड़ जाता है।

पुरुष और स्त्री के कटीर में भेद।

स्त्रियों के कटीरकी हड्डियां बारीक और पतली होती हैं, उनके सिरे अथवा ऊचावन छोटे और बारीक होते हैं। स्त्रियों का कटीर ऊपर से देखने पर अधिक उथला और अधिक चौडा दिखाई देता है, और इसी कारण आसनास्थि के सिरे एक दूसरे से अधिक दूर रहते हैं। नितम्बास्थि का भीतरी भाग भी अधिक चौडा होता है। जघनास्थि की कमान अधिक चौडी और अधिक गोलाकार होती है। स्त्रियों में त्रिकास्थि अधिक चौडी होती है, आब्टयूरेटर नामक छिद्र भी अधिक त्रिकोणाकार होते हैं, और सत्य कटीर का भाग भी अधिक बड़ा होता है। स्त्रियों के कटीर में जो इतना अन्तर दिखाई देता है, उसका कारण सिर्फ उनकी जननेन्द्रियां हैं। जननेन्द्रियों की वृद्धि यदि कम होती है, तो उसके हिसाब से कटीर भी छोटा होता है।

तीसरा भाग।

स्त्रियों की जननेन्द्रियां।

इन जननेन्द्रियों के दो भाग हैं-(१) बाह्य, (२) आन्तर।

बाह्य जननेन्द्रयां--जघनास्थियों की सन्धि और त्वचा

के पीच में चर्बी का एक परत रहता है। त्वचा के ऊपर का भाग केशों से आच्छादित रहता है। इसको कामाचल (Mons Veneris मान्स वेनेरिस) कहते हैं। इसके नीचे की ओर दोनों तरफ दो महा भगोष्ठ (Labia Magora लेबिया मेजोरा) रहते हैं। इस महा भगोष्ठ के भीतरी ओर इसी आकार के दो अन्य छोटे छोटे भाग रहते हैं। इनको लघु भगोष्ठ (labia minara लेबिया मिनोरा) कहते हैं। दोनों भगोष्ठों का आरम्भ ऊपर एक ही जगह से होता है, और उस जगह एक टीला सा होता है, उसको मदनध्वज (clitaris क्लिटोरिस) कहते हैं, मदनध्वज के नीचे वेस्टिब्यूल (vesti bule नामक एक तिकोनी चिकनी जगह होती है। वेस्टिब्यूल के नीचे की ओर, अर्थात् मनध्वज से लगभग एक इन्च के अन्तर पर, मूत्रमार्ग का मुह रहता है, इसे मूत्रद्वार (meatus urinarius मियेटस यु रिनेरियस) कहते हैं। मूत्राशय में संचित होने वाला पेशाब इसी द्वार से बाहर निकलता है। दाई को इस मूत्रद्वार की अच्छी जानकारी होनी चाहिये; क्योंकि पेशाब निकालने के लिये उसको कभी कभी इस छिद्र से मूत्रोत्सर्जक शलाका डालने का मौका आता है। यह शलाका किस प्रकार से डालनी चाहिये, इसका वर्णन आगे बतलाया जायगा।

मूत्रद्वार के नीचे योनिमार्ग का द्वार रहता है, और इसके भीतर फिर गर्भाशय का मुख होता है। कुमारिकावस्था में

योनिद्वार पर एक पतली, नाजुक और अर्द्धचन्द्राकृति त्वचा रहती है, उसको योनिजवनिका (hymen हायमेन) कहते हैं। यह पड़दा सभी स्त्रियों में एक ही सा नहीं होता। कुछ स्त्रियों में वह बड़ा रहता है, और कुछ में यह बिलकुल ही नहीं होता। यह पड़दा पहले सभोग के समय फट जाता है। जिन स्त्रियों के बच्चे होते हैं, उनमें इस फटे हुए पड़दे के छोटे छोटे सिरे योनि के भीतर लगे रहते हैं।

योनिद्वार के एक ओर विटप (Perinium पेरिनियम) होता है, और विटप के पिछली तरफ मलविसर्जक छिद्र (Anus एनस) होता है। स्वाभाविक दशा में विटप की लम्बाई डेढ इंच रहती है, परन्तु प्रसव काल में यह भाग तनकर रबर के समान पतला दिखाई देता है। यदि यह विटप अनुचित रूप से बढ़ जाता है, तो कभी कभी मलद्वार तक भी इसके फाटने की सम्भावना रहती है।

मलविसर्जक छिद्र से मल बाहर निकलता है।

योनिमार्ग (vegina वजायना) तो बाह्य और आन्तर जननेन्द्रियों का संयोजक भाग है। गर्भाशय स्राव और गर्भधारण, ये दोनों क्रियायें इसी मार्ग से होती हैं, और इसी से गर्भ बाहर निकलता है।

योनिमार्ग की लम्बाई लगभग तीन इंच होती है, परन्तु विशेष अवसरों पर वह तन कर बहुत बढ़ जाती है, और उसका स्थान बहुत लम्बा-चौड़ा हो जाता है। योनि में

अन्तस्त्वचा की परतें लगी रहती हैं, और योनिमार्ग जब तनता है, तब वे सब परतें लुप्त हो जाती हैं, और यह मार्ग लम्बा चौड़ा हो जाता है।

बच्चे वाली स्त्रियों की अपेक्षा कुमारिकाओं में यह योनिमार्ग अधिक लम्बा होता है। कौमार्यावस्था में इस मार्ग में एक छल्ली जाने भर की जगह रहती है, परन्तु प्रसूति काल में इसी मार्ग से पूरा पूरा बढ़ा हुआ बच्चा बाहर आ सकता है। वास्तव में यदि विचार करके देखा जाये, तो योनिमार्ग को नली की उपमा नहीं दी जा सकती, क्योंकि इसके दोनों किनारे एक दूसरे से मिले होते हैं। इस मार्ग के ऊपर की ओर अथवा शिखर के पास गर्भाशय और गर्भाशय के आगे की ओर मूत्राशय, मूत्रमार्ग और जघनास्थियों की सन्धियां होती हैं, गर्भाशय के पीछे की ओर, विट्प, मलमार्ग और त्रिकास्थि होती हैं।

योनिमार्गके अन्दरसे एक प्रकार का पतला और श्लेष्मल स्राव होता रहता है। गर्भवती स्त्रियों में और सम्भोग के समय यह स्राव अधिक परिमाण में होता है। कभी कभी रोग के कारण भी यह परिमाण बढ़ जाता है, और उस दशा में इसे श्वेतप्रदर* (Leucorrhaea ल्यूकारिया) कहते हैं। प्रसूति के समय यह स्राव इतना बढ़ जाता है कि, इससे सारा जननमार्ग तर होजाता है, और इससे गर्भ के बाहर निकलने

---

*पसेद्दी रोग रूप का अस्थिर्भाव कहते हैं।

में भी सुविधा होजाती है। यह हम ऊपर बतला चुके हैं कि योनिमार्ग के ऊपर की ओर और शिखर के पास गर्भाशय रहता है, उसके ऊपर मूत्राशय और नीचे मलाशय होता है। गर्भाशय के भीतर की पोलाई में गर्भ की वृद्धि होती है, और यह गर्भ, ज्यों ज्यों गर्भाशय आकुञ्चित होता जाता है, त्यों त्यों आगे की ओर खसकता जाता है। गर्भाशय का आकार लम्बे अमरूद का जैसा होता है, उसकी लम्बाई चौड़ाई मुटाई क्रमशः तीन डेढ़ और एक इंच होती है। उसकी पोलाई की लम्बाई ढाई इंच होती है, और वज़न लगभग एक औंस से कुछ अधिक होता है। बच्चे होजाने के बाद गर्भाशय पहले की अपेक्षा कुछ अधिक बड़ा और अधिक भारी होजाता है।

गर्भाशय के मुख्य भाग को (Fundus फण्डस) बढ़ांश और योनिमार्ग के पास जो उसका झुका हुआ भाग होता है, उसे ग्रीवा (Servix सर्विक्स) कहते हैं। गर्भाशय की पोलाई में भीतर की ओरसे श्लेष्मल होती है। ५

गर्भाशय की ग्रीवा थोडी बहुत झुकी हुई रहती है। जिन स्त्रियों के अभी तक बच्चा नहीं हुआ है उन में लगभग पौन इञ्च तक वह ऊपरके भाग में श्राई हुई होती है। गर्भाशय का मुख एक अडाकार श्राडी दराज के समान होता है, उसे ग्रीवा बहिर्मुख (External os, एक्सटर्नल श्रास) कहते हैं गर्भाशय के अङ्ग की पोलाई जिस जगह ग्रीवा के भीतरी सिरे में मिलती है उस भाग को ग्रीवान्तर्मुख (Internelas इन्टरनल श्रास) कहते हैं। जिन स्त्रियों के बच्चे नहीं हुये हैं, उन स्त्रियों की ग्रीवा बहिर्मुख इतनी छोटी होती है कि उसमे लगभग चार नम्बर की मूत्रोत्सर्जक शलाका जासकती है। गर्भाशय की ग्रीवा बहिर्मुखके दो भाग हैं। एक पूर्व ग्रीवौष्ठ श्रोर दूसरा पश्चिम ग्रीवौष्ठ। पूर्व ग्रीवौष्ठ बहिर्मुख के अगले भाग की श्रोर रहता है; श्रौर पश्चिम ग्रीवौष्ठ उसके पीछे की श्रोर रहता है। बच्चे वाली स्त्री के गर्भाशय की ग्रीवा बच्चे रहित स्त्रीकी ग्रीवाकी अपेक्षा अधिक सिकुडी हुई रहती है।

बच्चेवाली स्त्रियों के गर्भाशय की ग्रीवा मोटी होजाती है, श्रौर उसमें खरोंचे पड आते है; श्रौर गर्भावस्था में ग्रीवा बहिर्मुख से कुछ अन्तर तक इतनी बडी होजाती है कि उसमें उँगली का सिरा तक जासकता है।

गर्भाशय का अङ्ग स्नायुतन्तुश्रों का बना होता है; श्रौर उनमें से बहुत से तन्तु गर्भाशय के अङ्ग में चारों श्रोर गये हुए होते है। ये स्नायुतन्तु गर्भाशय की भिन्न भिन्न रक्तवाहिनियों

में भी सुविधा होजाती है। यह हम ऊपर बतला चुके हैं कि योनिमार्ग के ऊपर की ओर और शिखर के पास गर्भाशय रहता है, उसके ऊपर मूत्राशय और नीचे मलाशय होता है। गर्भाशय के भीतर की पोलाई में गर्भ की वृद्धि होती है, और यह गर्भ, ज्यों ज्यों गर्भाशय आकुञ्चित होता जाता है, त्यों त्यों आगे की ओर खसकता जाता है। गर्भाशय का आकार लम्बे अमरूद का जैसा होता है, उसकी लम्बाई चौड़ाई मुटाई क्रमशः तीन डेढ़ और एक इंच होती है। उसकी पोलाई की लम्बाई ढाई इंच होती है; और वजन लगभग एक औंस से कुछ अधिक होता है। बच्चे होजाने के बाद गर्भाशय पहले की अपेक्षा कुछ अधिक बड़ा और अधिक भारी होजाता है।

गर्भाशय के मुख्य भाग को (Fundus फंडस) बस्तीश और योनिमार्ग के पास जो उसका झुका हुआ भाग होता है, उसे ग्रीवा (Servix सर्विक्स) कहते हैं। गर्भाशय की पोलाई में भीतर की ओरसे श्लेष्मल त्वचा लगी होती है। यह त्वचा मुंह, नाक, आमाशय, इत्यादि स्थानों की श्लेष्मल त्वचा के समान ही होती है। आमाशय की श्लेष्मल त्वचा की भांति इस श्लेष्मल त्वचा के द्वारा भी अन्य पदार्थ सोखे जाते हैं, और यह बात अत्यन्त महत्व की है कि, उपर्युक्त शोषणक्रिया होने की सम्भावना विशेषतया प्रसूति के बाद ही रहती है, क्योंकि इस शोषक शक्ति के कारण ही सूतिकाज्वर के समान भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं।

अन्त फल तक गई हुई होती हैं। प्रत्येक नलिका तीन से लेकर साढ़े चार इञ्च तक लम्बी होती है। उसका छिद्र इतना छोटा होता है कि एक कांटा भीतर जा सकता है। प्रत्येक नली का मुख कुछ चौडाई लिये हुये होता है। उसके सिरे पर झालर के समान सिरे की किनार होती है। जब अन्त फल से अण्डा बाहर निकलता है, तब यह झालर का मुह अन्त फल में लग जाता है, और वह अण्डा भीतर की ओर अपने अन्दर खींच लेता है। इसके बाद वह अण्डा अण्डवाहक नलिका के द्वारा गर्भाशय में आ पहुँचता है।

अन्त फल (Ovaries ओवरीज) एक प्रकारकी ऐसी दो इन्द्रियॉ हैं, जो चपटी और अण्डाकार गाठों के सदृश होती हैं। इनको अण्डाशयभी कहते हैं। प्रत्येक अन्त फल एक इञ्च लम्बा और आधा इञ्च मोटा होता है। ये गर्भाशय के अङ्ग से लगभग एक इञ्च अन्तर पर, प्रत्येक ओर एक एक रहते हैं। गर्भाशय के अङ्ग में वे बन्धन से बँधे हुए रहते हैं। अन्त फलों में ही अण्डे तैयार होते हैं। प्रत्येक अण्डा एक छोटीसी थैली में रहता है। अण्डा जब पक जाता हैं, तब उसकी थैली अन्त फल के किनारे के पास आकर फूट जाती है। अण्डा उससे निकल कर अण्ड-वाहक नलिका से झालरदार मुह में जा पड़ता है। वहा से फिर वह गर्भाशय में जा पहुँचता है। अण्डवाहक नलिका के आगे की ओर दो चिमड़े अण्डाकार बन्धन होते हैं। इन बन्धनों को राउण्ड लिगामेंट्स (Round ligammtes) कहते हैं।

के चारों तरफ लगे हुये होते हैं। ये तन्तु जब आकुञ्चित होते हैं तब रक्तवाहिनियां बन्द हो सकती हैं। उनके बन्द होने का क्या महत्व है, सो पीछे बतलाया जायगा।

इन स्नायुतन्तुओं के अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के स्नायु-तन्तु गर्भाशय के अंग में होते हैं उनमें से एक प्रकार के स्नायु तन्तु पूर्व ग्रीवौष्ठ से निकलकर ऊपर जाते हैं और फिर गर्भाशय के अङ्ग पर से लौटकर नीचे की ओर सामने आकर पश्चिम ग्रीवौष्ठ में समाप्त होते हैं, प्रसूति के समय में जब ये स्नायुतन्तु आकुञ्चन पाते हैं तब ग्रीवा का बहिर्मुख खुल जाता है और उसके अधिक चौड़े होने में सहायता मिलती है। कुछ स्नायु तन्तु अंडाकार होते हैं, वे ग्रीवान्तर्मुख के आसपास और अंडवाहक नालिकाओं के छिद्रों के आसपास रहते हैं।

गर्भाशय की आकुञ्चनशक्ति बहुत प्रबल होती है, इस कारण यह चाहे जितना छोटा बड़ा हो सकता है, उसके भीतर का बढ़ता हुआ गर्भ जैसा जैसा बड़ा होता जाता है, वैसा वैसा यह भी बड़ा होता जाता है। गर्भाशय के आकुञ्चन का उपयोग दो तरह से होता है। एक तो प्रसूति के समय यह बच्चे को बाहर निकालने, और दूसरे प्रसूति के बाद रक्तस्राव बन्द करने में होता है।

प्रत्येक ओर एक एक के हिसाब से दो ओर दो अंडवाहक नलिकायें (Fallopian tubes फालोप्युअन ट्यूब्स) रहती हैं ये आकार में छोटी और पोली होती हैं। ये गर्भाशय से लेकर

- स्तन और गर्भाशय का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये गर्भाशय के भिन्न भिन्न रोगोंमें स्तनों को भी वेदना होने लगती है। इसी प्रकार प्रसूति के बाद जब बालक स्तनपान करने लगता है, तब गर्भाशय का भी आकुचन प्रारम्भ होजाता है।

बालक की स्तनपान क्रिया को अंग्रेजी में (Lactation) लेक्टशन कहते हैं।

चौथा भाग।

आर्तव।

स्त्रियों के गर्भाशय से प्रतिमास एकाएक जो एक प्रकार का रक्त बहने लगता है, उसे आर्तव या रज कहते हैं। इस रक्त स्राव के साथ ही एक और श्लेष्मस्राव भी होता है। यह स्राव गर्भाशय और योनिमार्ग के भिन्न भिन्न सूक्ष्म पिण्डोंसे होता है।

इस प्रकार का रक्तस्राव न सिर्फ मनुष्य जाति में ही पाया जाता है, बल्कि बन्दरों में भी देखा जाता है। गौ, हथिनी और कुत्ती इत्यादि जानवरों में भी एक प्रकार का ऐसा ही रक्तवर्ण स्राव देखा जाता है; परन्तु वह मनुष्य जाति की भांति उनके गर्भाशयसे नहीं होता, किन्तु उनके योनिमार्गसे होता है, उसको (Rut रट) मदस्राव कहते हैं।

जानवरों के इस मद और मनुष्य जाति के उपर्युक्त रज में कोई अन्तर नहीं रहता; और यदिहो भी तो बहुतही थोड़ा है। अण्डे देने वाले प्राणियों का अण्डे देने का समय

ये बन्धन गर्भाशयके लिये आधारभूत हैं। मदनाचल औ महाभगौष्ठ से आकर ये मिल जाते हैं। अन्तःफल अण्डवाह नलिकायें और गर्भाशय बन्धन, ये सभी उदरान्तर्गत त्वच (Peritonium) से वेष्टित होते हैं; और इस कारण उनके आधार मिलता है,मूत्राशयगर्भाशयऔर मलाशयभी उसी त्वच से वेष्टित होते हैं, और इसलिये वे तीनों परस्पर सम्बन्धित भी रहते हैं। इस प्रकार चूंकि उनका परस्पर सम्बन्ध होता है इस कारण यदि किसी एक को भी थोडी सी विकृति होजाती है तो सभी को कुछ न कुछ उसका परिणाम सहना पडता है।

स्तन (Breastes ब्रेस्टस्) इन्द्रियों को भी जननेन्द्रियों में ही माना गया है। इनमे छाती का दाहिना और बायां हिस्सा व्याप्त रहता है। स्तनों का आकारभिन्न भिन्न स्त्रियों में भिन्न भिन्न होता है। गर्भावस्था में वे बहुत बडे और उन्नत हो जाते हैं। बच्चों का पोषण होनेके लिए दूध उत्पन्न करना स्तनों का मुख्य धर्म है।

चूचुक Nipples निपल्स् स्तनोंके ऊपर के चोंगी सदृश भाग को कहते हैं। सब दुग्धवाहिनिया यहीं आकार मिलती हैं। चूचुक के पृष्ठभाग पर बहुत से छिद्र होते हैं, जिनसे दूध निकलकर बच्चे के मुँह में जाया करता है।

चूचुक के आसपास जो स्तन का भाग रहता है, उसका रङ्ग भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें बदला करता है। कुमारिकावस्था में यह रङ्ग गुलाबी होता है, गर्भावस्था में कुछ काला होजाता है, और फिर प्राय. वैसाही बना रहता है।

रहती क्योंकि कभी कभी रजःस्राव बहुत देरसे शुरू होता है परन्तु, हां, उनके अण्डाशय से निकलनेवाले वे अण्डे जरूर उससे पहले ही तैयार होकर निकलने लग जाते हैं, और इस कारण स्त्रियों का रजोदर्शन हुए बिना भी गर्भ रहने की सम्भावना रहती है। इसके विरुद्ध कभी कभी ऐसा भी होता है कि, स्त्रियों में रजोदर्शन बहुत जल्द शुरू होजाता है, और उनके अण्डाशय डिम्बस्राव अन्त कालमें अण्डे पीछेसे तैयार होते हैं।

आर्तव का प्रारम्भ होजानेपर लड़की का कुमारावस्था चला जाता है और उसे स्त्रीत्व प्राप्त होता है, अर्थात् इस समय से उसकी गर्भाशयादि जननेन्द्रियों का आकार अधिक बड़ा होने लगता है, और उसके जघनास्थियों के ऊपर की त्वचा पर रोम उत्पन्न होने लगते हैं, उसके कटीर का आकार अधिक अधिक चौड़ा दिखाई देने लगता है, और उसके स्तन बड़े होने लगते हैं उसकी मानसिक दशा में अन्तर पड़जाता है, और वह कुछ अधिक मर्यादाशील होजाती है। उसके कटीर और जननेन्द्रियों के उपर्युक्त विकास और परिवर्तन एकदम नहीं होते, किन्तु क्रम क्रम से होते जाते हैं। बीसवें वर्ष के लगभग स्त्रियों को उपर्युक्त भीतरी और बाहरी जननेन्द्रियों में पूर्णता आजाती है अर्थात् वे अपनी मानवजाति संसार में छोड़ जाने का सृष्टिविषयक कर्तव्य बजाने के लिये पूर्णतया समर्थ होती है, अर्थात् इस अवस्था में ही वे वीरमाता होसकती हैं; अर्थात्

है। उपर्युक्त मद उत्पन्न होने पर नर और मादी दोनों एकत्र होते हैं, इस क्रिया को साधारण भाषा में जुड़ना अथवा लगाना कहते हैं, इस समय उनकी जननेन्द्रियों में रक्त का बहुतसा संचय हो रहता है, तथा उसमें जो स्वाभाविक श्लेष्मस्राव होता रहता है, वह भी बढता है, और उसके साथ ही अन्दर के रक्त का भी कभी कभी कुछ स्राव होता है। ऐसे समय में उन जानवरों की मादी के शरीर से एक प्रकार की गन्ध निकलती है, और कहते हैं उसी गन्ध से नर मोहित होजाता है। हरिन साम्हर, इत्यादि जानवरों में नरों को भी मदकाल प्राप्त होता है, और उस मदकाल में ही वे नर अपने शुक्रकीट बाहर डाल सकते हैं।

मनुष्यजाति में सम्भोग का कोई काल निश्चित नहीं रहता अर्थात् स्त्री और पुरुष का शरीर सम्बन्ध चाहे जब होसकता है। स्त्रियों में सङ्ग की इच्छा रजस्राव के समय कुछ बढती है, परन्तु रज स्राव की समाप्ति पर वह बहुत जोर पकडती है, कभी कभी इससे बिलकुल बिपरीत दशा होजाती है। अर्थात् रज स्राव के प्रारम्भ में ही सङ्ग की इच्छा चरमसीमा तक पहुँच जाती है। अधिकांश स्त्रियों के पहले रज स्राव के समय से ही उनके अण्डाशय से अण्डे बाहर निकलने लगते हैं। स्त्रियों के गर्भवती होने के लिये, उनके अण्डाशय से इन अण्डों के बाहर निकलने की ही मुख्य आवश्यकता रहती है; रजस्राव के शुरू होने अथवा न होने पर उनको गर्भधारणा अवलम्बित नहीं

होता। बाकी अन्य सब समयमें प्रारम्भ से लेकर चालीस अथवा पैंतालीस वर्ष की अवस्था तक बराबर उस रजोदर्शन होता रहता है। कभी कभी पचासवें वर्ष के अन्त तक भी यह जारी रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि रज-स्रावकाल लगभग तीस से पैंतीस वर्ष तक रहता है। कभी कभी यह स्राव आठ वर्षकी अवस्था तकभी देखा गया है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत ही कम पाये जाते हैं। जिन स्त्रियों को रज स्राव शीघ्र ही प्रारम्भ होता है, और जिनको बहुत बार गर्भ रहता है, उन स्त्रियों में यह अधिक वर्ष तक टिकता है।

हमने ऊपर यह कहा है कि गर्भावस्था में और बच्चे को दूध पिलाने की अवस्था में स्त्रियों को रजोदर्शन नहीं होता, परन्तु इस नियम के भी अपवाद मौजूद हैं अर्थात् कुछ स्त्रियों में गर्भस्थापना के बाद भी दो तीन मास तक आर्तव जारी रहता है और गर्भावस्थाके अतिरिक्त और भी कुछ ऐसे कारण हैं कि जिनसे रजोदर्शन कभी कभी बन्द होजाता है।

यह आर्तव का स्राव प्रति अट्ठाइस दिन के बाद होता रहता है, और चार दिन तक रहता है। इन चार दिनोंमें जितना स्राव होता है, उसका परिणाम लगभग दस से बीस तोले तक रहता है। यह स्राव बराबर जोर से नहीं होता, किन्तु धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा होतारहता है। उसका रङ्ग अशुद्धरक्तकीभांति कुछ कालापन लिये हुए लाल रङ्ग का होता है और उसमें एक प्रकारकी गन्ध आती है। यह स्राव साधारणतया पतला होता

उनकी सन्तति मन और शरीर से दृढ़, तेजस्वी, और पराक्रमी हो सकती है।

रजःस्राव का समय—हवा, रहने की पद्धति और जाति इन्हीं तीन बातों पर यह आर्तवस्राव का समय, अधिकांश में अवलम्बित रहता है। भारतवर्ष के समान सम शीतोष्ण और उष्ण प्रदेशों में स्त्रियोंको रजोदर्शन बारहवें अथवा तेरहवें वर्ष से प्रारम्भ होता है, परन्तु इंगलैण्ड के समान शीत प्रदेशों में उसका आरम्भ एक दो वर्ष बाद होता है। रज स्राव शीघ्र होने के और भी कुछ कारण हैं। ग्रामीण दशा और गरीबी में दिन काटनेवाली लड़कियों की अपेक्षा शहर में रहकर उपन्यास पढने, अमीरी और ऐश आराममें समय बितानेवाली लडकियों को रजोदर्शन शीघ्र होता है। मानसिक बिकारों को उत्तेजना मिलने और पुरुषसे शीघ्र समागम होजानेसे भी ऐसा होता है।

जो लडकियां शरीरसे हृष्टपुष्ट होती हैं, उनको तेरहवें वर्ष से रजोदर्शन होने लगता है। परन्तु इस नियम के भी अपवाद हैं। अँगरेजी वैद्यक के उदाहरण में यह बतलाया गया है कि एक लडकी को दूसरे अथवा तीसरे ही साल से रजस्राव शुरू होगया था; और नवेंवर्ष में उसके गर्भस्थापना भी होगई थी। कितनी ही लडकियों को रजोदर्शन दशवें वर्ष होता है; और कितनी ही लडकियोंको बीस वर्षकी अवस्था तक नहीं होता। जब स्त्री गर्भवती होती है अथवा प्रसूति के बादजब वह बच्चे को दूध पिलाती रहती है, तब प्राय उसको आर्तवस्राव नहीं

रज स्राव के रक्त में केवल इतना ही दोष है कि वह बहुत अधिक बढ़ जाता है, अन्यथा मडन की क्रिया के अतिरिक्त जैसा कि लोग मानते हैं, उसमें कोई विशेष खराबी नहीं रहता। इस आर्तव के विषय में पहिले लोगों के भिन्न भिन्न खयाल थे परन्तु वे खयाल अब प्राय दूर होरहे हैं। अब यह बात निश्चित हो गई है कि रज स्राव का रक्त गर्भाशय की अन्तस्त्वचा से ही बाहर निकलता है। हां कभी कभी रक्तस्राव के समय सम्पूर्ण जननेन्द्रियोंमें अधिक रक्त आता है और इससे गर्भाशय ग्रीवा की अथवा योनिमार्ग की रक्तवाहिनियां फूट जाती हैं और उनसे अधिक रक्तस्राव होने लगता है। प्रसवमार्ग में यदि कोई व्रण या नासूर होजाता है, तो उससेभी रज स्रावके समय रक्त बहने लगता है, कभी कभी तो यह स्राव अण्डग्राहक नलिकाओं से भी होता है। गर्भाशय की अन्तस्त्वचा से जो रक्त का स्राव होता है उसके विषय में अबतक बड़ा मतभेद चला आता है। कुछ लोगों का मत है कि इस अन्तस्त्वचा की केश वाहिनियों (पतली नसों)में छोटेछोटे छिद्र होते हैं, परन्तु उनके मुह स्नायुओं के आकुंचन के कारण सदैव बन्द रहते हैं। जब रक्त का स्राव होना है, तब वहांके स्नायु ढीले पड़जाते हैं और उन केश-वाहिनियों के छिद्र खुल जाते हैं और तब उनसे यह स्राव होने लगता है।

इस विषय में एक और मत है, जो प्राय सब जगह मान्य है, वह यह है कि रज स्राव के समय गर्भाशय की अन्तस्त्वचा

है। और उसमें रक्त और श्लेष्मा रहता है। रक्त स्राव का रक्त जमता नहीं, इसका कारण यह है कि योनि के स्राव में एक आम्लरस होता है, जो रक्तस्राव से मिलकर बाहर निकलता है। हम यदि गर्भाशय के स्राव को योनिमार्ग के अम्लस्राव से मिलने न दें और किसी युक्ति से उसको वैसाही बाहर निकाल लें, तो दूसरे रक्त की तरह यह भी जमा हुआ दिखाई देगा। यह स्राव यदि अधिक होता है, अथवा वह एकदम होता है और योनिस्राव से उसका मिश्रण नहीं होता, तो वह स्राव दूसरे रक्त की भांति ही जम जाता है। गर्भाशय से स्रवित होने वाला रक्त-यदि गर्भाशय में ही बहुत देर तक सञ्चित हो रहता है, तो वह योनि के अम्लस्राव से मिलने के पहिले जहां का तहां ही जम जाता है। और इस कारण जमे हुए रक्त के गोले स्राव के साथ बाहर निकल आते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि गर्भाशय में कुछ बिगाड़ होजाने के कारण ही ये रक्त के गोले तैयार होते हैं। इस स्राव के रक्त में दूसरे रक्त की भांति रक्तपिण्ड इत्यादि भी होते हैं और उसके अतिरिक्त उसमें श्लेष्मलपिण्ड तथा योनिमार्ग और गर्भाशय के निर्जीव और रक्तरहित श्लेष्मल त्वचा के कोश भी रहते हैं। यह स्राव यदि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखा जाय तो इसमें उपर्युक्त सब बातें अच्छी तरह दिखाई देती हैं। कभी कभी इस स्राव में गर्भाशय की श्लेष्मल त्वचा के बारीक बारीक टुकड़े भी दिखाई पड़ते हैं इस स्राव की गन्ध वैसीही होती है जैसी जानवरों के शरीर से वाले मद की होती है।

रजो स्राव के रक्त में केवल इतना ही दोष है कि यह बहुत अटर सड़ जाता है, अन्यथा मेडन की क्रिया के अतिरिक्त जैसा कि लोग मानते हैं, उसमें कोई विशेष खराबी नहीं रहती। इस आर्तव के विषय में पहिले लोगोंके भिन्न भिन्न खयाल थे परन्तु वे खयाल अब प्राय दूर होरहे हैं। अब यह बात निश्चित हो गई है कि रज स्राव का रक्त गर्भाशय की अन्तस्त्वचा से ही बाहर निकलता है। हां कभी कभी रक्तस्राव के समय सम्पूर्ण जननेन्द्रियोंमें अधिक रक्त आता है और इससे गर्भाशय ग्रीवाकी अथवा योनिमार्ग की रक्तवाहिनियां फूट आती हैं और इनसे अधिक रक्तस्राव होने लगता है। प्रसवमार्ग में यदि कोई व्रण या नासूर होजाता है, तो उसमेंभी रज स्राव समय रक्त बहने लगता है, कभी कभी तो यह स्राव अण्डवाहक-नलिकाओं से भी होता है। गर्भाशय की अन्तस्त्वचा से जो रक्त का स्राव होता है उसके विषय में अबतक बडा मतभेद चला आता है! कुछ लोगों का मत है कि इस अन्तस्त्वचा की केश वाहिनियों (पतली नसों)में छोटेछोटे छिद्र होते हैं, परन्तु उनके मुह स्नायुओं के आकुंचन के कारण सदैव बन्द रहते हैं। जब रक्त का स्राव होता है, तब वहाके स्नायु ढीले पडजाते हैं और उन केशवाहिनियों के छिद्र खुल जाते हैं, और तब उनसे, यह स्राव होने लगता है।

इस विषय में एक और मत है, जो प्राय सब जगह मान्य है, वह यह है कि रज स्राव के समय गर्भाशय की अन्तस्त्वचा

गर्भाशयसे न्यूनाधिक परिमाणमें अलग होजाती है। इस अलग होजाने वाले भाग की केशवाहिनियां टूट जाती हैं और इसी कारण यह रक्तस्राव होता है।

स्त्रियों में जब अण्डाशय का आविर्भाव बिलकुल ही नहीं हो अथवा हो और वे शास्त्र प्रयोग से निकाल डाले हों तब रज स्राव बिलकुल ही नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि उनके अण्डाशय का रज स्रावसे कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य ही होता है। रजोदर्शन के समय में और अण्डाशय अथवा अन्तःफल में अण्डे तैयार होनेके समय में घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। अण्डे परिपक्व होनेके समय में गर्भाशय और अन्तःफलों में रक्त का बहुत सा सञ्चय होता है, इस रक्त सञ्चय और रजोदर्शन काभी बहुतसा सम्बन्ध रहता है। परन्तु इतनेहीसे किसी को यह न समझ लेना चाहिये कि रजोदर्शन समय के अतिरिक्त अन्य समय में अण्डे परिपक्व होकर अण्डवाहक नलिकाओं से गर्भाशय में पहुँचते ही नहीं। नहीं, वे गर्भाशय में आते हैं और उनमें से जो अण्डा शुक्रकीट से सचेतन होता है, वह वहीं रह जाता है तथा शेष सारे अण्डे बहनेवाले आर्तव के साथ बाहर निकल जाते हैं। उपर्युक्त सचेतन अण्डा गर्भाशय की मोटी अन्तस्त्वचा में चिपट बैठता है। उसी जगह वह बढ़ता रहता है, जो आगे चलकर गर्भ के रूप में परिणत होजाता है।

रजस्वला की दशा में स्त्रियों के सिर कमर और स्तनों में कुछ न कुछ वेदना होती है। उनका मन मलिन रहता है, और

बहुत कुछ कमजोरी भी आजाती है। हां, सभी स्त्रियों में ये विकार एकही समान नहीं होते। प्रकृति के अनुसार उस में न्यूनाधिकता भी देखी जाती है।

रजो दर्शन के समय कभी कभी बहुत अधिक कष्ट होता है। इस विकार को कष्टार्तव Dysmenorrhoea डिस मिनोरिया) कहते हैं। आर्तव का परिमाण यदि अधिक होता है, तो उसे अत्यार्तव (Menorrhagia मेनो हेजिया) और यदि कम होता है, तो उसे नष्टार्तव (Amenorrhoea एमे नोरिया) कहते हैं। रजो दर्शन काल के आगे यदि आर्त वस्राव जारी रहता है, तो उसे अकालार्तव (Metrorhagia मेट्रोहेजिया) कहते हैं।

गर्भ धारण का समय—स्त्रियों में प्राय गर्भ की धारणा रजोदर्शन के बाद, अथवा उस के कुछ दिन पहिले होती है, परन्तु इस काल का कोई नियम नहीं रहता। यह बात नहीं कि इस विषय के उदाहरण बिलकुल ही न दिये जा सकें कि, गर्भधारण प्रत्येक समय हो सकता है।

दाई यदि स्वय रजस्वला अवस्था में हो, तो उसे जच्चा से कभी सम्बन्ध न रखना चाहिए, क्यों कि इस से जच्चा को सूतिका ज्वर के आजाने की आशका रहती है। हमारे यहा रजस्वला दाई को ही क्या—किन्तु इस प्रकार की किसी दूसरी स्त्री को भी जच्चा के पास नहीं जाने

देते- इस का भी कदाचित उपर्युक्तही कारण समझा गया होगा।

कभी कभी रज स्राव होने के बदले नाक से, अथवा गुदद्वार से भी प्रति मासरक्त—स्राव होता है, इसे विकेरियस (Vicarious) विकारी आर्तव कह सकते हैं।

पांचवां भाग।

सचेतन अण्डों की बाढ़, गर्भ कोश, जरायु इत्यादि।

गर्भावस्था के कारण गर्भाशय की श्लैष्मिक त्वचा में होने वाले परिवर्तन।

पीछे यह बतलाया गया है कि आर्तव-स्राव के साथ ही गर्भाशय की अन्तस्त्वचा भी प्रायः गल कर गिर पड़ती है पर यह दशा अण्डे के सचेतन होने के पहले की है। अण्डा जब सचेतन हो जाता है, तब गर्भाशय की अन्तस्त्वचा गल कर गिरती नहीं, बल्कि यह बढ़ने लगती है। दिन दिन यह मोटी होती जाती है, और फिर इस के बाद उस में चुन्नट या घड़ियां पड़ने लगती हैं। सचेतन अंडा इन की किसी घड़ी में चिपट कर बैठ जाता है। उस के चिपटने का स्थान गर्भाशय के ऊपर के भाग में, बहुधा पिछली ओर, परन्तु कभी कभी आगे की ओर भी, रहता है, और इसी स्थान में कुछ दिनों के बाद जरायु तैयार होती है।

अस्थायी गर्भकोष–(Decidua डेसिड्युया) गर्भाशय के भीतरी ओर जो श्लैष्मिक त्वचा मोटी होजाती है, जिसका उल्लेख ऊपर होचुका है, उसी को स्थानीयगर्भकोष नाम दिया गया है। यह त्वचा आगे चलकर बहुत जल्द लुप्त होजाती है और इसीलिये इसे "अस्थायी" कहते हैं। इसे गर्भाशयान्तस्त्वचा कोष के नाम सेभी प्रकट कर सकते हैं। इस अन्तस्त्वचा के दो भेद हैं (१) मिथ्याकोष (Decidua Serotina डेसिड्यू या सेरोटिना) और (२) सत्यकोश (Decidua vera डेसिड्यू या वेरा) जिस जगह अण्डा चिपका रहता है, उस भाग को मिथ्याकोश कहते हैं। मिथ्याकोष के अतिरिक्त अन्तस्त्वचा का जो दूसरा भाग रहता है, उसे सत्यकोश कहते हैं। मिथ्याकोश म जब अण्डा चिपट जाता है, इसके बाद उसके आसपास एक दूसरा आवरण तैयार होता है, उसको परावर्तितकोश (Decidua Reflexa डेसिड्यू या रिफ्लेक्सा) कहते हैं।

इसके बाद अण्डे और परावर्तित कोश दोनों की धीरे धीरे वृद्धि होती रहती है और तीसरे मास के अन्त में तो यह वृद्धि इतनी अधिक होजाती है कि उसके कारण गर्भाशय का अधिकांश भाग व्याप्त होजाता है। परावर्तितकोष और सत्यकोश दोनों एक दूसरे से चिपट जाते हैं। मिथ्याकोश अवश्य ही अलग रहता है और इसीके आगे जरायु बनना है।

उपर्युक्त भिन्न भिन्न जाति के गर्भकोश जिस समय तैयार होते रहते हैं उसी समय इधर गर्भपर भी दो वेष्टन तैयार होते

शुद्ध रक्त पहुँचता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह रक्तशुद्धि करनेवाली क्रिया फुप्फुस की सदैव श्वासोच्छ्वास क्रिया के समान ही होती है। हाँ, इसमें अन्तर इतनाही रहता है कि फुप्फुस की पोलाई में शुद्ध हवा भरी रहती है और जरायु की पोलाई में माता का शुद्धरक्त रहता है। इससे कहा जासकता है कि जैसे मछली के आसपास आक्सिजन मिश्रित पानी सचार क्रिया करता है और इससे जिस प्रकार उसके रक्त का शुद्धीकरण होता रहता है, उसी प्रकार उपर्युक्त क्रिया भी होती है। उपर्युक्त रीतिसे गर्भ का रक्त आक्सिजन मिश्रित होकर शुद्ध तो होता ही है। इसके सिवाय माता के रक्त के पोषक पदार्थों का भी गर्भ के रक्त में शोषण होता है और गर्भ के रक्त के त्याज्य पदार्थ माता के रक्त में शोषण होते हैं।

गर्भनाल और जरायु का गर्भाशय की ओर का भाग।

किन्हाई का आकार प्राय अण्डाकार होता है। उसका वजन लगभग तीनपाव होता है। उसकी चौडाई और मोटाई क्रमशः सात और डेढ़ इञ्च होती है। उसके दो भाग होते हैं। एक गर्भाशय की ओर और दूसरा गर्भ की ओर रहता है। गर्भाशय की ओर का भाग गर्भाशय में चिपटा रहता है और उसका पृष्ठभाग रस्सीकी तरह रहता है। गर्भ की ओर जो भाग रहता है, उसके ऊपर से गर्भोदककोष छाया हुआ रहता है। इस कोष का अङ्ग चमकीला गीला और रपटीला सा दिखाई देता है। इसके ऊपर से बहुतसी रक्तवाहिनियां गई होती हैं।

ये रक्तवाहिनिया नाभि की शुद्ध और अशुद्ध रक्तवाहिनियों की शाखायें हैं। जरायु का किनारा मोटा होता है और उसके आगे गर्भसरक्षक और गर्भशोषककोष लगे रहते हैं। जरायु का जो भाग गर्भ की ओर रहता है, उसके मध्य में बहुधा नाल निकला हुआ होता है, परन्तु कभी कभी जरायु के किनारे के पास से भी उसकी उत्पत्ति होती है।

गर्भनाल—(Umbilical Cord अम्बिलायकल कार्ड) इसके योग से किन्हाई और गर्भ का परस्पर सम्बन्ध होता है, जो पीछे बतलाया जा चुका है। यह नाल सरेस के समान एक पदार्थ का बना होता है और उससे कुल तीन रक्तवाहिनिया निकलती हैं। नाल की लम्बाई छ इच से लेकर छ फीट तक होती है, परन्तु साधारणतया वह बीस इच तक होती है। उसकी मुटाई कनिष्ठा उंगलीके बराबर होती है। जब गर्भनाल बिलकुल ही नहीं होता, तब किन्हाई गर्भ की नाभि में ही चिपटी रहती है। गर्भाशय में रहते समय यह नाल गर्भोदक में बतराता रहता है और कभी कभी गर्भ के हिलने डुलने से उसमें गांठ-पेंठन भी पड जाती है।

किन्हाई को देखने का अवसर कभी व्यर्थ न जाने देना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक प्रसूति के बाद किन्हाई को भलीभांति जांच करके देखना होता है। इसका कारण यही है कि कभी कभी किन्हाई अथवा गर्भकोष के कुछ भाग गर्भाशय में शेष रह जाते हैं और इससे प्रसूति के बाद की वेदनायें (प्रसूतिगोले

के वेग) दुर्गन्धियुक्त रक्तस्राव और सूतिकाज्वर इत्यादि के विकार होजाने की सम्भावना रहती है। किन्हाई की यदि भलीभांति परीक्षा करनी हो, तो उसे पानीमें डालकर तैराना चाहिये, इससे यह सहज ही मालूम होजाता है कि उसका कोई भाग टूट तो नहीं रहा है।

गर्भका रुधिराभिसरण—गर्भके हृदयसे जो रक्त निकलता है, वह पहले नाल की दो रक्तवाहिनियों के द्वारा जरायु में पहुँचता है। वहा से वह गर्भपोषककोषके सूक्ष्म तन्तुओं में आता है। इसी जगह माता के शुद्धरक्त के आक्सिजन के योग से उसकी शुद्धि होती है,फिर वह वहांसे लौटकर,नाभिकी एकशुद्ध रक्तवाहिनी के द्वारा गर्भके शरीर में आता है। शरीर में सर्वत्र घूमने के कारण यह रक्त फिर अशुद्ध होजाता है और हृदय में आता है और हृदय से फिर जैसा कि पहले बतलाया है, वह जरायु में जाता है। इस सम्पूर्ण क्रिया को गर्भगत रुधिराभिसरण कहते हैं।

गर्भ की अवस्था में भिन्न भिन्न समय में उसके कौन कौन अवयव तैयार होते हैं, इसका ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है, अतएव दाई को निम्नलिखित वृत्तान्त की ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए।

तीसरे मास तक गर्भ की लम्बाई लगभग तीन इंच होती है और आगे साधारणतया यह परिमाण है कि महीने के अङ्क

के दुगने इञ्चोंमें उसकी लम्बाई रहती है अर्थात् गर्भ यदि पांच मास का होता है तो उसकी लम्बाई दस इञ्च होती है। जरायु यदि अभी तक तैयार नहीं हुई, तो कह सकते हैं कि अभी गर्भ को तीसरा मास नहीं लगा। चौथेमें लिङ्गज्ञान होता है अर्थात् यह मालूम होजाता है कि गर्भ स्त्री का अथवा पुरुष का है। पांचवें में बाल और नख बढ़ने लगते हैं। लगभग साढ़े सात मास तक का गर्भ बचना सम्भव नहीं रहता, पर इसके बाद गर्भके बचे रहने की सम्भावना होजाती है।

छठवां भाग।

गर्भावस्था, लक्षण, गर्भकाल और व्यवस्था।

गर्भावस्था में स्त्रियों के शरीर में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। उनमें से अधिकांश परिवर्तन ऐसे होते हैं कि यदि वे किसी स्त्री में एक एक करके होते हैं, तो देखनेवाले को उसकी गर्भधारणा के विषयमें सिर्फ सन्देह मात्रही होसकता है। परन्तु वे परिवर्तन किसी स्त्रीके एकदम होते हैं, तो देखनेवाला निश्चयपूर्वक कह सकता है कि उस स्त्रीको गर्भधारणा हुई है। इन परिवर्तनों को "गर्भावस्था के लक्षण" कहते हैं।

इन लक्षणोंके दो भाग किये जासकते हैं; (१) दूसरे को मालूम होजानेवाला; (२) दूसरे को न मालूम होनेवाला।

पहले प्रकार के लक्षण स्वयं उस स्त्री ही को मालूम हो सकते हैं, जिसके गर्भ रहता है। जबतक कोई उससे पूछे नहीं, तबतक वे दूसरे को प्राय. नहीं मालूम होते। परन्तु दूसरे प्रकार के लक्षण गर्भवती स्त्री को देखनेवाले चतुर मनुष्यों को सिर्फ निरीक्षण, स्पर्श अथवा श्रवण से ही मालूम होजाते हैं।

ये लक्षण गर्भधारण से लेकर अपने अपने नियत समयपर मालूम होते हैं, जो आगे के कोष्ठक में दिखलाये जाते हैं।



क्रम	लक्षण	कौन से मास में								
		१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	आर्तव बन्द होना	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२	प्रातर्वान्ति (सुबह जी मिचलाना इत्यादि		०	०	०	?	?		?	?
३	गर्भाशय में आवाज होना		०	०	०		०	०	०	०
४	योनिमार्ग काला होना			०	०	०	०	०	०	०
५	स्तनोंमें परिवर्तन			०	०	०	०	०	०	०
६	गर्भप्रत्या घात				०	०	०	०		
७	गर्भ हृदय ध्वनि				?	०	०	०	०	०
८	गर्भ सञ्चलन				?	०	०	०	०	०
९	पेट बड़ा होना				०	०	०	०	०	०
१०	गर्भाशय की गर्दन सिकुड़ना									०

० यह निशान जिसमास और जिस लक्षणके सामने है उस महीने में वह लक्षण होता है (?) यह निशान जिस मास और जिस लक्षण के सामने है, उस महीने में वह लक्षण कभी होता है और कभी नहीं होता।

अधिकांश स्त्रियों का विशेष करके जी ही मिचलाता है और उसके साथ कुछ बलगम निकल जाने पर उनको अन्न की भी रुचि होनेलगती है वे खाती पीती है और फिर वांति नहीं होती

गर्भ-चलन-बोध-गर्भधारणासे लेकर बीस अठवाडों के बाद गर्भका स्पन्दन आरम्भ होजाता है अर्थात् माताको उसका आभास होने लगता है और यदि आर्तवकाल अनिश्चित रहता है, तो इस लक्षण से भी गर्भधारणा का समय साधारण तौर से निश्चित किया जासकता है। परन्तु इस लक्षण को विशेष महत्व देना ठीक न होगा क्योंकि कभी कभी वायु से भी पेट फूलकर गडगडाने लगता है और अनेक स्त्रियां इसी को गर्भ का लक्षण समझ बैठती है।

प्राय लोग समझते हैं, कि गर्भ में जीव आते ही प्रथम हलचल शुरू होजाती है, परन्तु वास्तवमें यह भ्रम है। क्योंकि अण्डा तो गर्भ धारण के साथ ही सजीव होजाता है, परन्तु इतने समय तक कुछ भी हालचाल मालूम नहीं होती, इसका कारण यही है कि गर्भाशय उस समय कटीर क ऊपर नहीं निकला होता और वह माता के पेट की त्वचा म भी नहीं लगा रहता है। अतएव गर्भ की हालचाल माता के ध्यान में नहीं आती। वास्तव में गर्भ और गर्भाशय ज्यों ज्यों बढता जाता है,त्यों त्यों गर्भ की हालचाल अधिकाधिक भासमान होती जाती है। इतना ही नहीं बल्कि कभी कभी वह हालचाल माता के लिये कष्टदायक भी होती है। कभी कभी ऐसा होता है कि

कि गर्भ की हालचाल एकबार मालूम होकर फिर कुछ दिन के लिये बन्द होजाती है यदि यह हालचाल दो एक दिन न ज्ञात हो तो कोई भय नहीं। इससे कुछ लोग समझ बैठते हैं कि गर्भ मृत होगया, परन्तु वास्तव में यह एक स्वाभाविक बात है।

ऊपर ऐसे लक्षण दिये गये हैं जिनको स्वयं गर्भिणी स्त्री ही समझ सकती है, उन लक्षणों के अतिरिक्त और भी कितने ही ऐसे लक्षण हैं कि जिनका निदान यहां नहीं दिया जासकता। क्योंकि वे प्रत्येक स्त्री को भिन्न भिन्न रीतिसे मालूम होते रहते हैं। वे लक्षण एकबार अनुभव के बाद स्त्रियों को स्वयं ही सहज में मालूम होने लगते हैं।

वे लक्षण जिनको दाई स्वयं आंखोंसे देखकर परीक्षा कर सकती है—स्तन, पेट और योनिभाग में जो परिवर्तन होते हैं वही उपर्युक्त लक्षण हैं।

स्तनों में जो स्पष्ट दिखाई देनेवाले परिवर्तन होने लगते हैं, वे प्राय तीसरे मास से दृष्टि पड़ते हैं। उस समय स्तन बड़े हो जाते हैं, और उनपर रक्तसञ्चय-दर्शक नीली रक्तवाहिनियां अथवा नसें दिखाई देती हैं। चूचुक (आचर) और उसके आसपास के स्थान का लाल रङ्ग बदलता जाता है और उस पर कालिमा आने लगती है। इस रङ्ग का न्यूनाधिक होना गर्भिणी स्त्री के वर्ण पर अवलम्बित है। गोरी स्त्रियों में यह रङ्ग साधारण कालिमा लिये हुये होता है और काली स्त्रियों में वह बिलकुल काला होता है।

गर्भाशय का ऊर्ध्वभाग सगर्भावस्था के भिन्न भिन्न महीनों में कहां तक पहुंचता है।

पांचवें मास में गर्भाशय नाभि और जघनास्थियों की सन्धि के ठीक बीचों बीच आता है, छठे मास में नाभि के बराबर आता है, सातवें मास में नाभि के दो इञ्च ऊपर आता है, और इस प्रकार बढते बढ़ते नवें मास में वह उरोस्थि के सिरे तक ऊपर पहुंच जाता है।

प्रसूति के पहले एक अठवाडे में गर्भाशय एक इंच नीचे आजाता है। यह गर्भिणी को मालूम हो जाता है, और इस कारण उसे अन्त के आठ दिनों में श्वासोच्छ्वास करने के लिये कष्ट कम उठाना पड़ता है।

यह बात नहीं है कि भीतर के गर्भ के कारण ही गर्भाशय बडा हो जाता है, किन्तु गर्भाशय की खाल बढकर बहुत मोटी हो जाती है।

गर्भावस्था शुरू होने के पहले यदि गर्भाशय का वजन एक औंस होता है, तो प्रसूति के समाप्त होते ही वह १४ से १८ औंस तक निकलता है।

गर्भाशयमें होनेवाली न्यूनाधिकता—गर्भाशय जब इतना बडा हो जाय कि वह पेट के ऊपर ही से हाथ लगने लगे, तब यदि उस पर हाथ रख कर देखा जाय, तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रति पांच छै मिनट के बाद गर्भाशय कठोर और

मुलायम अथवा सटा हुआ और फैला हुआ, क्रमशः होता रहता है। इस का कारण शायद यह होगा कि गर्भाशय में प्रति पाच छै मिनट पर कुछ न कुछ अन्तर पड़ता रहता है।

गर्भ की हालचाल और उसके शरीर के भाग–अगले महीने में यदि गर्भाशय पर हाथ रखकर देखा जाय तो गर्भके भिन्न भिन्न भाग और उसकी हालचाल मालूम होजाती है। यह अवश्य ही गर्भधारण का निस्संशय लक्षण है। इससे यह भी बतलाया जासकता है कि गर्भाशय में बच्चे की स्थिति कैसी है।

गर्भ प्रत्याघात–यह विश्वासपूर्ण लक्षण है। यह लक्षण योनि की अन्त परीक्षा से मालूम होता है। इस परीक्षा का वर्णन आगे दिया जाता है।

गर्भिणी स्त्री को इस प्रकार बैठाओ कि वह आधी बैठी रहे और फिर गर्भाशय की गर्दन के बाहरी मुख में उँगली लगा कर उसके द्वारा ऊपर की ओर गर्भाशय को धक्का दो, इससे गर्भ ऊपर के भाग की ओर गर्भोदक में चला जायगा, पर वह फिर गर्भाशय की गर्दनके भीतरी मुखपर आकर टकार खायगा। इससे देखनेवाले की उँगली पर कुछ टकराता सा है।

उपर्युक्त रीति से परीक्षा करनेके लिये गर्भाशय की पोलाई और गर्भ दोनों परिमाण में होने चाहिये। यह दशा चौथे से सातवें मास तक रहती है इसलिये यह लक्षण उसी समय सहज में देखा जासकता है। इस समय के आगे गर्भाशय की

पोलाई के परिमाण से गर्भ, बडा होजाता है, और इसलिये यह ध्यान असम्भव होजाती है कि उँगली के धक्के के साथ ही ऊपर जाकर फिर नीचे आजाय और इस कारण सातवें मास के बाद फिर इस लक्षण को जानने का सुभीता नहीं रहता।

गर्भाशय की गर्दन का अन्तर-रक्तसञ्चय अधिक होने से गर्भाशय शीघ्र ही मुलायम होजाता है, इस कारण योनि की परीक्षा करते समय गर्भाशय की गर्दन मुलायम और लिबलिबी मालूम होती है और यह कुछ सिकुडी हुईसी जान पडती है। यह अन्तर गर्भावस्थाके अन्तके एक दो अठवाडा में होता है। पेट जो पहिले से बडा और मुलायम रहता है, फिर कुछ छोटा होजाता है और गर्भाशय की गर्दन तथा योनि लाल होजाती है इसलिये परीक्षा करने के लिये गर्भाशय के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं रहता। आठवें नवें मास में गर्भाशय की गर्दन का बाहरी मुख कुछ खुला सा होजाता है। जिन स्त्रियों के कई बच्चे होजाते हैं, उनके गर्भाशय की गर्दन का तो यह बाहरी मुख इतना खुल जाता है कि उसके भीतर उँगली का सिरा सहज ही जासकता है।

श्रवण परीक्षा-पेट में जहां गर्भ रहता है, वहां यदि श्रवणनलिका (Stethoscope स्टेथस्कोप) लगाकर सुना जाय तो गर्भाशय से निकलनेवाली आवाज माता की नाडी के समान बिलकुल ठीक सुनाई देती है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय और जरायुकी नसोंमें माता का रक्त बहता रहता है।

गर्भ का हृदय-गर्भाशय की आवाज की अपेक्षा गर्भ के हृदय की धड़कन लगभग पाँचवें महीने से ही बिलकुल स्पष्ट स्पष्ट सुनाई देती है। यह आवाज बिलकुल धीमी होती है। किसी तकिया के अन्दर यदि कोई जेबघड़ी बन्द कर दी जाय, तो उस जेब घड़ी की टिक टिक आवाज जैसी सुनाई देती है, वैसी ही उपर्युक्त आवाज भी प्रति मिनट में लगभग १३० बार सुनाई देती है। यह आवाज कभी कभी ऐसी जान पड़ती है, कि अब नहीं सुनाई देती, परन्तु यदि ध्यान देकर सुनने का प्रयत्न किया जाय तो कुछ देर बाद फिर सुनाई देने लगती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह मालूम होजायगा कि गर्भधारण के अनेक स्पष्ट लक्षण हैं। यही नहीं, बल्कि वे अपने नियमित काल पर ही होते रहते हैं। इन सब को ध्यान में रखकर, यदि विचार किया जाय, तो निस्सन्देह कहा जासकता है कि स्त्री को गर्भधारण हुई है या नहीं।

सारांश, गर्भधारण के चिन्ह और लक्षण-

स्वयं गर्भिणी को मालूम होनेवाले लक्षण।	(१) आर्तव बन्द होना। (२) सुबह जी मिचलाना और वांति (३) गर्भकी सजीवता का भास।

पोलाई के परिमाण से गर्भ बड़ा होजाता है और इसलिये यह बात असम्भव होजाती है कि उँगली के धक्के के साथ ही ऊपर जाकर फिर नीचे आजाय और इस कारण सातवें मास के बाद फिर इस लक्षण को जानने का सुभीता नहीं रहता।

गर्भाशय की गर्दन का अन्तर-रक्तसञ्चय अधिक होने से गर्भाशय शीघ्र ही मुलायम होजाता है, इस कारण योनि की परीक्षा करते समय गर्भाशयकी गर्दन मुलायम और लिजलिजी मालूम होती है और वह कुछ सिकुड़ी हुईसी जान पड़ती है। यह अन्तर गर्भावस्थाके अन्तके एक दो अठवाड़ों में होता है। पेट जो पहिले से बड़ा और मुलायम रहता है, फिर कुछ छोटा होजाता है और गर्भाशय की गर्दन तथा योनि लाल होजाती है इसलिये परीक्षा करने के लिये गर्भाशय के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं रहता। आठवें नवें मास में गर्भाशय की गर्दन का बाहरी मुख कुछ खुला सा होजाता है। जिन स्त्रियों के कई बच्चे होजाते हैं, उनके गर्भाशय की गर्दन का तो यह बाहरी मुख इतना खुल जाता है कि उसके भीतर उँगली का सिरा सहज ही जासकता है।

श्रवण परीक्षा-पेट में जहां गर्भ रहता है, वहां यदि श्रवणनलिका (Stethoscope स्टेथस्कोप) लगाकर सुना जाय तो गर्भाशय से निकलनेवाली आवाज माता की नाड़ी के समान बिलकुल ठीक सुनाई देती है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय और जरायुकी नसोंमें माता का रक्त बहता रहता है।

गर्भधारणा के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण चूंकि बहुत देर को प्रगट होते हैं, इसलिये गर्भधारणा के विषय में विश्वासपूर्ण सम्मति देना बहुत कठिन होता है, इसलिये किसी स्त्री के गर्भवती होने अथवा न होने की सम्मति देना एक बड़ा दायित्वपूर्ण कार्य है, अतएव दाई को ही इस विषय में कोई साहसपूर्ण निश्चय न कर डालना चाहिये, किन्तु उसका निर्णय डाक्टर से भी करवा लेना चाहिये ।

अन्तिम आर्तवकाल के प्रथम दिन से लेकर साधारणतया २८० दिन में स्त्री प्रसूत होती है । इसलिये प्रसूति का यदि ठीक ठीक समय बतलाना हो, तो अन्तिम आर्तवकालके प्रथम दिन की तारीख में सात मिलाकर आगे नौ अथवा पीछे तीन महीने गिने, इससे जो तारीख निकले, उसी अठवाड़े के आस पास किसी न किसी दिन स्त्री के प्रसूत होने का समय समझना चाहिये ।

उदाहरणार्थ-अन्तिम आर्तवकाल का प्रथम दिन २१ मार्च है । इसमें सात मिलाने से २८ मार्च आता है । इसके आगे नौ अथवा पीछे तीन महीने गिनने से २८ दिसम्बर की तारीख आती है । इससे साधारणतया यह कहा जासकता है कि प्रसूतिकाल वर्ष के अन्तिम अठवाड़े में आवेगा ।

यदि आर्तवकाल की तारीख में गड़बड़ी पड़जाय, तो हम अपनी गणना का समय इस समय से भी निकाल सकते हैं कि जिस समय गर्भ के सजीव होने का लक्षण गर्भिणी को

दूसरे को मालूम होनेवाले लक्षण — अवलोकन से मालूम होने वाले

- अ–स्तन सम्बन्धी परिवर्तन।
  - (१) रङ्ग बदलना।
  - (२) वृद्धि।
  - (३) दूध आना।
- आ पेट सम्बन्धी अन्तर।
  - (१) रङ्ग बदलना।
  - (२) परिधि बढ़ना।
  - (३) रेखा दीखना।
- इ–योनि का रङ्ग बदलना।

दूसरे को-मालूम-होनेवाले लक्षण।

स्पर्श से मालूम होनेवाले

- अ–पेट की बाह्य परीक्षा।
  - (१) गर्भाशय की वृद्धि।
  - (२) गर्भाशयका बड़ा और छोटा होना।
  - (३) गर्भ के अवयव।
  - (४) गर्भ की हालचाल।
- अ–अन्त परीक्षा या योनि–परीक्षा।
  - (१) गर्भाशय की गर्दन मुलायम होना।
  - (२) उस गर्दन का सकुचित होना।
  - (३) गर्भप्रत्याघात।

श्रवणसे मालूम होनेवाले

- (१) गर्भाशय से निकलने वाली आवाज।
- (२) गर्भ के हृदय की धड़कन।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रत्यक्ष गर्भ विषयक सम्पूर्ण लक्षणों को छोड़कर यदि अन्य शेष लक्षण अकेले ही लिये जायँगे, तो गर्भावस्था के विषय में बहुत कुछ भूल हो जाने की सम्भावना रहेगी।

गर्भधारणा के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षण चूंकि बहुत देर को प्रगट होते हैं, इसलिये गर्भधारणा के विषय में विश्वासपूर्ण सम्मति देना बहुत कठिन होता है, इसलिये किसी स्त्री के गर्भवती होने अथवा न होने की सम्मति देना एक बड़ा दायित्वपूर्ण कार्य है, अतएव दाई को ही इस विषय में कोई साहसपूर्ण निश्चय न कर डालना चाहिये, किन्तु उसका निर्णय डाक्टर से भी करवा लेना चाहिये।

अन्तिम आर्तवकाल के प्रथम दिन से लेकर साधारणतया २८० दिन में स्त्री प्रसूत होती है। इसलिये प्रसूति का यदि ठीक ठीक समय बतलाना हो, तो अन्तिम आर्तवकालके प्रथम दिन की तारीख में सात मिलाकर आगे नौ अथवा पीछे तीन महीने गिने, इससे जो तारीख निकले, उसी अठवाड़े के आस पास किसी न किसी दिन स्त्री के प्रसूत होने का समय समझना चाहिये।

उदाहरणार्थ-अन्तिम आर्तवकाल का प्रथम दिन २१ मार्च है। इसमें सात मिलाने से २८ मार्च आता है। इसके आगे नौ अथवा पीछे तीन महीने गिनने से २८ दिसम्बर की तारीख आती है। इससे साधारणतया यह कहा जासकता है कि प्रसूतिकाल वर्ष के अन्तिम अठवाड़े में आवेगा।

यदि आर्तवकाल की तारीख में गड़बड़ी पड़जाय, तो हम अपनी गणना का समय उस समय से भी निकाल सकते हैं कि जिस समय गर्भ के सजीव होने का लक्षण गर्भिणी को

दूसरे को मालूम होनेवाले लक्षण — **अवलोकन से मालूम होने वाले**

अ-स्तन सम्बन्धी परिवर्तन।
- (१) रङ्ग बदलना।
- (२) वृद्धि।
- (३) दूध आना।

आ पेट सम्बन्धी अन्तर।
- (१) रङ्ग बदलना।
- (२) परिधि बढना।
- (३) रेखा दीखना।

इ-योनि का रङ्ग बदलना।

दूसरे को मालुम होनेवाले लक्षण।

स्पर्श से मालूम होनेवाले

अ-पेट की बाह्य परीक्षा।
- (१) गर्भाशय की वृद्धि।
- (२) गर्भाशयका बड़ा और छोटा होना।
- (३) गर्भ के अवयव।
- (४) गर्भ की हालचाल।

अ-अन्त: परीक्षा या योनि-परीक्षा।
- (१) गर्भाशय की गर्दन मुलायम होना।
- (२) उस गर्दन का सकुचित होना।
- (३) गर्भप्रत्याघात।

श्रवणसे मालूम होनेवाले
- (१) गर्भाशय से निकलने वाली आवाज।
- (२) गर्भ के हृदय की धड़कन।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रत्यक्ष गर्भ विषयक सम्पूर्ण लक्षणों को छोडकर यदि अन्य शेष लक्षण अकेले ही लिये जायँगे, तो गर्भावस्था के विषय में बहुत कुछ भूल हो जाने की सम्भावना रहेगी।

सर्व प्रथम मालूम होता है अथवा गर्भाशय के आकार से भी हम उक्त समय निकाल सकते हैं। परन्तु इन लक्षणों से प्रसूतिकाल बिलकुल ठीक ठीक नहीं बतलाया जासकता।

साथ लगी हुई जन्त्री में कुल बारह खाने हैं। प्रत्येक में दो दो अक्षरों और अङ्कों की पंक्तियाँ हैं। पहिली पंक्ति का अक्षर और अङ्क गर्भधारण का महीना और तारीख दिखलाता है और उसके नीचे की पंक्ति का अक्षर और अङ्क प्रसूति का मास और तारीख दिखलाता है। मानलो कोई स्त्री १६ जुलाई को रजस्वला होने के बाद गर्भवती हुई, तो वह महीना और तारीख उपर्युक्त खानों में ढूढकर देखना चाहिये, इससे उसके नीचे की पंक्ति का अक्षर और अङ्क एप्रिल २२ मिलेगा। इससे यह परिणाम निकला कि उक्त स्त्री २२ एप्रिल के लगभग प्रसूत होगी।

गर्भावस्था का प्रबन्ध–

गर्भावस्था का सच्चा प्रबन्ध यही है कि आरोग्य के नियमों को पूरा पूरा पालन किया जाय। गर्भिणी स्त्री के घर में और बाहर शुद्ध और स्वच्छ वायु पर्याप्त रूपसे सञ्चार करती रहनी चाहिये। गर्भिणी स्त्री को किसी घिरी हुई जगह में न रहना चाहिये। उसको अपने घर में ही बराबर खुली न रहना चाहिये। किन्तु कभी कभी बाहर की शुद्ध वायु का सेवन ... चाहिये। उसे ऐसी जगह भी न जाना चाहिये जहां

चूचुक-प्रतिदिन सोहागा पानी में मिलाकर (१ पाइन्ट पानीमें दो ड्राम सुहागा हो उससे) अथवा बोरासिक लोशन से (एसिड बोरिक १० ग्रेन और पानी १ औंस) धोना चाहिये। इसके बाद उनपर ठण्डा मलाई लगानी चाहिये। चूचुक यदि छोटे होगये हों अथवा भीतर चलेगये हों तो धीरे धीरे चुटकी से उनका बाहरको आर खींचना चाहिये। कभी कभी चूचुकों में दर्द होने लगता है, अथवा वे फट जाते हैं। ऐसी दशा में दिन में दो तीनबार ह्विस्की या कोलनवाटर उतने ही पानी में मिलाकर उनपर लगाना चाहिये।

मूत्रपरीक्षा—कमसे कम पहली गर्भावस्था में तो अवश्य ही आठवें अथवा नवें महीने में सप्ताह में एक बार मूत्र को लेकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये। क्योंकि पेशाब में यदि आल्ब्युमिन नामक पदार्थ जाता होगा, तो इससे आक्षेपक होने की सम्भावना रहती है।

यदि यह मालूम हो कि गर्भावस्था के सदैव के अथवा अन्य कोई विकार होगये हैं या गर्भावस्था के कोई विलक्षण लक्षण दिखाई दे रहे हैं, तो समय पर ही उनका उपाय करना चाहिये।

गर्भावस्थामें स्त्री पुरुष प्राय प्रसङ्गसे अलिप्त नहीं रहते। यह बहुत बुरी बात है। इस विषयमें उनको कमसे कम पशुओं का अपना गुरु बनाना चाहिये। मालूम होता है कि पशुओं स्वाभाविक ही इस विषयकी हानि लाभ का ज्ञान रहता है और

लहँगा, साड़ी ढीली पहिननी चाहिये। इसी प्रकार चोली या कुर्ती ऐसी पहिननी चाहिये कि जिससे स्तनाओं पर विशेष दाब न पड़े।

गर्भवती स्त्री के स्वभाव में बहुधा अन्तर पड़ जाता है। ऐसे समय में अन्य लोगों को उसके साथ शान्ति का बरताव करना चाहिये। उनको ऐसा बर्ताव न करना चाहिये। कि जिससे स्त्री को क्रोध आवे अथवा उसके मन पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव पड़े। गर्भवती स्त्रीको कमसे कम आठ घण्टे शान्तिपूर्ण निद्रा ग्रहण करनी चाहिये। गर्भावस्था के अन्तिम महीने में उसे दोपहर को भी थोड़ी देर निद्रा का विश्राम लेना चाहिये, इससे उसका आरोग्य और उत्साह स्थिर रहेगा। उसको स्नान भी प्रतिदिन करना चाहिये और गर्भावस्था समाप्त न होजाय, शरीर को मल कर खूब धोते रहना चाहिये और बाह्य जननेन्द्रिया विशेष स्वच्छ रखने की सावधानी रखनी चाहिये।

भोजन में परिवर्तन करने पर भी यदि पाखाना साफ न होता हो, तो कोई हलकी सी रेचक औषधि ग्रहण करनी चाहिये (भाग ७ देखो) तीव्र रेचक औषधियां कभी न ग्रहण करनी चाहिये। यदि बवासीर की बीमारी हो, तो पानी साबुन की बस्ति लेना चाहिये इससे काखना नहीं पड़ता। बवासीर यदि सूज गई हो, तो गरम पानी से सेंकना चाहिये। ऐसी दशा में गर्भवती स्त्री को एक दो दिन पड़ी रहना चाहिये।

सातवां भाग।

गर्भावस्था की बीमारियां

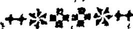
उसके मिश्र रोग।

गर्भावस्था में बहुत से विकार होजाते हैं, पर यह नहीं कहा जासकता कि वे सब गर्भावस्था के कारण ही होते हैं। जिन रोगों की उत्पत्ति गर्भावस्था से होती है उन रोगों को गर्भावस्था के विकार कहते हैं। परन्तु जो रोग बिलकुल स्वतन्त्र रूप से गर्भावस्था में होते हैं, उनको "गर्भावस्था के मिश्र रोग" कहते हैं।

पहले प्रकार में बहुत से रोग आते हैं। पर उन सब में जो विकार सदैव होता है और कष्टदायक होता है वह प्रातःकाल की भयङ्कर वान्ति ही है।

गर्भावस्था के कुछ प्रथम मासों में प्रातर्वान्ति का जो एक लक्षण होता है, उसीका यह विकार एक परिणाम मात्र है। इसका कष्ट स्त्रियों को प्रकृतिमानानुसार न्यूनाधिक रूप में हुआ करता है। भोजन का एक कण भी यदि पेट में जाता है, तो कभी कभी इस रोग के कारण पेट में नहीं ठहरता और उलटी होजाती है। इससे गर्भिणी को उपवास की नौबत आ जाती है। और वह निर्बल होजाती है। जब कभी स्त्री को दो बच्चे साथही होनेको होते हैं अथवा गर्भोदक का सञ्चय अधिक होता है, तब गर्भाशय बहुत फूल आता है, इससे

इसीलिये गर्भावस्था में पशु स्त्री पुरुष नहीं मिलते। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि मननशील और दूरदर्शी कहलाने वाले मनुष्य इस बात को नहीं समझते। गर्भावस्था में स्त्री प्रसङ्ग करने से गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। परन्तु यदि इन्द्रियों के वश होकर सङ्ग करना ही पड़े, तो कमसे कम पहले के चार महीने तो अवश्यही इसका त्याग करना चाहिये। क्योंकि इस समय गर्भ छोटा रहता है। गर्भाशय से उसका ठीक ठीक बन्धन नहीं हुआ होता। अर्थात् इस समय उसकी निराधार अवस्था रहती है, इस कारण उसके पात होने का भी विशेष भय रहता है। इसके सिवाय यदि पहली बार गर्भपात होगया हो तो वर्तमान गर्भावस्था में खासकर उपर्युक्त महीनों में अवश्य ही सङ्ग को रोकना चाहिये। सङ्ग के समय में बाह्य जननेन्द्रियों में रक्तसञ्चय होता है और यह रक्त वहां अन्तर्जननेन्द्रियों से आया करता है। इसलिये अन्तर्जननेन्द्रियों में रक्त की कमी पड़जाती है, इससे गर्भ का पोषण ठीक ठीक नहीं होता, और वह निर्बल पड़ जाता है। फलतः बच्चा भी निर्बल ही पैदा होता है और इससे उसको आक्षेपकादि रोग भी सहज ही में हो सकते हैं।



टिंक्चर ओपियम के १५ बूंद गुद द्वार से देते हैं। आट्रोपीन की १/६० ग्रेन की त्वचा के भीतर पिचकारी देते हैं। इसी प्रकार मार्फिया की १/४ ग्रेन की पिचकारी अथवा लायकर मार्फिया के १० बूंद एक औंस पानी में पीने को देते हैं। आमाशय पर राई का लेप करते हैं, अथवा गर्दन के पिछले भाग पर आइस बेग रखते हैं। किसी प्रकार यदि अन्न नहीं जाता, तो कृत्रिम रीति से पकाकर तैयार किया हुआ अन्न गुदा मार्ग से भी देने की चाल है।

लघुसूत शेखर की १०-१२ सकीरें आवले के मुरब्बे के रस में अथवा पाव तोले निम्बू के रस, पाव तोले अदरख के रस और पाव तोले अनार के रस में शक्कर डालकर, इसी में देते हैं। प्रवाल और मौक्तिक भी डेढ़ से दो रत्ती तक, आवले के मुरब्बे या अनार के अवलेह में देते हैं।

किसी उपाय से भी यदि धाति नहीं रुकती और यदि गर्भवती स्त्री की प्रकृति बहुत ही खराब होजाती है, उसकी नाड़ी यदि बिलकुल निर्बल होजाती है और यदि किसी प्रकार भी उसके बचने की आशा नहीं की जाती तो फिर गर्भपात कराते हैं। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि जब विश्वास पूर्वक यह मालूम होजाता है कि उपर्युक्त विकार के कारण अब गर्भवती स्त्री किसी उपाय से भी नहीं बचेगी, तभी गर्भपात का उपाय किया जाता है।

राल टपकना- अधिक राल टपकना एक दूसरा कष्ट-

विकार होजाता है। परन्तु कभी कभी यह भी देखा गया है कि उपर्युक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त अन्य कारणोंसे भी यह विकार होगया।

उपचार—इस विकार वाली स्त्री को प्रातः कुछ न कुछ खाकर तब बिछौनेसे उठना चाहिये। यदि मलावरोध होगया हो, तो हलका सा रेचक देना चाहिये। बिसमथ १० ग्रेन्स, सोडा बायकार्ब १० ग्रेन्स, टिंक्चर कलम्बा, ३० बूंद एसिड हैड्रोसायनिक डिल्यूट २ या ३ बूंद और पानी एक औंस इसका मिश्रण दिन में दो तीन बार देते हैं, अथवा एसिड नायट्रो हैड्रोक्लोरिक डिल्यूट १५ बूंद, टिंक्चर जन्शन १ ड्राम और पानी १ औंस यह मिश्रण भी उसी तरह देते हैं ये सब औषधियां भोजनके पहले देनी होती है। पेपसीन ५-१० ग्रेन्स भोजन के बाद देते हैं। सीरियम आक्जैलेट ५-१० ग्रेन्स, क्रियासोट १-३ बूंद, टिंक्चर नक्सवामिका ५-१० बूंद, इन औषधियों का उपयोग करते है। वायनम एपिकेक अथवा टिंक्चर आयोडिन प्रत्येक घण्टे में, प्रत्येक का एक एक बूंद पानी में मिलाकर देते हैं। नायट्राइट आफ एमिल सूघने को देते हैं। पोटेशियम ब्रोमाइड ३० ग्रेन्स और नायट्रोग्लिसरीन की १/१०० ग्रेन की टिकियां देते हैं। सोडावाटर अथवा शैंपेन दूध और बर्फ के साथ मिलाकर देने से भी शांति रुकती है।

शांति यदि अधिक होती हो तो पड़े रहना चाहिये। पतला

१ घनचा चमचा भर कईवार खानेसे भी लाभ होता है।

लिये स्तम्भक औषधियों की पिचकारी लगाते हैं। कार्बोलिक एसिडके पानीसे योनिको साफ धोकर पीछे पिचकारी लगानी चाहिये। फिटकरी ३ रत्ती अथवा सल्फेट आफ जिंक दो रत्ती, ४ तोले पानी में डालकर उस पानी की पिचकारी शाम सुबह लगानी चाहिये। सल्फेट आफ जिंक १ रत्ती, कत्थे का अर्क पाव तोला, टैनिक एसिड ५ रत्ती और पानी २१ तोले मिला कर इसकी पिचकारी लगानी चाहिये।

तोले भर माजूफल लेकर, उनको अधूरा कूटकर १ सेर पानी में उनका काढ़ा बनाओ और उसमें, फिटकरी और कत्थे का चूर्ण डालकर उसकी पिचकारी लगाना चाहिये। पतङ्ग लकड़ी मोचरस, और धौके फूल बराबर बराबर लेकर सेर भर पानी में काढ़ा बनाओ, और उसकी पिचकारी लगाओ।

पिचकारी लेने का पानी या काढ़ा जरा कुनकुना होना चाहिये। हां, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि पिचकारी लगाते समय यदि बहुत गरम पानीका उपयोग किया जायगा अथवा पिचकारी यदि ज़ोर से लगाई जायगी, तो इससे गर्भ पात या अकाल-प्रसूति होने की सम्भावना रहेगी।

उपर्युक्त औषधियों के काढ़े में फाहा भिगोकर भी योनि में रखना चाहिये। माजूफल, फिटकरी और कत्थे बारीक कपड़ेमें रखकर उसकी पोटली योनिमें रख

आन्तरोपचार-स्त्री को पौष्टिक भोजन देनीचाहिये। पौष्टिक औषधियोंसे लोहभस्म व

दायक विकार है। इस पर कोई विशेष उपाय नहीं चलता। यह सम्पूर्ण गर्भावस्था में जारी रहता है और प्रसूति के बाद बन्द होता है।

उपचार–टेनिन की टिकिया मुख में रखने को देते हैं। पोटासियम आयोडाइड ५-१० ग्रेन्स और टिंक्चर बेला डोना ५-१० बूंद एक औंस पानीमें मिलाकर पीने को देते हैं, अथवा अट्रोपीन के १/६० ग्रेन की पिचकारी त्वचा के भीतर देते हैं। कई रेचक क्षार भी देते है।

बबूल, बकुल, आम अथवा जामुनकी भीतरी छालके काढ़े के कुल्ले कराते हैं। माजूफल के काढे में फिटकरी और कत्थे का चूर्ण डालकर उसके कुल्ले कराते हैं। पाव रत्ती अफीम आध तोला भागरे के रस में देते हैं।

श्वेतप्रदर बहुधा योनिमार्ग से एक प्रकार का सफेद रङ्ग का स्राव हुआ करता है, उसी को श्वेतप्रदर कहते हैं। इस रोगमें यदि स्वच्छताके विषय में विशेष सावधानी न रक्खी जाय, तो जननेन्द्रियों के बाहरी भाग पर छोटी छोटी फुन्सियां होजाती हैं और खुजली होने लगती है। यह रोग बहुत कष्ट-दायक है और इसका कष्ट स्त्री से बिलकुल सहा नहीं जाता।

उपचार–इस रोग पर उपचार करनेकी दो रीतिया है। (१) बाह्य और (२) आन्तर।

बाह्योपचार–खासकर स्राव बन्द करना चाहिये। इसके

पैरों में सूजन आना और पिंडली की अशुद्ध रक्त वाहिनियों का मोटा होना-इस विकार का कारण यह है कि इन नसों पर गर्भाशय की दाब पड़ने के कारण उनके रुधिराभिसरण में बाधा पहुँचती है।

उपचार-बहुत देर खड़ा न होना चाहिये और न बहुत चलना चाहिये। बहुत देर तक पड़ा रहना चाहिये। सौम्य रेचक देकर कोठा साफ रखना चाहिये और यदि अत्यन्त नीरक्तता होगई हो तो लौह भस्म देना चाहिये। पैरों में गरम मोजे पहने रहना चाहिये।

मलावरोध-अंतड़ियों पर गर्भाशय का जो भार पड़ता है, वही इस विकार का कारण है।

उपचार-सनाय ४ तोला, हड़ छोटी ४ तोला, निसोत २ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, सेंधानमक आधा तोला, पीपल ३ मासे, काली मिर्च ३ मासे। इन सब औषधियों को कपड़छान करके उसमें से ३ माशा एक घूट गरम पानी के साथ देते हैं। केवल रेंडी का तेल दूध चाय में या सोंठ अथवा सौंफ के काढ़े में देते हैं।

अतिसार-यह प्रायः गर्भावस्था में होजाता है और कभी कभी यह गर्भधारण का भी बोधक होता है और कभी कभी अतिसार प्रसूति का भी पूर्व चिन्ह होता है। गर्भावस्थामें यह

एक रत्ती मण्डूर मट्ठे के अनुपातमें भी देते हैं। लौहभस्म घी शकर अथवा मक्खनके साथ देते हैं। मोचरस २ रत्ती कसीस १ रत्ती की गोली बनाकर देते हैं और इतने उपायों से यदि स्त्री को लाभ नहीं होता, तो जलवायु बदलनेसे लाभ होता है।

बाह्य जननेन्द्रियों पर फुन्सियाँ उठना अथवा खुजली पैदा होना—यह विकार प्राय. श्वेतप्रदर से होता है। इससे बहुत कष्ट होता है।

उपचार—श्वेत प्रदर यदि मौजूद हो, तो उपर्युक्त उपचार करने चाहियें। ऐसी औषधि देनी चाहिये कि जिससे प्रतिदिन कोठा साफ होता रहे। और जिस जगह यह विकार होगया हो, उस जगह नीचे लिखा हुआ उपचार करना चाहिये। सोहागा १० ग्रेन्स १ औंस पानी में मिलाकर मिश्रण तैयार करो। अथवा कारबालिक एसिड २-४ ग्रेन्स और पानी एक औंस मिलाओ अथवा मरक्युरिक परक्लोराइड २ ग्रेन्स और एक औंस पानी का द्रव बनाओ, इन तीनोंमें से किसी औषधि में कपडे की पट्टी भिगाकर उस जगह पर रखो।

गर्भाशय जब बडा हो जाता है, तब रक्तवाहिनियों पर अथवा अन्य कुछ भागों पर उसका भार पड़ता है और इससे गर्भवती स्त्री को अनेक कष्टदायक विकार हो जाते हैं। इन विकारों का वर्णन यहां दिखाया जाता है।

तो उन्हें गर्म पानी से सेंकने चाहिये और यदि वे बाहर निकल कर सूज गये हों, तो अन्वेंटम जिन्सी आक्साइड अग्वेंटम सबी एसीटस और अग्वेंटम हैड्रारजिराम नायट्रेटिस डिल्यूटम तीनों समभाग लेकर इसके मिश्रण को मस्सों पर लगाते हैं। एकभाग हेजलीन और दो भाग पानी एकत्र करके उसमें से दो ड्राम पिचकारी से मलमागके अन्दर डालते हैं। अर्श से यदि रक्त आता हो, तो हेंजलीन नामक औषधि के १० बूंद एक तोला पानी के साथ दिन में दो अथवा तीन बार देते हैं, अथवा टिंकचर आफ हमामेलिस एक अथवा दो बूंद पानी में डालकर दिन में दो अथवा तीनबार देते हैं। रसे की छाल मट्ठे में घिसकर देते हैं। जमीकन्द की गठियां बनाकर घी शक्कर के साथ खाने को देते हैं। १-२ मासे नाग-केसर मक्खन और मिश्री के साथ देते हैं।

मूत्र विकार—गर्भिणी स्त्री को अकसर बारबार पेशाब के लिये जाना पड़ता है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय आगे अथवा पीछे पड़जाने से मूत्राशय पर उसकी दाब पड़ती है अथवा वह खिंच जाता है। इसीसे बारबारपेशाब के लिये जाना होता है।

मूत्रावरोध—तीसरे और चौथे मास में गर्भाशय आगे बढ़ जाता है, इस कारण मूत्राशय पर भार पड़ता है, अतएव, मूत्रावरोध होजाता है। इसी प्रकार का अवरोध गर्भावस्था के अन्तिम सप्ताहों में भी होजाता है।

कोई विकार नहीं समझा जाता परन्तु यदि बढ़ जाता है, तो अवश्य ही इसके उपचार करने पड़ते हैं।

उपचार—चाक मिक्श्चर २ तोला, कत्थे का अर्क २० बूंद और टिंक्चर कैनो ३० बूंद ढाई तोले पानीमें, दिन में तीनबार देते हैं। इससे अतिसार का तत्कालिक शमन होजाता है। इस पर चिर गुणकारी औषधि यह है-ग्रेपाउडर आधी रत्ती और रुबार्ब ८ रत्ती, दोनों को मिलाकर देते हैं। यह औषधि दिन में दोबार देने से अच्छा लाभ होता है।

नागरमोथा, इन्द्रयव, कच्चावेल, पठानी लोध मोचरस और धाई के फूल इन सब औषधियों को समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण तैयार करो यही ३ मासा चूर्ण मट्ठे में गुड मिलाकर उसी के साथ देना चाहिये।

बवासीर—वलिद्वार (कांच) की नसों पर गर्भाशय का दबाव पड़नेके कारण उनके रुधिराभिसरण में फर्क आजाता है। और इसी कारण वे फूल जाती हैं और यह विकार पैदा हो जाता है।

उपचार—सौम्य रेचक देते हैं। रेंडी का तेल २ ड्राम और पल्व्हिस ग्लिसराइजा कम्पौंड ४० ग्रेन्स मिलाकर देना चाहिये। एक्स्ट्राक्ट बेलाडोना सक्षोट्रिन पौन ग्रेन, एक्स्ट्राक्ट नक्सवामिका आधा ग्रेन, एक्स्ट्राक्ट हायोसायमस तीन ग्रेन्स और पल्व्हिस ग्लिसराइजा इतना लेवें जितना गोली बनने के लिये आवश्यक हो। इन सब को मिलाकर गोली बनाकर देते हैं। मस्से हों

तो उन्हें गर्म पानी से सेंकने चाहिये और यदि वे बाहर निकल कर सूज गये हों, तो अर्जेंटम जिन्सी आकसाइड अर्जेंटम सबी एसीटस और अर्जेंटम हैड्रारजिराम नायट्रेटिस डिल्यूटम तीनों समभाग लेकर इनके मिश्रण को मस्सों पर लगाते हैं। एकभाग हैज़लीन और दो भाग पानी एकत्र करके इसमें से दो ड्राम पिचकारी से मलमार्ग के अन्दर डालते हैं। अर्श से यदि रक्त आता हो, तो हैज़लीन नामक औषधि के १० बूंद एक तोला पानी के साथ दिन में दो अथवा तीन बार देते हैं, अथवा टिंक्चर आफ हमामेलिस एक अथवा दो बूंद पानी में डालकर दिन में दो अथवा तीनबार देते हैं। कले की छाल मट्ठे में घिसकर देते हैं। जमीकन्द की गड्डियाँ बनाकर घी शक्कर के साथ खाने को देते हैं। १-२ मासे नागकेसर मक्खन और मिश्री के साथ देते हैं।

मूत्र विकार—गर्भिणी स्त्री को अकसर बार बार पेशाब के लिये जाना पड़ता है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय आगे अथवा पीछे पड़जाने से मूत्राशय पर उसकी दाब पड़ती है अथवा वह खिंच जाता है। इसीसे बार बार पेशाब के लिये जाना होता है।

मूत्रावरोध-तीसरे और चौथे मास में गर्भाशय आगे बढ़ जाता है, इस कारण मूत्राशय पर भार पड़ता है, अतएव मूत्रावरोध होजाता है। इसी प्रकार का अवरोध गर्भावस्था के अन्तिम सप्ताहों में भी होजाता है।

उपचार-पलाश (टेसू) के फूल उबालकर पेडूपर बांधना चाहिये। गरम पानीमें बैठालना चाहिये अथवा पुनर्नवा और गोखुरूके काढे में बैठाना चाहिये। ककडीके बीज चावल के धोवन में देते है। मूत्रशलाका युक्ति से डाल कर मूत्र निकालना चाहिये।

पेशाब में अल्व्यूमेन नामक पदार्थ का जाना-मूत्रपिंड की रक्तवाहिनियों पर गर्भाशय की दाब पडने से यह विकार होजाता है। इस रोग में यदि सर्वाङ्ग सूज जावे तो समझना चाहिये कि यह विकार भयप्रद होगया है, क्योंकि प्राय शरीर सूजने से गर्भावस्था के अन्तिम मासमें प्रसूतिके समय अथवा सौर की अवस्था में बहुत ही भयङ्कर आक्षेपक आते हैं।

आक्षेपक- (Eclampsia) यह विकार प्राय॰ गर्भावस्था के अन्तिम तीन महीनों में होता है। इस रोग के होने पर पेशाबमें अल्व्यूमेन नामक पदार्थ जाता है और आखों की पलकें, मुह और हाथ सूज जाते हैं। प्राय॰ पेशाब न्यून परिमाण में होता है।

यह जानने के लिये कि क्या पेशाब में अल्व्यूमेन है या नहीं, पेशाब को एक चमचे में अथवा कांच की परीक्षानली (Test-tube) में डालना चाहिये। इसके बाद उसको स्पिरिट अथवा गैस के दीपक पर गरम करना चाहिये। इससे यदि उसमें अल्व्यूमेन होता है तो वह सफेद और गन्दला हो,

आता है और विनिगर अथवा नाट्रिक एसिड के कुछ बूंद डालने पर भी उसका वह गन्दलापन नहीं दूर होता।

पेशाब में अल्ब्यूमेन होने से आक्षेपक (झटके) आते ही हैं, इसका कोई नियम नहीं। बहुत बार यह भी देखा गया है कि पेशाब में उक्त पदार्थ के होने पर भी झटके नहीं आते। परन्तु फिर भी यदि पेशाब में अल्ब्यूमेन जाती हो तो उपाय शीघ्र करना चाहिये।

झटके शुरू होने के पहिले उनके कुछ पूर्व लक्षण होते हैं, वे लक्षण ये हैं। मस्तक का दर्द दृष्टि का बिगाड़, बीच बीच में चक्कर आना इत्यादि।

एकाएक शरीर के स्नायु बड़े ज़ोर से आकुंचन को प्राप्त होते हैं और इस कारण सर्वाङ्ग अकड़ सा जाता है स्त्री बड़े ज़ोर से अपने शरीर को ऐंठती है, आंखें फिराती है, जीभ बाहर निकालती है, हाथ चाबती है और शरीर तथा हाथ, पैर टेढे मेढ़े करती है। जब झटके आते हैं, तब रक्तसञ्चय के कारण उसी स्त्री के चेहरे पर काला, बैंगनी रङ्ग आ जाता है और जब यह लक्षण होता है, तब उसका चेहरा बदल जाता है और वह इतना भयङ्कर होजाता है कि पहचाना नहीं जासकता। श्वासोच्छ्वास अनियमित और बड़ा जल्दी जल्दी से होता है। प्राय झटकों के समय में मलमूत्र का विसर्जन होता रहता है। झटकों का समय लगभग थोड़ी देर अर्थात् तीन मिनट तक रहता है। उस समय स्त्री बिलकुल बेहोश रहती है। एकबार

जब झटके आने लगते हैं, तब फिर न्यूनाधिक अन्तर से वे फिर आते हैं, झटकों की दो लहरों के बीच में स्त्री का कुछ न कुछ होश अवश्य रहता है परन्तु जब वे जल्द जल्द आने लगते है तब वह बिलकुल बेहोश होजाती है। यही नहीं बल्कि कभी कभी उसकी मृत्यु भी होजाती है। ऐसे भी उदाहरण पाये जाते हैं कि लगातार साठबार झटके आनेपर भी स्त्रियां अच्छी होगई हैं।

झटकों के समय में गर्भाशय का आंकुचन अधिक जोर से होता है और इस कारण स्त्री कभी कभी एकाएक प्रसूत हो जाती है।

इस विकार से १४ फी सदी गर्भवती स्त्रियां मर जाती हैं इसी प्रकार ४० फी सदी बच्चे इस विकार की मृतावस्था में जन्म पाते हैं। माता का रक्त अशुद्ध होजाता है, इस कारण गर्भ का रक्त भलीभाति शुद्ध नहीं होता और इसी कारण यह मृत्यु संख्या इतनी बढ़ी हुई पाई जाती है।

झटकों के शुरू होतेही उचित उपायों का प्रारम्भ करदेना चाहिये। उस स्त्री का ऐसी जगह पहुंचाना चाहिये जहां काफी तौर से स्वच्छ हवा मिल सके। शरीर के सब वस्त्र ढीले कर देने चाहिये और उस स्त्री को बेहोशी की दशा में उसे कोई भी चीज पिलाने का प्रयत्न न करना चाहिये क्योंकि इससे हानि होने की सम्भावना रहती है। बस्ति (Enema)

देने से कभी कभी लाभ होता है, दांतों में जीभ के फँस जाने के कारण कभी कभी उसे हानि पहुँच जाती है, इसलिए उसका मुह फैलाकर दांतोंमें फलालनका गूजा अथवा रबड़ कार्क जैसी अन्य कोई मुलायम चीज एक ओर डालदनी चाहिये।

गर्भावस्था के अन्त में एक दो मास पेशाब की परीक्षा करके योग्य चिकित्सा कर देने से प्राय फिर इस प्रकार के होने का डर नहीं रहता।

- पेशाब में यदि अल्ब्यूमेन जाने लगता है और साथ ही यदि शरीर के भिन्न भिन्न भाग सूज जाते हैं तो उसपर निम्न लिखित उपचार बहुत अच्छ किये जाते हैं।

(१) रेचक औषधियां–पाल्विससह्विआयको २० ग्रेन्स मेग्नीसिया सल्फ २ ड्राम और अका मेन्था पिपरटा १ औंस इनका मिश्रण दिन में तीनबार देते हैं।

(२) मूत्रल औषधियां–पोटेशियम एसिटेट ३० ग्रेन्स टिंक्चर सिल्ला १० बूंद, स्पिरिट इथरिस नायट्रोसी ३० बूंद, पोटेशियम नायट्रेट १० ग्रेन्स और पानी १ औंस, यह मिश्रण भी दिन में तीनबार देते हैं।

(३) त्वचा का कार्य भलीभांति होने के लिये टर्किश बाथ अथवा पसीना लानेवाली औषधियां देते हैं। पसीना लाने के लिये स्पिरिट-ईथरिस नाय ट्रोसी २० बूंद, लायकर एमोनिया ऐसी टेटिस आधा, पानी १ औंस का मिश्रण दिन में तीन बार देते हैं।

दूध, सागूदाना, अरारोट इत्यादि हलका अन्न खाने को देना चाहिये। मांसाहार वर्ज्य करना चाहिये। यदि अत्यन्त नीरक्तता हो तो लोह से बनी औषधें देते हैं। यदि झटके आने की सम्भावना दिखाई देती है, तो आगे दिये हुये इसके उपाय किये जाते हैं।

गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में यदि सूजन बहुत अधिक बढ़ती जाती है तो और उपर्युक्त औषधोपचारों से भी पेशाब के अल्ब्यूमेन का परिमाण कम नहीं होता, तब अकालिक प्रसूति करानी पड़ती है।

झटके बन्द करने के उपचार–इसके लिये रेचक औषधियां देनी पड़ती हैं। रोगी स्त्री यदि बेहोश हो तो जमाल गोटा के तेल (Croton-oil क्रोटनआइल) के दो बूंद शक्कर में घोलकर जीभ पर पिछली ओर रखते हैं। यदि वह होश में होती है तो पल्विहृश जलप कपौंड १ ड्राम और अन्य तीव्र रेचक औषधियां देते हैं।

प्राचीनकाल में इस रोग में शिरावेध करके अर्थात् नस काटकर रक्त निकालने का उपाय मुख्य मानते थे। परन्तु अब आजकल का मत है कि इस रोग में नीरक्तता यों ही विशेष होती है और फिर उसमें भी खून निकालने से वह और भी बढ़ जाती है इसलिये जहां तक होसकता है आजकल इस बीमारी में रक्त नहीं निकाला जाता। परन्तु एक मत यह है कि यदि किसी उपाय से भी झटके बन्द न हों अथवा

उस स्त्री के फेफड़ों में रक्तसञ्चय बहुत होगया हो तो रक्त के निकालने में भी कोई हानि नहीं।

क्लोरोफार्म सुंघाना-जब झटके बहुत जल्द और बार बार आते हों और दो झटकों के बीच के समय में वह स्त्री बेहोश ही रहती हो अथवा झटकों के साथ साथ बहुत सा ज्वर भी हो तब क्लोरोफार्म सुंघाते हैं।

पहले क्लोरोफार्म वहा तक देते हैं कि जहा तक उसका पूर्ण परिमाण होजाय और फिर बाद को बीच बीच में थोड़ा थोड़ा देते रहते हैं।

पोटेशियम ब्रोमाइड और क्लोरल हैड्रेट ३० ग्रेन के परिमाण से पीने को देते हैं। मार्फिया हैड्रोक्लोरेट की तिहाई ग्रेन परिमाण से अथवा पायलो कार्पीन की छठे हिस्से या चोथाई ग्रेनपरिमाण से त्वचा के भीतर पिचकारी लगाते हैं। पायलो कार्पीन की पिचकारी स्त्री की बिलकुल बेहोशी की हालत में नहीं देते।

उपर्युक्त उपायों से यदि झटकों में विशेष अन्तर नहीं पड़ता ना उनको बन्द करने के लिये कृत्रिम रीति से प्रसूति कराना ही चाहिये क्लोरोफार्म सुंघाकर अगले भाग में जैसा कि बतलाया है उसके अनुसार किसी न किसी रीति से गर्भाशय की गर्दन विस्तृत करके प्रसूति की जाती है। कभी कभी गर्भोदक का कोष फोड़ते ही झटके बन्द होजाते हैं।

गर्भोदक का कोष फूटने पर और गर्भाशय की गर्दन खूब विस्तृत होने पर चिमटे लगाकर अथवा आवश्यकता हुई तो गर्भ फिराने का प्रयोग करके गर्भ बाहर निकालते हैं। बच्चा यदि मरा हुआ होता है, तो कहीं कहीं उसका सिर तोड़कर भी बाहर निकालने में शस्त्र-प्रयोग किया जाता है।

सिरदर्द—कभी कभी सिर और मुंह में भी वेदना होती है। गर्भावस्था के कुछ प्रथम मासों में ऐसा होता है।

उपचार—केफिनसायट्रेस आधा रत्ती शक्कर के साथ देते हैं। केजूपुटी आयल सिर में लगाते हैं अथवा क्लोरल हैड्रेट और कपूर मिलाकर तैयार किये हुये द्रव में रुई का फाहा डुबोकर उसको मस्तक पर फिराते हैं अनार के अवलेह में सूतशेखर की १०-२० लकीरें घिसकर देते हैं। स्वर्ण-माक्षिक भस्म १-२ रत्ती थोड़े से आवले के मुरब्बे के साथ देते हैं। प्रकृति, यदि बहुत ही क्षीण होजाती है तो बलवर्द्धक औषधियाँ देते हैं।

सूचना—कुछ चिकित्सक मस्तकशूल पर कुनैन देते हैं और कहते हैं कि इससे तुरन्त ही लाभ होता है, पर गर्भावस्था में इसका प्रयोग करनेसे गर्भपात होने का भय रहता है, इसलिये गर्भावस्था में कुनैन कभी न देना चाहिये।

छाती में जलन—छाती में जलन होने के साथ ही साथ गले में भी जलन होने लगती है और खट्टी डकार आने लगती

है। डकार के साथ ही साथ मुह में कुछ खट्टा और कडुआ सा पानी भी आजाता है। इसके बाद कुछ देर अच्छा रहता है परन्तु भोजन के बाद फिर वही दशा होती है और खाया हुआ पदार्थ बाहर निकल आता है। कितनी ही स्त्रियों को उपर्युक्त लक्षणों के होने के पहिले डकारें आती रहती हैं।

उपचार—बाय कार्बोनेट आफ सोडा लगभग २-५ रत्ती, तोलेभर ठण्डे पानी में देते हैं। स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती और प्रवाल भस्म दो रत्ती, पाच तोले दूध में देते हैं।

कामला—गर्भावस्था में यह विकार बहुत सी स्त्रियों को न्यूनाधिक परिमाण में होजाता है। यह विकार परावर्तन क्रिया से हुआ करता है। इसके सिवाय यकृत जब अपना काम ठीक ठीक नहीं करता, तब भी यह विकार हो जाया करता है। परन्तु इसमें अग्निमांद्य आदि यकृत विकार के चिन्ह दिखाई पडने लगते हैं। ऐसे चिन्ह दिखाई पडते ही यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये।

उपचार—ब्ल्यूपिल आध रत्ती, कुचले का अर्क पाव रत्ती बेंजोइक एसिड ३-४ रत्ती और एक्स्ट्रेक्ट आफ हैयोसियामस आधा रत्ती, इन सबकी गोली बनाकर देते हैं और फिर इसके बाद सल्फेट आफ मेग्नीशिया १ तोला अथवा सल्फेट आफ सोडा आधा तोला और अमोनियम क्लोराइड १० ग्रेन सोंठ के काढ़े में देते हैं। रेंडी के कोमल पत्तों का रस १ तोला, पाव

तोला मिश्रीके साथ दूध में देते हैं। कुटकी का चूर्ण दो माशा थोडी सी मिश्री के साथ देते हैं।

कम्पवात—कभी कभी गर्भवती स्त्रिया शरीर को पेंडाती हैं। जो स्त्रिया छुटपन से ही रोगी होती हैं और फिर पहल पहल उनका गर्भावस्था प्राप्त होती है उन स्त्रियों को यह विकार प्राय. होता है। यह रोग कभी कभी इतना दु.खदायक होजाता है कि स्त्री के प्राण बचाने के लिये अकाल में ही प्रसूति करानी पडती है। यह विकार प्रायः भारतवर्ष में कम होता है।

उपचार—पोटेशियम ब्रोमाइड १०-३० ग्रेन्स, क्लोरल ५, २० ग्रेन्स अफीम चौथाई ग्रेन से १ ग्रेन तक इत्यादि शामक औषधियों का उपयोग यदि कम्प अधिक होता होता किया जाता है। यदि कमजोरी अधिक होती है तो लौहादिक शक्ति दायक औषधिया देते हैं।

राख, मिट्टी, कोयला, गिट्टी इत्यादि पदार्थ भी भुक्खमरे की तरह बडे स्वाद से खाने की इच्छा कभी कभा गर्भवती स्त्रियों को हुआ करती है। इसलिये इस विषय म लोगों का सावधान रहकर ऐसे कोई पदार्थ स्त्री का न खाने देने चाहिये कि जिन से शरीर अथवा गर्भ को हानि पहुँचे।

पागलपन—इस विकारमें गर्भवतीस्त्री बिलकुल उदासीन दिखाई देती है और अपने विषय में सब प्रकार की बुरी भावनायें करने लगती है। कभी कभी उसकी उत्तम भावनाओं

ी नसें इतनी बढ़ जाती है कि वह आत्महत्या करने का भी यत्न करती है। इसलिये उसपर पूरा ध्यान रखना चाहिये। स विकार के उपचार आगे दिये गये हैं।

निद्रानाश, चिड़चिड़ा स्वभाव, एक प्रकार की कष्टदायक ाली इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों के विकार गर्भावस्था में होजाते हैं, ौर ये विकार उत्तम स्थिति में पली हुई स्त्रियों को विशेष ोते हैं। इसलिये उनको खुली हवा में व्यायाम करना चाहिये।

यदि पहले से ही हृदय का कोई विकार हुआ होता है, तो र्भावस्था के कारण हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना हती है। इसी प्रकार क्षयरोगवाली स्त्रियों को भी गर्भावस्था में, चाहे उनको कुछ आराम रहे, परन्तु प्रसूति के बाद उनका ोग फिर जोर पकड़ता है।

इसके अतिरिक्त नीरक्तता, खांसी, श्वास, छाती की धड़कन, मूर्छा, शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार की फुन्सियां होना इत्यादि अनेक विकार गर्भावस्था में होजाते हैं। परन्तु इन रोगों का गर्भावस्था से प्राय: बहुत कम सम्बन्ध रहता है, इसलिये उनको "गर्भावस्था के मिश्ररोग" कहते हैं। इस प्रकार का प्रत्येक विकार जो गर्भावस्था में होजाता है, गर्भिणी की प्रकृति को अशक्त कर देता है और प्राय: सुगर्भावस्था को पूर्ण नहीं होने देता।

इनमें से जो विकार विशेष भयङ्कर होते हैं, उनमें ज्वर अधिक रहता है। फेफड़ों की जलन, चेचक खसरा लोहितांग,

ज्वर, विस्फोटक ज्वर, विसर्प आन्तरिक ज्वर, पारी पारी से आनेवाला ज्वर, महामारी, प्लेग, सन्निपातादिक ज्वर आदि के कारण गर्भपात होजाता है, यही नहीं- बल्कि सूतिकाकाल में इन्हीं विकारों को प्राय सूतिकाज्वर नामक भयङ्कर रोग का स्वरूप प्राप्त होजाता है

उपदंश-यह एक और मिश्र विकार है। इस रोग से रक्त दूषित होजाता है और इसका गर्भावस्था पर विशेष दुस्सह और दुखद प्रभाव पड़ता है। इसके परिणाम न सिर्फ माता को ही भोगने पड़ते हैं किन्तु गर्भ का भी उसका भागी होना पड़ता है। इस विकार के कारण कभी कभी गर्भपात और अकाल प्रसूति भी होजाती है और बच्चा मरा हुआ उपजता है और यदि कदाचित् बच्चा जीवित भी पैदा होता है, तो उसका रक्त ऐसा कुछ दूषित रहता है कि जिसका दूषण दूर करना प्राय असम्भव होजाता है।

सगर्भावस्था में अन्त फलों में और गर्भाशय की भिन्न भिन्न प्रकार की गिलटियां (Tumours ट्यूमर्स) भी कभी कभी होजाया करती है जिनके कारण बहुधा गर्भपात होजाता है

मधुमेह-यह विकार भी कभी कभी गर्भावस्था में हो जाता है और उस समय इसकी प्रबलता भी विशेष होती है। यह विकार कभी कभी उस गर्भवती स्त्री का और उसके गर्भ को भी भयप्रद होता है।

रक्तस्राव–यह विकार प्रसूति के पूर्व प्रसूति के समय और प्रसूति के बाद भी होसकता है और यह चाहे जिस समय हो विशेष भयङ्कर होता है। प्रसूति के पहिले और प्रसूति में होनेवाला रक्तस्राव दो कारणों से होता है।

(१) फिन्हाई गर्भाशय की गर्दन के मुख पर लगी होने के कारण और (२) कुछ आकस्मिक कारणों से। पहले कारण में फिन्हाई सदैव की भांति गर्भाशय की पेंदी से चिपटी नहीं होती, किन्तु वह गर्भाशय के निचले भाग में उसकी गर्दन के पास लगी रहती है। वह बच्चे के गर्दन वाले भाग के बिलकुल सामने पूर्णतया अथवा कुछ गर्दनपर आई हुई रहती है अर्थात् गर्भाशय का जो भाग फैलने को होता है, उसी में वह लगी रहती है। इस विकार के रक्तस्राव को अपरिहार्य अथवा अनिवार्य रक्तस्राव कहते हैं। इसका यह नाम पड़ने का सिर्फ यही कारण है कि जब गर्भाशय प्रसरण को प्राप्त होने लगता है और उसकी गर्दन विस्तृत होने लगती है तब फिन्हाई गर्भाशय से छूटने लगती है। उसके छूटते समय रक्तवाहिनियां छूट जाती हैं और उनसे रक्तस्राव प्रारम्भ होजाता है।

पहली गर्भावस्था में यह विकार बहुत कम देखा जाता है परन्तु प्राय जिस स्त्री के एक से अधिक बच्चे हो चुक्ते हैं अथवा जिसको एक के बाद एक करके कईबार अकालिक प्रसूति होचुकी है उस स्त्री को यह विकार होने की सम्भावना रहती है क्योंकि ऐसी स्त्री का गर्भाशय पोला और कुछ अग

खाली और ढीला होजाया करता है और इस कारण गर्भमूलक अण्डा जब गर्भाशय में आता है, तब जो उसे गर्भाशय की पेंदी में श्लेष्मल त्वचा की घड़ियों में पड़कर चिपटना चाहिये सो नहीं चिपटता, किन्तु इसके बदले वह गर्भाशय के निचले भाग में पड जाता है और वह वहीं चिपट रहता है और इस कारण किन्हाई भी वहीं तैयार होती है। इस प्रकार जब किन्हाई नीचे चिपट जाती है तब गर्भपात अथवा अकालिक प्रसूति होने की भी सम्भावना रहती है इस दशा को प्लासेंटा प्रिविया कहते हैं।

प्लासेंटा प्रिविया - (Plasenta Praevia) इस विकार के कारण होनेवाला स्राव प्राय छठवें अथवा सातवें महीने में शुरू होता है। परन्तु कभी कभी जबतक गर्भावस्था का पूर्णकाल नहीं होजाता, तबतक वह नहीं होता। ऐसे समय में यदि योनिपरीक्षा की जाय तो यह मालूम होगा कि गर्भाशय की गर्दन का मुख कुछ विस्तृत सा होगया है और किन्हाई का कुछ भाग हमारी उँगलियों और गर्भके दर्शनभाग के बीच में आगया है। इस विकार का रक्तस्राव एकाएक होता है। उसके कोई भी चिन्ह पहले देखने में नहीं आते। हां, कभी, कभी ऐसा होता है कि स्त्री सदैव की भांति नींद से उठती है, तब वह देखती है कि प्रसवमार्गसे अत्यन्त रक्तस्राव हुआ है। यह रक्तस्राव वेग- आने के समय विशेष होता है और जब

वेग आने के समय विशेष होता है और जब वेग ठहर जाता है, तब यह भी कम होजाता है।

इस विकार का रक्तस्राव कभी कभी इतना एकदम और इतने ज़ोर से होता है कि उसके कारण स्त्री बेहोश तक हो जाती है कितनी ही बार पहिले यह बिलकुल थोड़ा होता है, और फिर धीरे धीरे बढ़ता जाता है।

आकस्मिक किंवा आगन्तुक रक्तस्राव–

(Accidental Haemorrhage) एक्सिडेन्टल हेमरेज यह रक्तस्राव उस समय होता है कि जब फिन्हाई अपनी ठीक जगह से किसी कारण वश छूट जाती है यह गर्भावस्था में चाहे जब पूर्णकाल की प्रसूति क पहिले अथवा उसी समय पर होता है।

अकसर यह विकार उस समय भी होजाता है कि जब गर्भिणी को कोई चोट पहुँचती है अथवा वह विशेष परिश्रम करती है। जब वेग आते हैं तब यह रक्तस्राव बन्द रहता है परन्तु जब वेग ठहर जाते हैं, तब फिर जब तक दूसरी बार वग न आवे, तबतक यह जारी रहता है इस आगन्तुक रक्तस्राव के निम्नलिखित भी कारण होते हैं। जैसे–भारी धक्का अथवा चोट लगना, गिर पड़ना, ज़ोर से हँसना, अत्यन्त परिश्रम करना, क्रोध करना ज़ोर से खाँसना, भारी बोझा

धचोगा, खराब रास्ते से गाडी में जाना रेलगाडी की इत्यादि।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि आकस्मिक रक्तस्राव के अधिक परिमाण में जारी रहने पर भी रक्त का एक बूंद भी बाहर दिखाई नहीं पडता। क्योंकि ऐसे समय रक्त गर्भाशय की दीवाल और गर्भकोष में मज्जित हो रहता है उसको गुप्त रक्तस्राव (Cancealed Hacmorrhage) कन्सील्ड हेमरज) कहते हैं। इस रक्तस्राव के होते समय जचा को रक्तस्राव के सब लक्षण होते हैं। अर्थात् हाथ पैर ठण्ढे पड जाते हैं, शरीर फीका पड जाता है अस्वस्थता रहती है, श्वासोच्छ्वास जल्द होता है, जैसे उसास छोडती हो, नाडी अशक्त रहती है और जल्दी जल्दी चलती है, रस्त्रा बिलकुल शिथिल पड जाती है। उसको गर्भाशय में ऐसे वेग आते हैं, जैसे फटा जाता हो अथवा शूल की भांति वेग आते हैं। और कभी कभी तो गर्भाशय रक्तसे फूल उठता है और उसका बडा गोला सा बाहर से हाथ में मालूम होता है।

अपरिहार्य रक्तस्राव और आकस्मिक रक्तस्राव ये दोनों ही भयावह है।

आगन्तुक और आकस्मिक रक्तस्राव में भेद।

आगन्तुक रक्तस्राव।	अनिवार्य रक्तस्राव।
१-वेदना होते समय रक्तस्राव बन्द होजाता है।	१-वेदना होते समय रक्तस्राव जारी रहता है।
२-गर्भ की त्वचा और कभी कभी गर्भ का कोई भाग, योनि में उँगली डाल कर परीक्षा करने पर, हाथ में लगता है।	२-जरायु (किन्दाई) नरम मालूम होती है।
३-गर्भाशय का मुख पतला रहता है।	३-गर्भाशय का मुख मोटा रहता है।
४-स्राव के लिये कोई न कोई आगन्तुक कारण होता है।	४-स्राव एकाएक बिना किसी कारण होता है।

दाई को ऐसे समय में रक्तस्राव की चिकित्सा करनेका कार्य अपने जिम्मे न लेना चाहिये।

रक्तस्राव चाहे जितना कम हो, स्त्री को खाटपर उताना खूब आराम से सुला देना चाहिये। उसका सिर जरा नीचा और नितम्ब (कूल्हे) ऊँचे रहना चाहिये। पलँग के पायताने की ओर के दोनों पायों के नीचे कुछ न कुछ रख देने से उधर का भाग ऊँचा होजाता है, और सोनेवाली स्त्री का नितम्बभाग आपही आप ऊँचा होजाता है। रक्तस्राव यदि अधिक होता हो और डाक्टर के आने की आशा न हो, तो दाई को अपनी

ओर से रक्तस्राव बन्द करने का पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिये रक्तस्राव बन्द करनेके लिये उसके योनिमार्ग में गूंजा लगाना चाहिये और पेट के ऊपर से खूब कड़ा उदरबन्ध बाधना चाहिये, इससे गर्भाशय में रक्तजमा होना बन्द होजायगा। रक्तस्राव बन्द होजाने पर यदि स्त्री बेहोश हो, मुह फीका हो और नाड़ी बन्द हो, तो उसे होश में लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(१) इसके लिये उसके शरीर को सेंककर गर्मी लानी चाहिये। (२) उसे पहिले की स्थिति में ही पड़ी रहने देनी चाहिये। (३) एक पाइण्ट गरम पानी में एक ड्राम नमक डालकर उस पानी को कमसे कम एक पाइण्ट भर गुदद्वार में पिचकारी से डालना चाहिये। रक्तस्राव के बाद उत्तेजक औषधियां बहुत सावधानी से देनी चाहिये। क्योंकि इनके

पीछे इस रक्तस्राव के जो कारण बतलाये गये हैं, उन सब को वर्ज्य करना चाहिये। स्त्री को बिछौने पर पड़ी रहने देना चाहिये। उसके शरीर पर हलका वस्त्र रहने देना चाहिये और ठण्डा पाने का पदार्थ छोड़कर और उसे कुछ भी न देना चाहिये। ठण्डे पानी की बस्ति देना चाहिये। योनि में गूजा लगाना चाहिये। यह गजा रुई का या तागेकी मुलायम आटी का अथवा रेशमी रूमाल का होना चाहिये और उसे योनि वीक्षण यन्त्र से प्रविष्ट करना चाहिये। गूजे से सारी योनि बिलकुल भर देनी चाहिये।

१। तोला डैल्यूट सलफ्युरिक एसिड, ५ तोले गुलाब के फूलों की कलियों के फांट में डालकर, इस मिश्रण में से २॥ तोला प्रतिघण्टे में देते हैं। असिटेट आफ लेड ५ रत्ती दो दो घण्टे बाद देते हैं यह अफीमके साथ अथवा अलग ही देते हैं। अफीम एक रत्ती देते हैं। अथवा उसका अर्क ४० बूंद एक तोला पानीमें डालकर देते हैं। ये सब एकदम देते हैं। अथवा बार बार थोड़ी थोड़ी मात्रा में देते हैं। ग्यालिकएसिड अथवा ट्यानिक एसिड ६ रत्ती देते हैं। भाग का द्रवार्क ५ बूंद देने से अच्छा लाभ होता है। ठण्डा पानी अथवा उसमें थोड़ा सा शोरा डालकर पीने को देते हैं। स्त्री को उठने बैठने न देना चाहिये पेट पर पट्टा बांधने पर भी लाभ होता है।

प्रसूति शीघ्र शुरू करना—जब यह विश्वासपूर्वक मालूम होजाय कि स्त्री को प्लैसेंटा प्रीविया का विकार होगया

है अथवा ज्यों ही यह मालूम होजाय कि किसी कारण से भी अत्यन्त रक्तस्राव होरहा है, त्यों ही प्रसूति बहुत जल्द शुरू की जाती है।

प्रसूति शुरू करना जब एकबार निश्चित होजाता है तब पहले यह देखते हैं कि गर्भाशय की गर्दन इतनी विस्तृत हुई है या नहीं कि उसमें उँगली जाय। वह यदि विस्तृत नहीं हुई हो तो पहिले गरम पानी की पिचकारी देते हैं। इसके बाद उस गर्दन में एक अथवा अधिक ट्यूपेलों की बत्तियां (Tupelo tents) डाल कर योनिमार्ग में गूजे लगाते हैं। तीन अथवा चार घण्टे बाद गूजे और बत्तियां निकाल डालते हैं।

इसके बाद दो हजार में एक के परिमाण से मरक्यूरिक परक्लोराइड का पानी बनाकर उसीसे योनिमार्ग धोते हैं। अब भी यदि गर्भाशय की गर्दन दो उँगलियां जाने योग्य चौडी नहीं हुई हो तो उसको चौडी बनाने के भिन्न भिन्न यन्त्रों का उपयोग किया जाता है।

गर्भाशय की गर्दन के मुख पर लगी हुई किन्हाई यदि शीघ्र नहीं छूटती तो उसकी बीच में उँगली डालकर, उसको सब ओर से धीरे धीरे फिराकर, किन्हाई छुडाते हैं। उसको सम्पूर्णतया छुडाने का प्रयत्न नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने से रक्तस्राव अधिक होता है। इस प्रकार से किन्हाई छुडाने

के लिये तर्जनी की, अँगुली की दो पोरें गर्भाशय की गर्दन के के भीतरी मुख के अन्दर लेजानी चाहिये।

बच्चों को फिराना—जब भीतर दो अँगुलियां जाने योग्य चौड़ी होजाती है तब यह प्रयोग किया जासकता है। इस विकार में यह प्रयोग करने से रक्तस्राव बहुत अच्छी तरह से बन्द किया जासकता है। एकबार जहां बच्चे का पैर बाहर गर्भाशय की गर्दन के मुख में आजाय कि फिर प्रसूति के लिये जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि ऐसा करने से गर्भाशय की गर्दन फटने की सम्भावना रहती है। यदि दोही अँगुलियों के जाने भर की गर्दन चौड़ी हुई होती है तो बाथ पोलरवर्शन करते हैं। भीतर उँगली डालकर गर्दनके भीतरी मुख के आसपास की फिल्हाई छुड़ाकर इसके बाद प्रयोग का प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रयोग का पूर्ण वर्णन आगे दिया गया है।

यदि गर्भोदक का कोप फट गया हो, गर्दन पूर्णतया विस्तृत होगई हो फिल्हाई गर्दन के भीतरी मुखपर अधिक न आई हो, प्रसूति शीघ्र होने के चिन्ह दिखाई न देते हों और रक्तस्राव जारी हो, तो चिमटे का उपयोग करके प्रसूति कराते हैं। इस प्रयोग का भी वर्णन आगे दिया हुआ है।

इस विकार में प्रसूति होजाने के बाद जन्तुनाशक पद्धति के अनुसार, योनिमार्ग धोने का कार्य इत्यादि सब बातें बहुत ही सावधानी पूर्वक करनी चाहिये।

आठवां भाग ।

गर्भाशयादि इन्द्रियों के विकार के कारण होने वाली अस्वाभाविक सगर्भावस्था और मृतगर्भ ।

पश्चान्नमन–(Retroflexion रिट्रोफ्लेक्शन) सगर्भ गर्भाशय का पीछे की ओर झुक जाना–इस दशा में गर्भाशय का ऊपर का भाग टेढ़ा होकर पीछे की ओर झुक जाता है और इसकी गर्दन जघनास्थि की सन्धि के पास अगली ओर से झुककर ऊपर की ओर चली जाती है। इस कारण गर्भाशय का ऊपरी भाग और उसकी गर्दन दोनों प्राय समानही सपाटी पर रहते हैं। यों तो उसकी सदैव की स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध रहती है। गर्भाशय अपनी रिक्त दशा में भी प्राय. पीछे की ओर झुका रहता है और इस कारण ऐसी दशा में यदि उसमें गर्भ रह जाता है तो वह वैसाही झुका हुआ बना रहता है।

जब ऐसी दशा आती है तब इसके कारण कुछ निश्चित लक्षण दिखाई देते हैं। उस स्त्री को पेड़ू पर कुछ भारीपन मालूम होता है। पेशाब करने के लिये उसको बारम्बार जाना पड़ता है और पेट के स्तब्ध होजाने से कभी दस्त आने लगते हैं, तो कभी मलावरोध होजाता है। पेशाब साफ नहीं होता। पेट में मलावरोध बना हो रहता है। इसका यदि कोई इलाज

नहीं किया जाता, तो पेशाब इच्छानुसार नहीं होता। बूंद बूंद करके पेशाब गिरने लगता है। उसी समय पेट का नीचे का भाग यदि दाबकर देखा जाय, तो कुछ दर्दसा होने लगता है।

- पेट में कुछ भारीपन मालूम होने का कारण यह होता है कि गर्भाशय बड़ा होजाता है और वह कटीर में नीचे लचता जाता है। इससे मूत्राशय तन जाता है और इसी कारण उपर्युक्त लक्षण दिखाई देने लगते हैं और गर्भाशय की पेंदी का गुदद्वार पर दबाव पड़ने के कारण मल विसर्जन की क्रिया अनियमित होजाती है।

चौथे महीने में पेशाब करते समय कष्ट होता है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय बड़ा होजाता है और मूत्राशय के मुखपर उसका भार पड़ता है और इससे पेशाब का मार्ग बन्द होजाता है।

इन दो बातों के विषय में चौथा महीना विशेष महत्त्वपूर्ण है जैसा कि पहले बतलाया है तीसरा मास जबतक समाप्त नहीं होजाता, तबतक गर्भाशय कटीर में रहता है और इसके बाद वह बड़ा होजाता है अतएव कटीर में रहने योग्य नहीं रहता इसलिये वह पेट में ऊपर की ओर चढ़ता जाता है। परन्तु यदि वह पीछे की ओर झुका रहता है तो वह त्रिकास्थि की उँचाई से ऊपर नहीं आ सकता। फिर भी वह बढ़ता जाता है इससे सम्पूर्ण कटीर को व्याप्त कर लेता है और मूत्राशय तथा गुदकाण्ड को दाब देता है। ऐसी दशा में इसी

को पेशाब खुलकर नहीं हो सकता, इसलिये उसका मूत्राशय बहुत जल्द फूल जाता है और पेट के निचले भाग में बीचों बीच एक गोला सा जान पड़ने लगता है। मूत्राशय बहुत तन जाता है इसलिये भीतर पेशाब पर दाब पड़ती है और पेशाब बूंद बूंद निकलता है इस कारण कभी कभी पेशाब निकलने का भ्रम भी होजाता है, पर वास्तव में वैसा नहीं होता, किन्तु मूत्रावरोधही रहता है। ऐसे समय में यदि कोई उचित उपचार नहीं किये जाते तो जिन भागों पर दाब पड़ती है वे भाग सड़ने लगते हैं और पेशाब, जो बहुत देर तक रुका रहने के कारण दुर्गन्धियुक्त होजाता है, उससे निकलने वाले बिषैले पदार्थ रक्त में मिल जाते हैं।

कभी कभी गर्भाशय त्रिकास्थि के ऊपरी भाग के ऊपर आपही आप सरक जाता है और फिर सगर्भावस्था सुभीते के साथ जारी रहती है। परन्तु यह बात बिश्वासपूर्वक नहीं कही जासकती कि ऐसा सदैव ही होता है।

इस बिकार का निदान निम्नलिखित चिन्हों से सहज ही निश्चित किया जासकता है।

(१) तीन मास तक आर्तव बन्द रहता है।

(२) जघनास्थि की सन्धि के ऊपर ही पेट में एक गांठ हाथ से टटोलने पर मालूम होती है।। उसमें हाथ लगाने से दर्द मालूम होता है।

(३) योनिमार्ग की पिछली दीवाल (उसके ऊपर की ओर से उसमें गर्भाशय की पेंदी पड़ जाने के कारण) आगे आई हुई दिखाई देती है।

(४) गर्भाशय की गर्दन जघनास्थि की सन्धि की ओर आगे की तरफ और ऊपर की तरफ चली जाती है, इसलिये वहां तक अँगुली पहुँचाने में कठिनाई पड़ती है।

(५) पीछे झुके हुए गर्भाशय के योग से योनिमार्ग की अगली ओर की दीवाल तन जाती है और इससे मूत्रमार्ग का छिद्र बहुत ऊपर की ओर सरक जाता है।

(६) पेट के निचले भाग की गांठ मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकालने पर प्राय दूर होजाती है।

पेट के निचले भागकी प्रत्येक गांठके विषय में परीक्षा करने के पहिले मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्रनिकालते ही पेट के ... होजाता है और निदान रोग का ... ना ... है। इसलिये में मल ... निकाल ... की

बीतते जाते हैं उसी परिमाण से गर्भाशय को सीधा करने का काम भी कठिन होता जाता है। कभी कभी यह प्रयोग करना अशक्य भी होजाता है और इसलिये गर्भपात कराने की नौबत आ जाती है।

इस विकार को हुये यदि थोडे ही दिन हुये हों तो योनि-मार्ग से पीछे की ओर दो अँगुलियां डालकर गर्भाशय की पेंदी ऊपर की ओर ढकेलना चाहिये और उसकी आगे गई हुई गर्दन नीचे की ओर खींचना चाहिये। इस प्रकार जब गर्भाशय सामने होजाय तब उसको वैसाही रखने के लिये हाजिस पेसारी अथवा साधी गोल (Ring रिंग) पेसारी डाल देनी चाहिये।

उपर्युक्त प्रयोग करते हुये स्त्री को सेमिप्रोन (Semiprone) स्थिति में सुला देना चाहिये, अर्थात् पहले यह कोच पर बायें करवट से सो जावे। उसका नितम्ब कोचके किनारेपर आनेदे और उसकी जघायें ऊपरकी ओर पेटके पास आने दे। इसकेबाद् उसका बाया हाथ शरीर के नीचे से निकाल कर हथेली का पिछला भाग दाहिने कंधौरे की हड्डी के पास आने दे और उसका दाहिना हाथ कोच के नीचे लटका रहने दे। उसका मुंह बाई ओर घूमा रहे, अथवा कम से कम कोच की ओर घूमा रहे। ऐसी स्थिति में जब स्त्री पडी हुई हो, तब परीक्षा करके उपर्युक्त उपयोग करना सहज पड़ता है।

उपर्युक्त रीति से यदि गर्भाशय सामने न किया जासके, तो यही प्रयोग उस स्त्री को "नी एल्बो पोजिशन" Knee Elbow position) में (उकड़ू) सुलाकर करना चाहिये। इस स्थिति में स्त्री को इस रीति से पेटकौंवा रहना होता है कि उसके घुटने और कुहनिया कोच पर टिक जाती हैं और उसकी छाती प्रायः कोच में लगती है। इस रीति से रहनेपर जघायें खड़ी रहती हैं और शरीर के भाग प्रायः उलटे होजाते हैं। इस स्थिति में टेढ़ा गर्भाशय सहज ही सीधा किया जासकता है।

योनिमार्ग से यदि गर्भाशय सीधा नहीं किया जासकता, तो गुदामार्ग से भी उँगुलिया डालकर निम्नलिखित प्रकार से यह प्रयोग किया जाता है।

स्त्री अपने हाथ और घुटने टेककर पेटकौंवा रहे और उपचार करनेवाला अपने दाहिने हाथ की दो अँगुलियों में तेल लगाकर उनको योनि में डाले और बायें हाथ की दो अँगुलियां मलाशय में प्रविष्ट करे। इसके बाद उन चारों अँगुलियों से गर्भाशय को दबावे और जब वह कुछ उठाया जासके तब योनि की अँगुलियों से उसका मुह ढूंढे। जघनास्थि के पीछे अँगुलिया लाने पर वहां गर्दन मिल जाती है उसको नीचे खींचें और मलाशय की उँगलियों से पेंढी पर दाब रहने दे इस युक्ति से जब गर्भाशय पूर्व स्थान पर आजाय, तब गर्दन के अगले भाग में गोलाकार पेसारी रक्खे, इससे

गर्भाशय फिर टेढ़ा नहीं होता। यह प्रयोग करते समय क
कभी क्लारोफार्म भी सुंघाते हैं।

अकसर ऐसा भी होता है कि, गर्भाशय के भलीभांि
सामने होजाने पर भी पीछे से गर्भपात होता है।

पूर्वनमन–(Antiflexion ऍंटीफ्लेक्शन) सगर्भ गभ
शय का आगे टेढ़ा होना। यह स्थिति पीछे की ओ
उसके टेढ़े होने के बिलकुल विरुद्ध है। गर्भाशय की पें
पीछे न पडते हुये, टेढ़ी होकर आगे पडती है। यह स्थि
यद्यपि पिछली स्थिति के समान भयावह नहीं है परन्तु फि
भी इससे बहुत भयङ्कर लक्षण होते हैं।

गर्भावस्था के पहिले कुछ महीनों में गर्भाशय के आ
जघनास्थियों की सन्धि बिलकुल समीप रहती है। इससे व
अगली ओर बहुत टेढ़ा नहीं होता। परन्तु आगे चलकर ज्
ज्यों गर्भाशय बढ़कर कटीर के ऊपर जाता रहता है त्यों त्
यह कठिनाई दूर होती जाती है और फिर उसके टेढ़े होने
सिर्फ पेट की खाल ही रुकावट डालती है। यह पेट की खा
उन स्त्रियों में विशेष ढीली होजाती है कि जिनके कई बच्चे ह
चुकते हैं और इस कारण उनके गर्भाशय के अगली ओर टे
होने में विशेष कठिनाई नहीं पडती इसलिये यह स्थिति पहिल
गर्भावस्था की स्त्रियों की अपेक्षा उन स्त्रियों में बहुत बा
दिखाई देती है कि जिनके कईएक बच्चे होचुके हैं।

लक्षण-पहिले महीनों में ये लक्षण विशेष प्रबल नहीं होते। मूत्राशय पर दबाव पड़ने के कारण बारम्बार पेशाब होने का मुख्य लक्षण दिखाई देता है। प्रथमतः इस पर कोई विशेष उपाय करने योग्य नहीं होता।

अगले महीनामें मूत्र सम्बन्धी लक्षण विशेष दिखाई देते हैं। चलने में कष्ट होता है। और पेट बहुत बड़ा दिखाई देने लगता है।

प्रसूति के समय प्रसूति के मार्ग की दिशा बदल जाने के कारण प्रसूति में बहुत विलम्ब लगता है। इसका उपाय यह है कि स्त्री को सीधा सुलाकर, कड़ा उदरबन्ध बाधना चाहिये। इस बन्धनके कारण गर्भाशय सदैव की स्थिति में रहता है।

गर्भाशय-भ्रंश-(Prolopse of the uterus प्रोलेप्स आफ दि यूटेरस) इस स्थिति में, गर्भाशय अपने आधार छूट जाने के कारण अथवा कम होजाने के कारण, भीतर के गर्भ सहित, न्यूनाधिक परिमाण से नीचे आ जाता है।

उसके आसपास के भागों पर उसका भार पड़ता है और गर्भाशय के पिछले टेढ़े होने के समान ही मूत्राशय और मलाशय के सम्बन्धी लक्षण होते है।

उपाय-गर्भाशय को पीछे की ओर भीतर हटाओ और उसके वहीं रहने के लिए योनिमार्ग में, रबर की पेसारी के आधार दो।

यह स्त्री जहांतक होसके पड़ी रहे, और प्रसूति का समय समीप आनपर भी उसको बिलकुल पड़ी ही रहना चाहिये मर्दन का प्रकरण होते ही कभी कभी अकस्मात् एक वेदना होते ही बच्चा बाहर निकल आता है।

इस रोग में खासकर बस्तकोष्ठ का लक्षण होता है, अतएव उसकी ओर विशेष ध्यान देना होता है।

पिण्ड–(mo'es मोल्स) ये दो प्रकार के होते एक मांसल और दूसरे पानी से भरे हुए।

मांसल पिण्ड–(Corneous moles कारनियस मोल्स) इन गोलों के पैदा होने का कारण गर्भावस्था के प्रथम कुछ महीनों में गर्भाशय की पोलाई में रक्त का सञ्चय होता परन्तु ऐसा होने पर भी मूल अण्डा गर्भाशय से छूटकर बाहर नहीं गिरता।

अण्डे का जो भाग गर्भकोष से चिपटा रहता है, उसका पोषण जारी रहता है। गर्भाशय में सञ्चित होनेवाले रक्त गोले में यह अण्डा चिपका रहता है, अतएव उस गोले का गर्भाशय से सम्बन्ध होजाता है और इसका भी अण्डेके साथ ही साथ पोषण होता है। इस गोले में भी अण्डे में आनेवाली रक्तवाहिनियां आ पहुँचती है। और इस रीति से अण्डा और रक्त का गोला दोनों एक होजाते हैं और उन दोनों से मांस गोले के समान एक भाग तैयार होता है और उसमें गर्भ की आकृति के अनुसार कुछ भी दिखलाई नहीं देता। इस रीति

से तैयार होनेवाला मांस का गोला कई महीने तक गर्भाशय में रहता है और अन्त में वह बाहर गिर जाता है।

यह गोला जबतक भीतर रहता है, तब तक स्त्री को गर्भावस्था के सब लक्षण जैसे के तैसे होते रहते हैं।

पानी से भरे हुए गोले–(Hydatidiform moles हायडाटिडाफार्म मोल्स) इस विकार से गर्भाशय में छोटे छोटे अंगूरों के समान छोटे छोटे गोले पानी से भरे हुये होते हैं। ये गोले गर्भकोष के कण्टक तुल्य सिरों से निकलते हैं। ये सिरे जो गर्भधारण के दूसरे मास के अन्त में नष्ट होजाने चाहिये, इस विकार में नष्ट न होकर बढ़ जाते हैं और इनकी संख्या भी अधिक होजाती है। यहां तक कि उनके कारण गर्भाशय की पोलाई भर जाती है और गर्भाशय अपनी सदैव की स्थिति की अपेक्षा दुगुना और तिगुना तक बड़ा हो जाता है।

इस प्रकार तीसरे मास के अन्त में गर्भाशय कटीर में न रहते हुए बढ़कर नाभि के भी ऊपर चला जाता है। ये गोले ज्यों ज्यों बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों गर्भ दिन दिन निःसत्व होता जाता है और अन्त में विलीन होजाता है यहां तक कि इन गोलों में उसका नाम निशान भी नहीं रहता।

लक्षण–स्त्री को सदैव के गर्भावस्था के लक्षण होते रहते हैं। इसके सिवाय उसको वमन विशेष होता है। और योनिमार्ग से बारम्बार लालरक्त का स्राव होता है। इस स्राव

में उपर्युक्त गोले बाहर निकलते रहते हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त पेट, गर्भावस्था के सद्य के परिमाण की अपेक्षा अधिक शीघ्रतापूर्वक बढ़ता है। इस कारण इस स्थिति का निदान करना सहज रहता है। परन्तु यदि स्राव में उक्त गोले नहीं हाते, तो निदान करना प्राय: बहुत कठिन होता है।

ज्यों ही इस विकार के होने का विश्वास होजाय, त्यों ही जहां तक होसके, गर्भाशयको बहुत जल्द रिक्त करने की तैयारी करनी होती है। कभी कभी सम्पूर्ण गोलों का समूह आपही आप बाहर निकल पड़ता है। उसका वजन कितने ही पौंड तक होसकता है। कृत्रिम रीति से गर्भाशय को रिक्त करने में अनेक भयावह परिणाम होसकते हैं। गर्भाशय मोटा न होते हुए बढ़ जाने के कारण सहज ही फट जाता है। इसी प्रकार गर्भाशय रिक्त होते ही चूंकि वह बहुत फूला हुआ होता है, इसलिये अच्छी तरह से आकुञ्चन भी नहीं पाता, अतएव प्रसूति के बाद के रक्तस्राव के समान ही रक्तस्राव होने की सम्भावना रहती है।

कभी कभी गर्भाशयके पूर्णतया रिक्त न होनेके कारण भीतर रहे हुये भाग सड़ जाते हैं और उनका विष रक्त में मिल जाता और इससे सूतिका ज्वर उत्पन्न होजाता है।

गर्भोदक अधिक होना—(Hydramnios हायड्राम नियस) यह विकार प्रायः गर्भावस्था के पांचवें अथवा छठे मास में होता है। परन्तु यह कभी कभी इससे पहिले

होता है। जुड़े हुए बच्चों के होने की हालत में भी यह
ार कभी कभी होजाता है।

यह विकार जब होता है, तब प्रायः गर्भ विरूप और
लित दशा में रहता है और कभी कभी गर्भाशय में रहते
ही मर जाता है। इस विकार में लगभग सौ में सिर्फ छै
के जीवित उत्पन्न होते हैं, परन्तु इनमें भी प्राय आधे बच्चे
के बाद बहुत जल्द मर जाते हैं।

इस विकार में गर्भिणी का पेट बहुत बड़ा होजाता है और
ी चलकर तो वह इतना बढ़ जाता है कि गर्भिणी को
साच्छ्वास लेने में भी अत्यन्त कष्ट होता है। इस विकार
कभी कभी गर्भपात भी होजाता है।

जब यह विश्वास होजाय कि अब इस विकार पर और
ई उपाय नहीं चलता, तथा गर्भिणी को बहुत कष्ट होरहा
और उसकी प्रकृति बिलकुल निर्बल होती जारही है, तब
दिक का कोष फाडकर उसे बाहर निकल जाने देना चाहिये।
ा करने से गर्भ भी बाहर निकल जाता है। इसलिये यह
ाय गर्भिणी की प्राणरक्षा के लिये सिर्फ उसी दशा में किया
ता है, जबकि उसकी प्रकृति बहुत ही बिगड़ जाती है।

इस विकार से गर्भिणी को बहुत ही भय रहता है
) विशेष दाब के कारण उसकी प्रकृति बिगड़ती है और
) गर्भाशय फूलने के कारण प्रसवान्तर रक्तस्राव होने का
रहता है।

हायड्रोहिया (Hydrorrhoea) नाम का भी प्राय ए
विशेष विकार होता है, इसमें गर्भावस्था में गर्भाशय में प
पतला पदार्थ तैयार होता है। यह पदार्थ गर्भ के कोष स
उत्पन्न होता है। इसमें और गर्भोदक में सिर्फ इतना ह
अन्तर रहता है कि यह पदार्थ सदैव बूद बूद बाहर निकलत
रहता है, इससे कभी कभी तो गर्भिणी के वस्त्र भीगकर त
हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त और कोई कष्ट इस विकार में नहीं होते
यह विकार गर्भावस्था के अगले मास में प्रारम्भ होता है
परन्तु इस विकार पर कोई उपाय आज तक नहीं मिला।"

गर्भाशय बाह्यगर्भधारणा–Extrauterine Foetati
एक्स्ट्रायूटेराइन फीटेशन) इसका अर्थ यह है कि गर्भाशय क
पोलाई के बाहर किसी भी जगह पुरुष के वीर्य से सजी
होने वाले अण्डे का बढ़ना। इस रीति से गर्भ जिस जग
बढ़ा होगा उस जगह से उस गर्भावस्था का नाम देते है
जैसे कि उदर में गर्भ बढ़ा हुआ होता है तो उसे उदरस्थ
(Abdominal - अब्डामिनल) गर्भधारणा कहते हैं। यदि
अण्डाशय में उसकी वृद्धि होती है तो अण्डाशयस्थ Ovarian
वेरियन) और यदि अण्ड वाहक नलिकाओं में होती है तो उसे
नलिकान्तर्गत (Tubal ट्यूबल) गर्भ-धारणा कहते हैं।
इनमें से अन्त का प्रकार बहुधा होता है। यह स्थिति बहुत
भयङ्कर होती है। क्योंकि जिस थैली में अण्डा होता है, वह

कब फूटेगी, इसका कोई नियम नहीं रहता और भीतर का सम्पूर्ण भाग और उसके कारण होनेवाला न्यूनाधिक रक्तस्राव ये सब उदर की पोलाई में होते हैं। यह दशा गर्भधारणा के तीसरे या चौथे मास में होती है। वह थैली जब फूटती है, तब स्त्री को पेट के निचले भाग में कुछ न कुछ फूलने अथवा टूटने के समान ज्ञान होता है। इसके साथ ही बड़ी वेदना होती है और स्त्री को मूर्च्छा आजाती है। उसका मुंह फीका पड़ जाता है। नाड़ी सूक्ष्म होकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक चलती है। कभी कभी हाथ में वह लगती ही नहीं। स्त्री को भीतर होश रहता है, परन्तु प्राय इस दशा में ही उसकी मृत्यु भी होजाती है।

इस भयङ्कर विकार का निदान करना थैली फूटने के पहले बहुत ही कठिन होता है। बहुधा साधारण गर्भावस्था की अपेक्षा और कुछ भी न्यूनाधिक नहीं मालूम होता और लक्षण भी भिन्न नहीं होते। तथापि अकसर पेट के निचले भाग में हाथ लगाने से दर्द होता है। और योनि मार्ग से कभी कभी रक्तस्राव भी होता है। परन्तु यह भी कहा जासकता है कि ये लक्षण दूसरी स्थिति के कारण होते हैं। इसलिये इस स्थिति का भलीभांति निदान नहीं किया जासकता।

कारण-अण्डवाहक नलिकामें भीतरसे सूजन हो आनेके कारण उसपर किन्हीं ग्रन्थियों का भार पड़ने से अथवा उसमें ऐंठन होने के कारण, उसका छिद्र छोटा होजाता है, अतएव

अण्डे की गति में रुकावट होजाती है और वह गर्भाशय में पहुँच नहीं सकता। बस, यही इस विकार का मुख्य कारण माना जाता है। कभी कभी अण्डाशय में ही अथवा उससे बाहर निकलते समय अण्डवाहक नलिका के मुख में न पड़कर पास ही उदर की पोलाई में वह गिर पड़ता है और वहीं उसकी बाढ़ शुरू होजाती है और इसीसे अण्डाशयस्थ तथा उदरस्थ प्रकार होजाते हैं।

अकसर गर्भावस्था का पूर्णकाल होजाने के बाद प्रसव वेदना भी होने लगती है, परन्तु प्रसूति नहीं होती। गर्भ मर जाता है और कड़ा होकर पत्थर के समान हो जाता है। कभी कभी वह सड़जाता है और पीब पड़जाती है, पेट की खाल से मल-मार्ग से अथवा योनिमार्ग से फूट कर गर्भ की अस्थियां इत्यादि सब भाग बाहर निकलते हैं और इतना होने पर भी वह स्त्री कभी कभी जीवित रहती है।

इस विकार का निदान यदि ठीक समय पर हो जाता है तो कभी कभी उदरच्छेद का शस्त्र प्रयोग करके वह अस्थान में बढ़ने वाली गर्भ की थैली निकाल डाली जाती है इस शस्त्र प्रयोग में यद्यपि अभी तक पूर्णतया सफलता प्राप्त नहीं हुई है पर आशा है कि बहुत शीघ्र इस में भली भांति सफलता प्राप्त होगी।

मृतगर्भ ।

लक्षण—गर्भाशय में रहते हुये ही यदि गर्भ की मृत्यु हो जाती है, तो कुछ निश्चित लक्षण दिखाई देते हैं । पहले स्तन बिलकुल ढीले होकर छोटे हो जाते हैं । इसी प्रकार प्रातर्वान्ति का लक्षण यदि जारी होता है, तो यह भी बन्द हो जाता है । गर्भाशय और पेट की वृद्धि रुक जाती है । परन्तु गर्भ के मर जाने पर यदि उसके उपयुक्त मांसल अथवा पानी से भरे हुये हुये गोले बन गये हों, तो यह वृद्धि नहीं रुकती । कहते हैं कि कभी कभी गर्भ के मर जाने पर गर्भाशय में ठढक का ज्ञान होता है, परन्तु यह लक्षण कुछ विशेष विश्वास योग्य नहीं है । गर्भावस्था के अगले महीनों में यदि गर्भ मरता है, तो गर्भ की हलचल बन्द होजाती है, परन्तु कभी कभी गर्भ की जीवित अवस्था में भी हलचल किसी कारण वश बन्द हो जाती है, इसलिये थोड़ी देर तक यदि हलचल बन्द भी रहे, तो भी गर्भ को मरा हुआ नहीं समझ सकते । इसी प्रकार गर्भ हृदयध्वनि जो पहले भली भाति सुनाई देती है वह यदि एकाएक बन्द होजाय, तो भी गर्भ के मृत हो जाने का सशय होता है, परन्तु अकसर यह ध्वनि भी कभी कभी अन्य कितने ही कारणों से सुनाई नहीं देती । इसलिये जब उपर्युक्त सभी लक्षण एक साथ दिखाई दें, तभी प्राय गर्भ के मरने का निश्चय किया जाता है ।

उपाय–गर्भाशय में जब गर्भ छोटा होता है, और मर कर वह वसाही बना रहताहै तब प्राय गर्भिणी की प्रकृति पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता। इसलिये इस विश्वास से कि प्राय. मरा हुआ गर्भ शीघ्रही बाहर निकल आवेगा, कुछ भी कृत्रिम उपाय न करना चाहिये। यह बात गर्भ के मरण का संशय होनेपर विशेष रूपसे ध्यानमें रखनी चाहिये। परन्तु गर्भिणी स्त्री यदि दिन दिन कमजोर होती जाती हो उसकी प्रकृति बिगडती जातीहो, उसको बुखार आनेलगा हो और गर्भाशय से रक्त-स्राव अथवा दुर्गन्धयुक्त स्राव होता हो तो फिर गर्भाशय को शीघ्र ही रिक्त करना उचित समझते हैं। पहले अर्गट नाम की औषधि पूर्ण मात्रा में देते हैं और जब इसका कोई असर नहीं होता, तब गर्भाशय-शलाका गर्भाशय में डालनी पडती है। अन्यथा जैसा कि आगे लिखागया है भिन्न भिन्न रीतिसे ग्रीवा विस्तृत करके गर्भाशय खाली किया जाता है।

नवां भाग।

गर्भपात–दुष्परिहार्य, अपरिहार्य और अपूर्ण, कारण, लक्षण, चिकित्सा।

गर्भपात–अर्थात् सगर्भावस्था में चाहे जब [illegible] के गर्भाशय से गर्भ का बाहर [illegible] । इसके [illegible]

होते हैं । (१) अकालिक प्रसूति, (२) गर्भभ्रंश और (३) गर्भस्राव।

अकालिक प्रसूति- सात मास के बाद परन्तु २८० दिन पूरे होने के पहले यदि कोई स्त्री प्रसूत होजाती है तो उसे अकालिक प्रसूति (Premature Labour प्रिमेच्युअर लेबर) कहते हैं। इसस्थिति में उपजा हुआ बालक जीवित रह सकता है।

पहले तीन महीने में होने वाले गर्भपात को गर्भस्राव नाम देते हैं।

तीन मास के बाद और सात मास के पूर्व होने वाले गर्भपात को गर्भभ्रंश कहते हैं।

अन्तिम दोनों प्रकारों को अँगरेजीमें मवार्शन Abortion कहते है।

सब श्रेणी की स्त्रियों में गर्भपात प्राय होता रहता है। परन्तु उनमें भी श्रेष्ठ श्रेणी के लोगों में यह विशेष होता है, और पहली गर्भावस्था की अपेक्षा अगली गर्भावस्थाओं में इसका विशेष परिमाण दिखाई देता है।

लगभग अस्सी प्रसूतियों में एक, और प्रत्येक स्त्री में लगभग सात प्रसूतियों में एक गर्भपात होने का साधारण परिमाण निकाला गया है।

कभी कभी कितनी ही स्त्रियों में इस प्रकार की आदत -

ही सी पड़ जाती है और उनकी प्रत्येक गर्भावस्था में गर्भपात अवश्य ही होता है।

गर्भाशय का और अंडे का सम्बन्ध गर्भावस्था के बिलकुल प्रारम्भ के कुछ महीनों में बहुत ही कम होता है इसलिये इसी समय गर्भपात होने की सम्भावना विशेष रहती है।

गर्भावस्था के बिलकुल प्रारम्भ के कुछ दिनों में यदि गर्भपात होता है, तो उसके लक्षण इतने क्षुद्र होते हैं, कि बहुत बार लोग उसे अकालार्तव ही समझते हैं। तीसरे मास तक के गर्भपात में गर्भमूलक अन्डा सारा का सारा एकदम बाहर निकल पड़ता है। परन्तु इस समय के बाद जरायु तैयार होजाता है, और इस कारण गर्भाशय और अंडे का सम्बन्ध अधिक दृढ़ होजाता है। ऐसे समय में गर्भोदक कोश फूटकर सदैव की प्रसूति के अनुसार प्रथम गर्भ और इसके बाद जरायु बाहर निकलता है।

जरायु गर्भाशय में इतना मजबूत चिपटा रहता है, कि कभी कभी पूर्णतया उसके बाहर निकलने में बहुत कष्ट होता है और इस कारण रक्तस्राव सूतिका ज्वर और कटीरसताप के विकार होने की बहुत सम्भावना रहती है। इसलिये तीसरे मास से छठे मास तक होने वाला गर्भपात, तीन महीने के भीतर होने वाले गर्भपात की अपेक्षा अधिक भयावह होता है।

जरायु का भाग यदि गर्भाशय में शेष रह जाता है, तो वह उस जगह सड़ता है, और इस कारण यदि रक्तस्राव होता है, तो उसमें अत्यन्त दुर्गन्धि आने लगती है।

कभी कभी जरायु का भीतर रहा हुआ भाग सड़ जाता है। उस पर रक्त तन्तुजाल के पर्त जम जाते हैं, और फिर उसका गोला बन जाता है, जिसे जरायु का अश(Placentul Polypus प्लेसेन्टल पालिपस) कहते हैं।

कारण - गर्भपातके अनेक कारण हैं। कभी कभी किसी आकुल क्षुद्र कारण से भी गर्भपात होजाता है। परन्तु कभी कभी गर्भिणी को चाहे बड़ी बड़ी चोटें भी लगजायें, परन्तु फिर भी उसकी गर्भावस्था में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। गर्भपात चाहे जिस समय हो सकता है, परन्तु प्राय स्त्री के सदैव के रज स्राव के समय ही इसके होनकी विशेष सम्भावना रहती है।

१-भिन्न भिन्न प्रकार के तीव्रज्वर और विशेष कर संसर्गिक ज्वर यदि गर्भावस्था में आते हैं, तो इनके कारण गर्भपात होजाता है। इसकेअतिरिक्त मनपरभय, चिन्ता इत्यादि के समान विकारों का प्रभाव होने से भी गर्भपात होजाता है।

२-उपदंश-इस रोगमें जब माता कारक्त बिगड़ जाता है, तब, गर्भ मूलक अण्डे का ठीक ठीक पोषण नहीं होता, और इस कारण गर्भ मर जाता है, और गर्भपात अवश्य ही होता है। किसी किसी स्त्री को गर्भपात का दुरभ्यास ही होजाता है।

और इसलिये जैसा कि पहले कहा है, वह भी प्राय इसी रोग से होता है। परन्तु इस रोग पर यदि प्रारम्भ से ही औषधोपचार किया जाय तो प्राय गर्भपात नहीं होता।

३-रक्तस्राव-गर्भाशय की पुलाई में सत्यगर्भ कोश और परावृत्तगर्भ कोश में अथवा सत्यगर्भकोश और गर्भाशय में रक्तस्राव होने से अण्डा तुरन्त ही अलग होकर मर जाता है और गर्भपात होता है।

कभी कभी बहुत सा रक्तस्राव होने पर गर्भपात नहीं होता। इसका कारण यह होता है कि ऐसे समय में होने वाला रक्तस्राव गर्भाशय की गर्दन के भीतर मुख के पास वाले गर्भकोषास्य होता है और इस कारण उससे गर्भमूल के अण्डे को कोई बहुत हानि नहीं पहुँचती। कभी कभी थोड़ा सा रक्तस्राव होता है, परन्तु उसके कारण वह अण्डा गर्भाशय से अलग नहीं होता। वह गिरा हुआ रक्त गर्भाशयमें रहता है और वहीं पर वह रक्त और अण्डा दोनों एक जगह मिल जाते हैं, और जैसा कि पहले कहा है, उनका एक मांसल गोला बन जाता है।

४ गर्भाशय के रोग-गर्भाशय का टेढ़ा होना, विशेष कर पिछली ओर टेढ़ा होना, गर्भाशय का दाह होना, गर्भाशय में भिन्न भिन्न प्रकार की ग्रन्थियां पड़ना इत्यादि।

५ गर्भकोश, गर्भोदककोश और जरायु के रोग-इनसे भी गर्भपात होता है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त नीचे दिये हुये अन्य कारणों से भी गर्भपात होता है। जैसे–गाड़ी इत्यादि से जाते हुये, धक्के लगना, अति मैथुन करना, गर्भाशय की गर्दन से शस्त्र इत्यादि बाहरी पदार्थ भीतर डालना, अत्यन्त शारीरिक श्रम करना, और कभी कभी तो अत्यन्त ग्लानि होना, जोर से खांसी आने अथवा छींकने समय कांखनेसे भी गर्भपात होजाता है। इसी प्रकार गर्भावस्था प्रारम्भ होजाने पर पहले के बच्चे को स्तनपान करानेसेभी वही परिणाम होता है। अर्गट,क्यूनाइन, सेबिन,केन्थारिडिस कपास की जड़ की छाल, गाजर के बीज इत्यादि द्वार्य खाने तथा अत्यन्त रेचक औषधियों का सेवन करने से भी गर्भपात होता है। कभी कभी छोटे मोटे शस्त्र प्रयोग करने और योनिमार्ग में पिचकारी लगाने से भी गर्भपात होना हुआ देखा गया है।

लक्षण-गर्भपात के दो लक्षण हैं। पहला रक्तस्राव और दूसरा वेदना। इन लक्षणों के होने के पहले कभी कभी उस स्त्री को ग्लानि होती है और चक्कर आता है और उसके स्तन शिथिल होजाते हैं।

रक्तस्राव-गर्भाशय से गर्भोत्पादक अण्डे से अलग होजाने के कारण होता है, और वेदना गर्भाशय का आकुंचन होने के कारण होती है। वेदना प्रायः कमर, पीठ अथवा पेट के निचले भाग में होती है। बहुधा रक्तस्राव पहले होने लगता है, वेदना इसके बाद आरम्भ होती है, और वेदना हुये बिना

भी बहुत दिन तक यह स्राव जारी रह सकता है। परन्तु कभी कभी रक्तस्राव प्रारम्भ होने के पहले भी वेदना होने लगती है।

उपर्युक्त दो लक्षणों में से यदि एक ही लक्षण होता है, तो भावी गर्भपात टाला जा सकता है। ऐसे गर्भपात को दुष्परिहार्यगर्भपात Threatened Abortion थ्रीटेंडअबार्शन कहते हैं। परन्तु यदि दोनों लक्षण होते हैं, तो अवश्य ही गर्भपात के टाले जाने की आशा नहीं होती। उस दशा को अपरिहार्य गर्भपात (Inevitable Abortion इनएविटेबल अबार्शन) कहते हैं।

उपर्युक्त दोनों लक्षणों में से यदि एक भी लक्षण, फिर वह चाहे बिलकुल थोड़ेही परिमाण में क्यों न हो, यदि एक हो जाता है और साथही गर्भाशय की गर्दन का मुंह खुल कर यदि अंडा हाथ में लगने लगता है तो समझना चाहिये कि अब गर्भपात रुक नहीं सकता।

प्रतिबन्धक चिकित्सा—गर्भाशय यदि पीछे टेढ़ा होगया होगा, तो साढ़े तीन मास होने तक टैंक के समान रबरी प्रेसरी रखनी चाहिये जिससे गर्भाशय सामने बना रहे।

गर्भपात बिलकुल ही न होने देने के लिये प्रथम दृष्टि पड़ने वाले सभी कारण दूर करने चाहिये अथवा वर्जने चाहिये और शारीरिक स्वास्थ्य सुधारने के लिये उपाय करने चाहिये। जठर और आनड़ी इन दोनों की ओर ध्यानदेकर हलका औ

पौष्टिक पथ्य होना चाहिये और शरीर को कष्ट न देते हुये खुली हवा में व्यायाम करना चाहिये। स्त्री यदि अशक्त हो तो बलवर्द्धक औषधियों की योजना करनी चाहिये। पहले यदि कभी गर्भपात हो चुका हो और फिर वही मौका आया हो तो उसको प्राय पड़ी रहना चाहिये और वह समय जबतक न टल जाय, इसी प्रकार दिन बिताने चाहिये। स्वस्थ और स्थिर रहना गर्भपात टालने का सब से बड़ा उपाय है। और जब से गर्भ धारण का ज्ञान होजाय तभी से गर्भ-चलन-बोध होने तक तो प्रत्येक स्त्री को अवश्य ही पुरुष संयोग बन्द रखना चाहिए। ऐसी कोई बात न करनी चाहिये कि जिसका उसके मन पर बुरा प्रभाव पड़े। अत्यन्त ठण्ढे अथवा अत्यन्त गरम पानी की पिचकारी योनिमार्ग में जोर से कभी न मारना चाहिये। ठण्ढे पानी की घड़िया अथवा स्पंज गूजा रखना ठण्ढे पानी में बैठना अथवा ठण्ढे पानी में स्नान करना बहुत ही हितावह है। यदि गर्भपात होने की बुरी आदत ही हो गई है तो स्त्री पुरुषों का वियोग करके कुछ मास तक गर्भाशय को विश्राम देना चाहिये। इस विकार के लिये इसके समान और कोई दूसरा इलाज नहीं। पीछे गर्भपात के जो जो कारण बतलाये गये हैं उनके अनुसार गर्भपात को बचाने के लिये और इलाज करने चाहिये। उपदंश के विकार से गर्भपात होने लगता है। इसलिये गर्भधारण होने के पहिले ही स्त्री का औषधोपचार करके उसके स्वास्थ्य को ठीक करना चाहिये। कभी कभी ये उपचार मा बाप दोनोंको करने पड़ते हैं। गन्धक

यदि कुछ देर तक ऐसा करने पर भी कोई परिणाम न हो तो उष्णोदक से योनिमार्ग धो देना चाहिये। धोने का पानी उँगली सहन योग्य (१२० फा०) गरम रहना चाहिये।

रक्तस्राव यदि जोर से होता हो और गर्भाशय की गर्दन चौड़ी न हुई हो, तथा इस कारण यदि गर्भ के शीघ्र गिरने की आशा न हो तो योनिमार्ग में गूंजें लगाकर उसे बन्द कर देना चाहिये। परन्तु यदि कई मास व्यतीत होगये हों और गर्भाशय खाली हो, तथा अन्दर रक्त एकत्रित होने की जगह हो तो योनिमार्ग में गूजे लगाने का प्रयोग न करना चाहिये, क्योंकि गर्भाशय के भीतर रक्तस्राव जारी रहेगा। ये गूजे कैसे लगाने चाहिये, इसका वर्णन आगे दिया गया है।

इसके सिवाय योनि पर शीतोपचार करना चाहिये। ठंडे पानी में भीगी हुई पानी से कपड़े की तह रखनी चाहिये। ठण्डे पानी की वस्ति देने से भी लाभ होता है। अफीम अल्प परिमाण में विशेष उपयोगी होती है। और भांग का अर्क भी लाभदायक होता है। एसिटेट आफलेड १-२ रत्ती गुलाब के फूलों का फाट दो तोले, डिल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड १०-१५ बूंद, गेलिक एसिड ३-५ रत्ती। ये औषधियां अलग अलग, आवश्यकतानुसार दो तोले पानी के साथ देते हैं।

यदि पूर्व कथनानुसार अभी हालही में गर्भ बाहर निकला है, और जरायु तथा गर्भ कोश कुछ न कुछ न्यूनाधिक परिमाण से अन्दर रह गये हैं, तो उस गर्भपात को अपूर्ण गर्भपात

Incomplete Abortion इन्कम्प्लीट अबार्शन) कहते हैं। इस गर्भपात से बहुत बार सूतिकाज्वर या भयावह रक्तस्राव होने लगता है सो पहले बतलाया ही जा चुका है।

अण्डे का कुछ भी भाग भीतर रह जाना भी एक बहुत भयङ्कर बात है। इसलिये यह देख लेना बहुत आवश्यक होता है कि वह पूर्णतया बाहर आगया है या नहीं। इसलिये स्राव से बाहर निकले हुये सब पदार्थ जाँच कर देखने चाहिये, इससे यह सन्देह न रहेगा कि अण्डे के सब भाग बाहर निकल आये हैं या नहीं।

गर्भपात के बाद स्त्री के उपचारों का जो प्रबन्ध किया जाय, वह ऐसा ही होना चाहिये कि जैसा बच्चा पैदा होने पर किया जाता है। उस समय स्त्री को विशेषकर सूतिकाकाल के समान ही पूर्णतया विश्रान्ति लेनी चाहिये। जो स्त्रियाँ गर्भपात को कोई महत्व नहीं देती और इसको एक मामूली बात समझकर नित्य नियमानुसार अपने गृह कार्य तुरन्त ही करने लगती हैं उनको उपर्युक्त बात ध्यान में रखनी चाहिये। क्योंकि गर्भाशयादि इन्द्रियों को पूर्णकाल प्रसूति के बाद की भांति गर्भपात के बाद भी फिर पूर्व स्थिति में आने के लिये बहुत दिन लगते हैं और उतने काल तक पूर्ण विश्रान्ति लेने से इस बात में बड़ी सहायता मिलती है।

यदि, जैसा कि ऊपर हमने कहा है, गर्भपात के बाद विश्रान्ति न ली जायगी तो गर्भाशयदाह, गर्भाशय की भित्ति

भिन्न स्थानभ्रष्टता और इसके कारण भिन्न भिन्न स्थान में पी
में, पेडू में, और जाघों में दर्द होना इत्यादि गर्भाशयसम्बन
अनेक रोग स्त्रियों को होजाते हैं।

गर्भपात के बाद कुछ काल तक आधे ड्राम के परिमा
से अर्गट का लिक्विड एक्स्ट्राक्ट और एक अथवा दो ग्रे
क्विनाइन पीने से लाभ होता है। यदि रिक्तता विशेष मात्रा
है, तो लोहे से बनी औषधियां दी जाती हैं।

गर्भपात के समीप यदि स्राव अधिक परिमाण में अथ
दुर्गन्धियुक्त होता है और इसलिये अपूर्ण गर्भपात होने क
यदि सन्देह होता है, तो निम्नलिखित प्रयोग करने पड़ते हैं
ये प्रयोग दाई के करने योग्य नहीं होते।

दोबार योनिमें गुंजा देनेपर यदि अण्डा बाहर नहीं निकल
और गर्भाशय की गर्दन भी भलीभांति विस्तृत नहीं होती, त
क्लोरोफार्म सुँघाकर "हिगार" के योनि विस्तृत करने के यन
से अथवा उस गर्दन के विस्तृत करने के लिये जो अन्य छो
तम्बू होते हैं उनके द्वारा गर्दन विस्तृत करते हैं।

हिगार के यन्त्रों का उपयोग करने की रीति—पहिले
योनिमार्गको जन्तुनाशक पानीसे धोते हैं। स्त्रीको बाईं करव
सुलाकर योनिवीक्षणयन्त्र (स्पेक्युलम Speculum
भीतर डालते हैं। गर्दन को चिमटे से नीचे खींचकर पकड़
कर जो यन्त्र उसमें सहज ही जाने योग्य होता है, उसी को

प्रथम भीतर डालते हैं। इसके बाद एक एक करके २० नम्बर तक ये यन्त्र भीतर डालते हैं। इससे भीतर उँगली जाने भर को गर्दन ढीली होजाती है। गर्दन यदि बहुत कड़ी होती है, तो प्रत्येक यन्त्र दो तीन मिनट भीतर रखना होता है।

तम्बू का उपयोग करने की रीति–ये तम्बू स्पज के अथवा लामिनेरिया के होते हैं। स्त्री को बाईं करवट सुला कर, यदि आवश्यकता होती है तो योनिवीक्षणयन्त्र (स्पेक्युलम) डालकर, गर्दन को चिमटे से नीचे खींचकर पकड़े रहते हैं और उपर्युक्त दोनों प्रकार के तम्बुओं में से किसी प्रकार का भी तम्बू सालिसिलिक क्रीम अथवा आयोडोफार्म वेसलिन में डुबाकर उसको टेंट इन्ट्रोडयूसर (Tent Introducer) नामक शस्त्र से पकड़कर गर्दन में डालते हैं। गर्दन यदि छोटी होती है तो एक ही तम्बू डालते हैं। यदि कुछ विस्तृत होती है, तो दो तीन एकदम डालते हैं। उनके सिरे गर्भाशय की गर्दन के बाहरी मुख के बाहर आये हुये रहने चाहिये। तम्बू भीतर डालने के बाद योनि में ढीलासा फूआ डालना चाहिये। लामिनेरियाटेंट आठ घण्टे तक रखने में कोई हानि नहीं, स्पञ्ज-टेंट ३–४ घण्टे तक रखते हैं। तम्बू निकालने पर योनिमार्ग धोते हैं। इतना करने पर भी यदि गर्दन ढीली नहीं होती तो फिर तम्बू डालते हैं, परन्तु प्रत्येक अवसर पर दो से अधिक बार ये नहीं डाले जाते।

गर्भाशय खाली करनेकी रीति–गर्भाशय की
जब इतनी विस्तृत होजाती है कि उससे अण्डा बाहर
सके, अथवा एक उँगली भीतर चली जावे तब गर्भाश
खाली करनेका उपाय करने लगते हैं। गर्भाशयमें एक उं
की अपेक्षा हाथ का और अधिक भाग नहीं डालते। उ
के भलीभाति भीतर जाने के लिये उसको अधिक ऊपर
की अपेक्षा गर्भाशय को पेड़ू पर से दाबकर नीचे लाना
है। पहले मूत्रोत्सर्जक नलिका मूत्राशय में, डालकर
निकाल डालते हैं। इसके बाद बाया हाथ पेड़ू पर से
प्रकार दबाया जाता है कि गर्भाशय के ऊपर से वह हाथ
है और उसके द्वारा गर्भाशय आगे आकर अपने हाथ
जघनास्थि सन्धि के बीच में पड जाता है। इसके बाद
हाथ की तर्जनी योनि–मार्ग से गर्दन के भीतर डालकर
आगे खींचने हैं और बाहर के हाथ से गर्भाशय की पेंदी
ढकेलते हैं। इसके बाद उँगली आगे पहुँचाकर गर्भाश
रहे हुये भाग गर्भाशय से छुडाकर नीचे खींच लिये जाते
गर्भाशय में रहे हुये सब भाग जबतक बाहर नहीं निकाल
और अपनी उँगलियों पर भलीभांति जबतक गर्भाशय
आकुचन नहीं होजाता, तबतक उँगली पूर्णतया बाहर
निकालते। क्योंकि गर्भाशय यदि पोला रहता है तो–रक्त
यदि विशेष होने लगता है, तो–एक भाग परक्लोराइड
आयरन और आठ भाग पानी मिलाकरउसको गर्भाशय–श

(Uterine Sound यूटेराइन साउन्ड) में कई लपेटकर उससे भीतर के भाग में लगाते हैं। कभी कभी उदर की स्नायुओं के तनाव के कारण अथवा उदर की खाल के मोटे होने के कारण पेडू पर से गर्भाशय अच्छी तरह पकड़कर दाबा नहीं जासकता और इस कारण योनिमार्गसे डाली हुई उँगली गर्भाशय में पूर्णतया नहीं जासकती ऐसी दशा में क्लोरोफार्म सुँघाते हैं। इससे स्नायु ढीले पड़ जाते हैं और गर्भाशय पूर्णतया ऊपर से दाबा जासकता है और तब गर्भाशय में उँगली पहुँचाने में दिक्कत नहीं पड़ती।

गर्भाशय में रहे हुये भागों को बाहर निकालने के लिये उँगलीकी जगह भिन्नभिन्न प्रकारके चिमटों का उपयोग करते हैं, परन्तु प्राय अनुभव में यही आया है कि प्रत्येक प्रकार के कृत्रिम शस्त्रों की अपेक्षा इस कार्य में उँगली का ही विशेष उपयोग होता है।

अपूर्ण गर्भपात की चिकित्सा—यदि गर्भ के बाहर निकल आनेपर भी जरायु भीतर रहजाय, तो वह जितनी ही जल्दी बाहर निकल आवे, उतनाही अच्छा है। परन्तु गर्भाशय में उँगली डाल कर जरायु के बाहर निकालने का प्रयोग स्त्री को स्वत ही पसन्द नहीं आता, और क्लोरोफार्म सुघने के लिये वह राजी नहीं होती। ऐसी दशा में बहुधा कोई भी उपाय न करते हुये सृष्टिके नियमों पर ही निर्भर रहना पड़ता ऐसा करनेसे कभी कभी जरायु आपही आप कुछ दिनों दबकर

गर्भाशय खाली करनेकी रीति—गर्भाशय की गर्दन जब इतनी विस्तृत होजाती है कि उससे अण्डा बाहर निकल सके, अथवा एक उँगली भीतर चली जावे तब गर्भाशय को खाली करनेका उपाय करने लगते हैं। गर्भाशयमें एक उँगली की अपेक्षा हाथ का और अधिक भाग नहीं डालते। उँगली के भलीभांति भीतर आने के लिये उसको अधिक ऊपर लेजाने की अपेक्षा गर्भाशय को पेडू पर से दावकर नीचे लाना अच्छा है। पहले मूत्रोत्सर्जक नलिका मूत्राशय में डालकर पेशाव निकाल डालते हैं। इसके बाद बायां हाथ पेडू पर से इस प्रकार दबाया जाता है कि गर्भाशय के ऊपर से वह हाथ जाता है और उसके द्वारा गर्भाशय आगे आकर अपने हाथ और जघनास्थि सन्धि के बीच में पड जाता है। इसके बाद दाहने हाथ की तर्जनी योनि-मार्ग से गर्दन के भीतर डालकर उसे आगे खींचते हैं और बाहर के हाथ से गर्भाशय की पेंदी नीचे ढकेलते हैं। इसके बाद उँगली आगे पहुँचाकर गर्भाशय में रहे हुये भाग गर्भाशय से छुडाकर नीचे खींच लिये जाते हैं। गर्भाशय में रहे हुये सब भाग जबतक बाहर नहीं निकाल लेते और अपनी उँगलियों पर भलीभांति जबतक गर्भाशय का आकुचन नहीं होजाता, तबतक उँगली पूर्णतया बाहर नहीं निकालते। क्योंकि गर्भाशय यदि पोला रहता है तो-रक्तस्राव यदि विशेष होने लगता है, तो-एक भाग परक्लोराइड आफ आयरन और आठ भाग पानी मिलाकर उसको गर्भाशय-शलाका

(Uterine Sound यूटेराइन साउन्ड) म रूई लपेटकर उससे भीतर के भाग में लगाते हैं। कभी कभी उदर की स्नायुओं के तनाव के कारण अथवा उदर की खाल के मोटे होने के कारण पेडू पर से गर्भाशय अच्छी तरह पकड़कर दाबा नहीं जासकता और इस कारण योनिमार्गसे डाली हुई उँगली गर्भाशय में पूर्णतया नहीं जासकती ऐसी दशा में क्लोरोफार्म सुँघाते है। इससे स्नायु ढीले पड़ जाते हैं और गर्भाशय पूर्णतया ऊपर से दाबा जासकता है और तब गर्भाशय में उँगली पहुँचाने में दिक्कत नहीं पड़ती।

गर्भाशय में रहे हुये भागों को बाहर निकालने के लिये उँगलीकी जगह भिन्नभिन्न प्रकारके चिमटों का उपयोग करते हैं, परन्तु प्राय अनुभव में यही आया है कि प्रत्येक प्रकार के कृत्रिम शस्त्रों की अपेक्षा इस कार्य में उँगली का ही विशेष उपयोग होता है।

अपूर्ण गर्भपात की चिकित्सा—यदि गर्भ के बाहर निकल आनेपर भी जरायु भीतर रहजाय, तो वह जितनी ही जल्दी बाहर निकल आवे, उतनाही अच्छा है। परन्तु गर्भाशय में उँगली डाल कर जरायु के बाहर निकालने का प्रयोग स्त्री को स्वत ही पसन्द नहीं आता, और क्लोरोफार्म सूंघने के लिये वह राजी नहीं होती। ऐसी दशा में बहुधा कोई भी उपाय न करते हुये सृष्टिके नियमों पर ही निर्भर रहना पड़ता ऐसा करनेसे कभी कभी जरायु आपही आप कुछ दिनों द रुकर

बाहर निकल आता है और भीतर रहे हुये भागों के कारण रक्त-स्राव जारी रहता है और सड़े हुये भागों का विष रक्त में प्रवेश कर जाता है, इसलिये स्त्री को ज्वर आने लगता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय के अङ्ग में दाह इत्यादि के भिन्न भिन्न विकार उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये जरायु का कोई भी भाग गर्भाशय में न रहने देना ही अच्छा होता है। गर्भ गिराने के बाद साधारणतया, किन्हाई निकालने में, एक घण्टे से अधिक समय न लगाना चाहिये। क्योंकि इतनी देर तक गर्भाशय की गर्दन पूरी पूरी विस्तृत रहती है। यह प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ करनी चाहिये और गर्भाशय में जरायु का थोड़ा भी भाग न रहने देना चाहिये। यहभी ध्यान में रखना चाहिये कि इस प्रयोग को अधूरा करने की अपेक्षा बिलकुल ही न करना अच्छा है। जैसा कि पहिले बतलाया है, गर्भाशय को खाली करने का प्रयत्न उँगली से ही करते हैं। कभी कभी यदि रक्तस्राव विशेष होता है, तो योनि में गूजा लगा देते हैं। इससे ज्यों ही दस घण्टे बाद गूजा निकाला जाता है त्यों ही उसके पीछे जरायु आया हुआ रहता है।

गर्भाशयके खाली होजाने पर उसको ४०००में एक अथवा २००० में एक के परिमाण वाले मरक्युरिक परक्लोराइड के पानी से धोना चाहिये। धोते समय भीतर हवा बिलकुल ही न जाने देना चाहिये। गर्भाशय से बाहर निकले हुए भागों में यदि सड़ी हुई दुर्गन्धि आती हो, तो जैसा कि हमने ऊपर

कनलोता है, गर्भाशय का धोना अत्यन्त आवश्यक है। इसके सिवाय ऐसी दशा में गर्भाशय को धोने के बाद उसके भीतर गर्भाशयशलाकामें रुई लगाकर उसके द्वारा टिंक्चर आयोडिन लगाना चाहिये।

गर्भावस्था के अगले महीनोंमें गर्भपात होकर यदि जरायु अन्दर रह जाता है तो गर्भाशय खाली करनेके लिये सारा हाथ योनिमार्ग में डालकर दो उँगलियां अथवा हाथ का अधिक भाग गर्भाशय में डाला जाता है। जरायु यदि गर्भाशय की बाईं ओर चिपटा हुआ होता है तो बांय और यदि दाहिनी ओर चिपटा होता है तो दाहिने हाथका उपयोग किया जाता है।

दसवां भाग।

गर्भ सिर—हड्डियां, सीवनें, व्यास, डीलडौल प्रसूति—उसकी तीन अवस्थायें।

बच्चा जब तक पेट में रहता है, तब तक उसको गर्भ कहते हैं। दाई को गर्भावस्था के प्रत्येक मास में गर्भ के आकार और उसकी वृद्धि के परिमाण का ज्ञान रहना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात् बच्चा यदि दिन पूरे होने के पहिले पैदा हो जाय, तो दाई को यह बात मालूम होनी चाहिये। इसका विचार पीछे किया जा चुका है।

पूरे दिनों का पैदा हुआ बच्चा लग भग बीस इंच लम्बा होता है। उसका वजन लग भग साढ़े छै पौंड होता है। भिन्न भिन्न बच्चों के वजन में फर्क भी रहता है। लड़की की अपेक्षा लड़के का वजन प्राय: अधिक रहता है। पूरे दिनों के बच्चों की खाल कुछ लाल रंग की सी होती है। बच्चों के शरीर पर सफेद सा चिपचिपा पदार्थ रहता है, उसे डाक्टरी में वर्निक्स केसि ओसा Vernix Case osa कहते हैं। उनके नख बढ़े हुये होते हैं। तथा सिर पर बाल होते हैं। और नाभि उनके शरीर के मध्य के नीचे रहती है। जन्मते ही बच्चा जोर से रोता है, और हाथ पैर अच्छी तरह हिलाता है, और प्राय पाखाना पेशाब भी करता है।

बच्चे के सब अंगों में उसका सिर बहुत कठोर होता है यहां तक कि वह अन्य अंगों की भांति सहज में दबता नहीं, इसलिये वह प्रसूति में कटीर के बाहर अनायास नहीं निकल सकता। उसके बाहर निकलने में बहुत कष्ट होता है, इस लिये उसका सूक्ष्म निरीक्षण करना, और उसकी माप- जोख का कटीर की माप- जोख से मिलान करना आवश्यक होता है। क्यों कि कटीर से ही बच्चे को बाहर निकलना होता है। सिरकी हड्डियों के नाम दाई को मालूम होने चाहियें इसी प्रकार उनके जोड कैसे होते हैं- इस बात का भी हाल उसको ज्ञान होना चाहिये। गर्भके सिरकी हड्डियां बड़े मनुष्यकी भांति दूसरे से जुड़ी नहीं रहती। किन्तु उनके बीच में एक

प्रकार के पतले और लचीले पदार्थ की त्वचा होती है इस कारण प्रसूति के समय हड्डियां आवश्यकतानुसार लच जाती हैं और दूसरे पर चढ जाती हैं। इस कारण सिरका आकार छोटा होजाता है, और शरीर से उसके बाहर निकलने में बहुत दिक्कत नहीं पड़ती।

सिर की हड्डियां—इनमें से दो ललाटास्थि (Frontal Bones फ्रान्टल बोन्स), आगे की ओर होते हैं। उनके पीछे दो सीमन्तास्थि (Parietal Bones परायटल् बोन्स) है। दो शङ्खास्थि (Temporal Bones टेम्पोरल बोन्स) प्रत्येक कान के पीछे एक एक करके होती हैं। शिर के पीछे की ओर एक हड्डी होती है उसको शिर पृष्ठास्थि (Occipital Bone आक्सिपिटल बोन) कहते हैं।

भिन्न भिन्न हड्डियां जहांपर जुड़ती हैं, उस भाग को सीवन (Suture सूचर) कहते हैं। ये सीवनें चार होती हैं। (१) आगे की खड़ी (Frontal फ्रान्टल) (२) आगे की आड़ी (Coronal कारोनल) (३) मांग के नीचे की (*Sagital* सेजिटल) (४) पीछे की आड़ी (Lambdoidal लैंबडोइडल)

आगे की खड़ी सीवन दो ललाटास्थियों के बीच में होती, हैं। आगे की आड़ी सीवन दो ललाटास्थियों और दो सीमन्तास्थियों के बीच से सिर पर से बीचों बीच जानेवाली सीवनको मांगके नीचे की सीवन कहते हैं। और सीमन्तास्थि

तथा शिरःपृष्ठास्थि के बीच की सीवन को पीछे की आड़ी सीवन कहते हैं।

जहां भिन्न भिन्न सीवनें एक जगह मिलती हैं वहां एक पतली सी अस्थिरवत्रायुक्त जगह होती है। उसको उत्प्लव (Fontanelle फान्टानेली) कहते हैं। ये दो हैं (१) एक आगे की ओर रहता है जिसे पूर्वोत्प्लव (Anterior Fontanelle अन्टीरियर फान्टानेली) कहते हैं (२) पीछे की ओर रहता है जिसे पश्चिमोत्प्लव (Posterior Fontanelle पोस्टीरियर फन्टानेली) कहते हैं। पूर्वोत्प्लव का आकार चौकोने हीरे के समान होता है। उसकी लम्बाई आधी इञ्च होती है। इससे चार सीवनें निकलती हैं।

पश्चिमोत्प्लव भाग के नीचे की ओर पीछे की आड़ी सीवनके जोड़पर होता है। उसका आकार तिकोना होता है और यहां से तीन सीवनें निकलती हैं।

पूर्व और पश्चिम उत्प्लवों के बीच में सिर का जो भाग होता है उसको शीर्ष अथवा माथा (Vertex वर्टेक्स) कहते हैं।

प्रसूति के समय कटीर में सिर दबता है उस समय सिर की हड्डियां एक दूसरे पर चढ़ जाती हैं। सीमन्तास्थियों का पिछला भाग शिरःपृष्ठास्थि पर चढ़ जाता है और अगला भाग ललाटास्थियों पर चढ़ जाता है और ललाटास्थि एक दूसरे पर चढ़ जाता है।

गर्भ के सिर की भिन्न भिन्न मापें होती हैं। उनको व्यास कहते हैं। सब से बड़ा व्यास शिर पृष्ठास्थि के उच्च भाग से लेकर ठुड्डी के सिरे तक होता है। उसको आक्सिपिटोमेंटल डायामीटर (Occipitomental Diameter) कहते हैं। यह पांच इञ्च होता है। उसके बाद का व्यास शिर पृष्ठास्थि के उच्चभाग से लेकर नाकके मूलतक साढ़ेचार इञ्च होता है। उसको आक्सिपिटो फ्रन्टल डायामीटर (Occipito frontal Diameter) कहते हैं। गर्दन के कांटे से लेकर पूर्वोत्पलव तक का व्यास साढ़ेतीन इञ्च तक होता है। उसको सब आक्सिपिटो ब्रेग्मेटिक डायामीटर (Sub occipito bregmatic Diameter) कहते हैं।

सिर की चौड़ाई आदि नापी जाय तो उसके दो व्यास ध्यान में रखने योग्य होते हैं। (१) दो ओर सीमन्तास्थियों के उच्चभागों के बीच का व्यास उसको बायपराइटल (Biparietal) कहते हैं। यह साढ़ेतीन इञ्च होता है। और (२) शंखास्थियों के बीच का अथवा दो कानों के बीच का व्यास जिससे बायटेम्पोरल (Bitemporal) कहते हैं यह तीन इञ्च होता है। इनके अतिरिक्त ठुड्डी से लेकर ललाटास्थियों के सिरे तक एक और बड़ा व्यास होता है। उसे फ्रान्टोमेन्टल (Frontomental) कहते हैं। यह तीन इञ्च लम्बा होता है। इसी प्रकार गर्दन के कांटे के मध्य से लेकर पूर्वोत्पलव के पिछले सिरे तक के बड़े व्यास को सबआक्सि-

ब्रेग्मेटिक (Cervico-bregmatic) कहते हैं, वह भी तीन इंच लम्बा होता है।

उपर्युक्त व्यास प्रसूति के समय दाब के कारण न्यूनाधिक भी हो जाते हैं।

लड़कों का सिर प्रायः लड़कियों के सिर से बड़ा होता है। मनुष्यों की व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति और बुद्धि की तीव्रता तथा विकास की दृष्टि से भी उसके गर्भ के सिर का आकार बड़ा होता है।

गर्भाशय में गर्भ-नमन (Flexion फ्लेक्शन) की स्थिति में रहता है। अर्थात् उसके सभी अवयव एक दूसरे पर झुके रहते हैं। अर्थात् उसकी ठुड्डी छाती पर टिकी रहती है। उसकी मुट्ठियां मुंदी रहती हैं। उसके पूर्वबाहु छाती पर व्यत्यस्त (Crossed क्रास्ड) अर्थात् एक के ऊपर से दूसरा सामने की ओर ऊपर गये हुये ऐसी स्थिति में रहते हैं। जांघें पेट में लगी होती हैं और पैरों की पिंडुलियां जांघों में पीछे लगी होती हैं। साराश यह है कि गर्भ की स्थिति गर्भाशय में इस प्रकार रहती है कि जिसके कारण वह बिलकुल थोड़ी ही जगह घेरता है।

प्रदर्शन (Presentation प्रेजेन्टेशन) उसे कहते हैं कि गर्भ का जो भाग प्रसूति के प्रारम्भ में गर्भाशय की गर्दन के मुख पर रहता है और जो कि प्रथम आगे आता है। उदाहरणार्थ मस्तकदर्शन, नितम्बदर्शन इत्यादि। जन्म के समय गर्भ की

डीमें कुछ काला सा गुड़का सीरा जैसा एक पदार्थ होता है गर्भमल (Meconium मिकोनियम) कहते हैं। उसमें कर पित्त रहता है और बच्चे के पैदा होते ही यह पदार्थ बाहर निकल जाता है।

र्भावस्था का काल समाप्त होने पर गर्भ गर्भाशय से निकलता है। और इस क्रिया को प्रसूति अथवा सोवर है।

सूति होने का मुख्य कारण गर्भाशय का आंकुचन ही है। । श्वासोच्छ्वास के स्नायुओं से सहायता मिलती है। : कांखते समय वे आंकुचित होते हैं।

सूति की पहली, दूसरी और तीसरी इस प्रकार तीन थायें होती हैं।

हिली अवस्था आरम्भ होने के पहिले कुछ स्त्रियों को लक्षण होते हैं। उनको प्रसूति के पूर्वलक्षण कहते हैं। यह मालूम होजाताहै कि अब प्रसूतिकालनिकट आगया। णि गर्भ के नीचे उतरने पर अवलम्बित रहते हैं। इसी प्रसवमार्ग में जो फेरफार होते हैं उनपर भी घे म्बित रहते हैं। वे इस प्रकार हैं—

गर्भाशय का नीचे उतरना—इसका परिणाम यह है कि गर्भाशय की पेंदी पहिले की भांति उरोस्थि के से लगते हुये वहां से नीचे आजाती है। प्रसवकाल के इदवाड़े पहिले यह अन्तर होता है। इसको पेट उतरना

(Lightening-before labor लाइटनिंगबिफोर लेबर) कहते हैं। जब ऐसा होता है, तब फेफड़ों को फैलाने के लिये विशेष जगह मिलती है और स्त्री को अब तक श्वासोच्छ्वास करने में जो कष्ट होता था, सो अब नहीं रहता। गर्भाशय के नीचे चले आने के कारण मूत्राशय और मलाशय पर दबाव पड़ता है और इस कारण स्त्री को बार बार पेशाब के लिये जाने को जी चाहता है और प्राय: मलावरोध होजाता है। कभी कभी गर्भाशय की दाब के कारण अँतड़िया सम्तप्त होती हैं और इस कारण स्त्री को अतीसार भी होजाता है। उसको चलने में अत्यन्त कष्ट होता है बवासीर भी कभी कभी होजाती है और पिंडलियों की नसें यदि पहिले से ही फूली हुई होती हैं तो वे और भी अधिक बड़ी होजाती हैं।

प्रसव का दूसरा लक्षण यह है कि योनिमार्ग बहुत गीला होजाता है। इसका कारण यह है कि गर्भाशय की गर्दन और योनिमार्ग से श्लेष्मलस्राव अधिक परिमाण में होने लगता है। प्रसूति जब बिलकुल निकट आजाती है, तब यह स्राव कुछ लालरङ्ग का होने लगता है।

जब प्रसूति प्रारम्भ होती है तब गर्भाशय बीच बीच में आकुंचित होने लगता है और उस समय बार बार वेग आते हैं। इन वेगों के जोर से गर्भाशय की गर्दन विस्तृत होजाती है और उससे गर्भ बाहर निकलता है।

गर्भावस्था में भी गर्भाशय का आकुंचन बीच बीच में

आकुंचित होने लगता है और उस समय बार बार वेग आते हैं। इन वेगों के योग से गर्भाशय की गर्दन विस्तृत होती है और उससे गर्भ बाहर निकलता है।

गर्भावस्था में भी गर्भाशय का आकुंचन बीच बीच में होता रहता है। परन्तु जब प्रसूति प्रारम्भ होती है तब ये आकुंचन वेगयुक्त होनेलगते हैं और इसी लिये अभीष्ट परिणाम लाने के लिये वे प्रबल होते हैं।

प्रसव वेदनायें दो प्रकारकीहैं। एक सच्ची और दूसरी झूठी। इनका अन्तर मालूम होना विशेष महत्व की बात है।

झूठी वेदनायें मलावरोध, अपचन, मूत्रावरोध अथवा बहुत देरतक खड़े रहनके कारण थक जानेसे होती हैं।

ये वेदनायें न्यूनाधिक काल से होती हैं। ये प्रायः पेट की अगली ओर से शुरू होती हैं और इनके कारण गर्भाशय की गर्दन बिलकुल ही विस्तृत नहीं होती। गर्भाशय की पेंदी पर हाथ रखने से, इन वेदनाओं के समय में गर्भाशय कठोर नहीं मालूम होता। इससे सच्ची प्रसववेदनाओं और झूठी प्रसव-वेदनाओं का अन्तर मालूम होजाता है।

उपचार—गर्भिणी को बिछौने पर पड़ा देना चाहिये और गुदकाण्ड में साबुन और कुनकुने पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। इसके बाद कोई शामक औषधि देनी चाहिये। जैसे क्लोरोडाइन बीस बूंद अथवा चौथाई ग्रेनमार्फियाकी गुटी (सपोजीटरी) गुदकाण्ड में रखनी चाहिये। यदि मूत्रावरोध

होगया हो, तो मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकाल डालना चाहिये।

सच्ची प्रसववेदनायें पीठमें शुरू होकर होकर आसपास से आगे आती हैं और जंघाओं की ओर जाती हैं। प्रसूति के प्रारम्भ में एक एक घण्टे के अन्तर से भी वेदनायें आती हैं। परन्तु ज्यों ज्यों प्रसूतिकाल निकट आता जाता है त्यों त्यों वेदनायें भी शीघ्र शीघ्र होने लगती हैं। प्रसूतिके अन्तिम समय में कुछ कुछ मिनटों के ही बाद वेग आने लगते हैं और प्रत्येक वेग बहुत देर तक रहता है।

सच्ची वेदनाओं के प्रारम्भ होनेपर यदि पेटपर हाथ रक्खा जावे तो गर्भाशय कड़ा मालूम होता है और वेग के चले जाने पर वह फिर मुलायम होजाता है। इसके अतिरिक्त सत्य वेदनाओं के समय गर्भाशय की गर्दन से निकलनेवाले श्लेष्मल स्राव का परिमाण बढ़ जाता है परन्तु मिथ्या वेदनाओं के समय वह नहीं बढ़ता।

यदि ये वेदनायें बराबर अखण्डरूप से जारी रहती हैं, तो उनके कारण न सिर्फ स्त्रीकी ही शक्ति नष्ट होती है किन्तु गर्भ पर भी उनका बहुत समय तक दबाव पड़ता रहता है, इस लिये वे गर्भ के लिये भी अहितकारक होती हैं।

प्रसववेदनाओं का दु:ख सब स्त्रियों को समान ही नहीं होता। कुछ स्त्रियों को बहुत ही कम वेदनायें होती हैं और कुछ को बहुत अधिक कष्ट सहना पड़ता है। यद्यपि प्रसव

वेदनायें किसी। भी इच्छा के अधीन नहीं हैं, परन्तु फिर भी मनोविकारों से उनपर इए अनिष्ट प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरणार्थ-किसी कारणसे भी भय मालूम होने अथवा स्त्री की कोठरी में डाक्टर अथवा अन्य किसी परकीय मनुष्य के आने से भी कुछ समय के लिये वेग बन्द होजाते हैं।

ऊपर जैसा कि बतलाया है, प्रसव की तीन अवस्थायें होती हैं।

पहिली अवस्था—सच्ची प्रसववेदनायें प्रारम्भ होने से लेकर गर्भाशय की गर्दन के पूर्णतया विस्तृत होने तक।

दूसरी अवस्था—गर्भाशय की गर्दनके पूर्णतया विस्तृत होने से लेकर बच्चे के पैदा होने तक।

तीसरी अवस्था—बच्चे के पैदा हो जाने से लेकर कन्हाई गिरने तक।

पहली अवस्था को प्रसरणावस्था कहते हैं। क्योंकि इस अवस्था में गर्भाशय की गर्दन प्रसरण पाती है।

इस अवस्था में स्त्रियों को कांखना अथवा पड़ाही रहना पड़ता है सो नहीं, किन्तु वे इधर उधर फिरती भी हैं। उनको चैन नहीं पड़ता। जब वेग आता है, तब उनको अत्यन्त कष्ट होता है और वे दीनवाणी से तथा निराशा से चिल्लाती हैं। पहली अवस्था का चिल्लाना और दूसरी अवस्था का चिल्लाना

अलग-अलग होता है। क्योंकि पहली अवस्था में विशेष दुःख नहीं होता और उनको स्वयं कुछ भी श्रम नहीं पड़ता।

साधारण लोगों में यह ख्याल है कि पहली अवस्था के वेगों से प्रसूति को कुछ लाभ नहीं होता। परन्तु यह उनकी भूल है। क्योंकि गर्भाशयकी गर्दन उन्हीं वेगोंके कारण विस्तृत होती है। इसी गर्दन के विस्तृत होने पर दूसरी अवस्था की बच्चेके बाहर निकलते समय की वेदनायें अवलम्बित रहती हैं।

यदि योनि परीक्षा की जाय, तो ग्रीवा-बहिर्मुख की स्थिति से यह तुरन्त ही मालूम होजाता है कि वेदनायें सच्ची हैं या झूठी हैं। यदि वेदनायें सच्ची होंगी और पहली अवस्था शुरू होगई होगी, तो ग्रीवा बहिर्मुख कुछ विस्तृत होगया होगा और उंगली में लगेगा। वेदनाओं के होते समय उसके सिरे पतले होते हैं और गर्भोदक का कोष तना हुआ होता है और वह विस्तृत गर्दन से कुछ आगे आजाता है। वेग ज्यों ज्यों एक के बाद एक और अधिक ज़ोर से होने लगते हैं त्यों त्यों गर्भाशय की गर्दन का मुख विस्तृत होता जाता है। गर्भाशय की अगली ओर से लेकर गर्भाशय की पेंदी पर से उसकी पिछली ओर तक गये हुये जो स्नायुओं के तन्तु होते हैं उनके आकुञ्चन से और गर्भोदक के पाचर के समान गर्भाशय की गर्दन से आगे आने लगने से, गर्दन का विस्तार बढ़ता है।

गर्भाशय की गर्दन के मुख के सिरे का भाग ढीला, गीला और सहज ही विस्तृत होने योग्य होना चाहिये। ग्रीवामुख

विस्तृत होजाने के कारण गर्भोदक के कोष का जो भाग आगे दिखाई देने लगता है उसको पानी की थैली, पानी की मुट्ठी अथवा गर्भोदक की थैली कहते हैं।

योनिपरीक्षा से इस थैली का आकार गोल मालूम होता है। कभी कभी कुछ लम्बे आकार की थैली आगे आई हुई हाथ में लगती है। यदि ऐसी स्थिति हो तो प्राय यह समझना चाहिये कि विरूप कटीर अथवा मस्तक दर्शन के अतिरिक्त और कोई दूसरा दर्शन होरहा है।

गर्भाशय की गर्दन जब तक पूर्णतया विस्तृत न होजाय, तब तब गर्भोदक का कोष भूल से न फूटने की विशेष सावधानी रखनी चाहिये। गर्भोदक की थैली चूंकि मुलायम होती है, इसलिये उसके योग से यह गर्दन बहुत जल्द और बिलकुल न दुखाते हुए विस्तृत होसकती है। परन्तु जब यह फूट जाती है और उसका पानी निकल जाता है तब गर्भ का कठोर सिर आगे निकलता है और उसके योग से वह गर्दन उपर्युक्त प्रकार से विस्तृत नहीं होसकती है।

जब गर्भोदक का कोष शीघ्र फूट जाता है और पहली अवस्था के समाप्त होने से पूर्व पानी बह जाता है तब उस प्रसूति को शुष्क प्रसूति (Dry labour ड्राइलेबर) कहते हैं। यह बहुत कष्टदायक होती है।

गर्भाशय के ग्रीवा बहिर्मुख के मध्य भाग में गर्भोदक का कोश फूटता है परन्तु कभी कभी बच्चे के सिरके आसपास

गर्भोदक के कोश के रहते हुये भी प्रसूति होजाती है कदाचित्
गर्भोदक के कोश इत्यादि के न फूटतेहुए भी सारा गर्भ अपने आवरणों के सहित बाहर आजाता है जब गर्भोदक का कोश फूटता है तब उससे कुछ गर्भोदक बाहर निकलता है। बाकी गर्भोदक के इससमय बाहर न निकल सकने का कारण यह है कि बच्चेका सिर चूंकि गर्भाशय के मुखमें लगारहता है अत एव उपर्युक्त भागके पानीको बाहरनिकलनेके लिये मार्गहीनहीं मिलता। पहली अवस्था समाप्त होने के लग भग कुछ मिचलाहट भी होती है और कुछ ठढक सी होजाती है ये लक्षण बुरे नहीं हैं।

गर्भाशय की गर्दन के पूर्णतया विस्तृत होजाने पर अब गर्भाशयका कोश फूटजाता है तब दूसरी अवस्था का प्रारम्भ होता है, इस अवस्था म गर्भ बाहर निकलता है। गर्भोदक के फूटजाने पर माताको अथवा गर्भ को यदि कोई न कोई भयदायक प्रकार होने को होता है तो उसका इसी समय से प्रारम्भ होता है, इस लिये इस बात की ओर दाई को लापरवाही न न करनी चाहिये।

पहली अवस्था समाप्त होजाने पर वेग कुछ देर के लिये कम होजाते हैं। इसके बाद वे फिर बहुत जल्द शुरू होजाते हैं ये वेग कुछ भिन्न प्रकार के होते हैं। यदि प्रसूत होनेवाली स्त्री इधर उधर चलती होती है तो वह इस समय पड रहती है और गर्भाशय गर्भ के शरीर में लग कर ही आकुंचित होने

लगता है कांखना प्रारम्भ होता है वेग आने के समय स्त्री बहुत ओर जोर से कांखती है और इस कारण गर्भाशय के आकुचन से बच्चे के बाहर निकलने में सहायता मिलती है।

स्त्री को कुछ सहारा मिलने के लिये कहीं कहीं चारपाई का उपयोग किया जाता है। चारपाई या ऊंची खूंटीपर कपड़ा लटका देते हैं और उसको खींचकर वह कांखती है इस समय उसके चिल्लाने में जो आवाज निकलती है वह कुछ निराली ही होती है। वह आवाज दुःख और परिश्रम से संयुक्त रहती है। ज्यों ज्यों गर्भ का सिर कटीर में नीचेकी ओर घसता जाता है त्यों त्यों वेग अधिक जोर से और जल्दी जल्दी आने लगतेहैं वेगोंके समय स्त्री का मुख कांखनके श्रमसे कुछ काला सा और सुर्ख पड़जाता है और सारे शरीर में जोर से पसीना आने लगता है।

इन वेगों के कारण बच्चे का सिर कटीर में आजाता है।

प्रथम गर्भावस्था में प्रसूति के प्रारम्भ में सिर कटीर के किनारे के अन्दर रहता है, परन्तु अगली गर्भावस्था में वह कटीर के किनारे के ऊपर रहता है और जब प्रसूति का प्रारम्भ होता है तभी वह प्रसवमार्ग में आता है। यदि कटर बहुत चौड़ा नहीं होता तो सिरके कटीर के प्रवेशमार्ग में घुसने में कठिनाई पड़ती है।

६७ फी सदी प्रसूतियों में सिर ही पहले आनेवाला रहता है। और प्रसूति की क्रिया ज्यों ज्यों आगे बढ़ती जाती है

त्यों त्यों वह फटीर से नीचे आता जाता है और बाह्यजननेन्द्रियों से बाहर निकलता है।

सिर बाहर निकलते समय जब विटप को पार करता है तब वेग अधिक दुखदायक होते हैं और बार बार होते हैं। उस समय जनन भाग बहुत तन जाता है ; इसलिये इतना दुख होता है कि स्त्री एकदम चीखने लगती है। रोने के कारण वह कांख भी नहीं सकती और इस कारण सिर बहुत जल्द बाहर निकलने से जो विटप के फटने की सम्भावना रहती है सो मिट जाती है और उसकी रक्षा होजाती है।

आगे निकलने वाले सिर पर विटप रबर के समान तन जाता है। प्रत्येक वेग साथ वह अधिकाधिक तनता जाता है। वह, अपनी स्थितिस्थापकता के कारण वेगों के निकल जाने पर फिर जैसा का तैसा होजाता और इस कारण वेग रहित दशा में सिर जरा फिर पीछे आजाता है। इस प्रकार सिर के आगे पीछे होते रहने के कारण विटप थोड़ा थोड़ा फैलता रहता है और इस कारण सिर सुरक्षित रूपसे बाहर निकल आता है। विटप की रुकावट के कारण वह आगे और ऊपर की तरफ जाता है और योनिद्वार से जो उस समय चौड़ा होजाता है वह बाहर निकल आता है।

सिर के बाहर निकल आने पर शेष शरीर गर्भोदक और रक्त की ग्रन्थियां प्रायः एक ही वेगके साथ बाहर आजाती हैं।

फटीर से सिर के बाहर निकलते समय उसके आकार में

जो अन्तर पड़ता है उसको रूपधारण (Moulding) माल्डिंग कहते हैं। विलम्बित अथवा कष्टप्रसूति के बाद (यदि मस्तक दर्शन होगा तो) सिर ऐसा दिखाई देता है कि जैसे खींच कर लम्बा किया गया हो, परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि वह चाहे जितना विरूप दिखलाई पड़े तथापि उसका रूप और आकार वैसा ही होता है कि जैसा आगे होना चाहिये।

कष्ट प्रसूति में सिर में एक गिल्टी सी दिखाई देती है। इसे शीर्ष गुल्म (Caput Succedenium) कैपुट सक्सिडेनियम कहते हैं। गर्भ का जो भाग गर्भाशय की गर्दन के मुख पर होता है उसी जगह यह शीर्ष गुल्म उठता है। उस भाग पर भार नहीं पड़ता और उसको कोई आधार भी नहीं रहता यह गिल्टी अथवा गुल्म भी शीघ्रही दूर हो जाता है।

तीसरी अवस्था बच्चे के पैदा होने से लेकर किन्दाई के गिरने तक रहती है। बच्चे के पैदा होजाने पर गर्भाशय किन्दाई के निकलने के लिये आकुञ्चन पाता है और इस कारण वह गर्भाशय की अन्तस्त्वचा से छूट जाती है। इसी प्रकार गर्भाशयके स्नायुतन्तुओं के आकुञ्चन से रक्तवाहिनियों के मुख बन्द हो जाते हैं और रक्तस्राव भी बन्द होजाता है। इस तीसरी अवस्था में रक्तस्राव का ही विशेष भय रहता है।

बच्चे के पैदा होजाने पर दस पन्द्रह मिनट के बाद गर्भाशय

बहुत आकुंचन को प्राप्त होता है और उससे किन्हार्ष छूट जाती है और योनिमार्ग से बिलकुल बाहर निकल आती है और प्रसूति पूर्ण होजाती है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रसूति के यंत्र शास्त्र के विषय में में कुछ बातें लिखनी चाहिये जैसा कि ऊपर कहा गया है ९७ फीसदी गर्भोंकी मस्तक दर्शन से प्रसूति होती है।

इनमें से अधिकांश गर्भों के सिर का आक्सिपिटो फ्राटल व्यास कटीर के दाहने तिर्छे व्यास में आता है॥ सिरका जो भाग प्रथम कटीर में उतर ता है और जघनास्थि की सन्धि के नीचे भीतरी ओर चक्र गतिसे घूमता है उसको शिर पृष्ठ (Occiput आक्सिपुट) कहते हैं। इसलिये शिर पृष्ठ को मुख्य समझकर मस्तकदर्शन के भिन्न भिन्न प्रकारों को नाम देते हैं।

बहुत से मस्तकदर्शनों में शिरःपृष्ठबायें आबच्युरटर छिद्र के पास वाले पेक्टिनियल नामक कूबड़ के सामने रहता है। उसको मस्तकदर्शन की वामपुरत शिर पृष्ठस्थिति (Left occipito Anterior लेफ्ट आक्सिपिटो आन्टीरियर) कहते हैं।

इसके बाद जो मस्तकदर्शन का प्रकार सदैव पाया जाता है और जिसमें शिरःपृष्ठ दाहिने त्रिकनितम्बसन्धि के सामने रहता है उसको दक्षिण पश्चात्‌शिर पृष्ठस्थिति (Right occipito Posterior राइट आक्सिपिटो पोस्टीरियर) कहते हैं। अन्य जो प्रकार सम्भव होते हैं वे राइट आक्सिपिटो

अण्टीरियर और लेफ्ट आक्सिपिटो पोस्टीरियर हैं। परन्तु ये प्रकार बहुत ही कम पाये जाते हैं।

प्रसूति के प्रारम्भ में सिर छाती पर झुका हुआ रहता है और यह झुकाव उस समय विशेष स्पष्ट होता है जबकि सिर कटीर से नीचे आता है। इस क्रिया को नमन (Flexion फ्लेक्शन कहते हैं। सिर जितनाही झुका रहता है। उतनी ही कम जगह लगती है। साढ़े चार इंच लम्बे आक्सिपिटो फ्रान्टल व्यास के बदले साढ़े तीन से चार इन्च तक लम्बा सब आक्सिपिटो ब्रेगमेटिक व्यास आगे आता है और इस कारण गर्भ के कटीर से बाहर निकलने में सुभीता रहता है।

दूसरी हालचाल यह होती है, जोकि जघनास्थिसन्धि की कमान के नीचे शिर पृष्ठ के आगे हुआ करती है। इसको अन्तश्चक्रगति (Intarnal Rotation) इन्टर्नल राटेशन) कहते हैं। इसके कारण सिर का लम्बा व्यास कटीर के निर्गम मार्ग सबसे लम्बे पूर्व पश्चिम व्यास में जाता है। अर्थात् शिर पृष्ठ जघनास्थियों की सन्धि के नीचे आता है और मुख का दर्शनी भाग त्रिकास्थि के गहरेसे भाग में आता है। इसके बाद गर्दन का पिछला भाग जघनास्थि की कमान के नीचे आकर अटकता है। इस हालचाल को प्रसरण (Extention एक्सटन्सन) कहते हैं। तथापि दोनों का प्रभाव सिर के अगले भाग पर पड़ता है। और इस कारण मस्तक, सिर, नाक, मुह और ठुड्डी ये अङ्ग विटप के ऊपर से, एक के

बाद एक आगे आते हैं। और सिर पूर्णतया बाहर निकल आता है, तथा प्रसरण की क्रिया भी पूर्ण होती है। यदि गर्भिणी बाईं करवट सोई होगी, तो प्रसरण होनेके बाद बच्चा गुदास्थि के सिरे की ओर बिलकुल पीछे घूमा हुआ दिखाई देगा। इसके बाद बहिस्थ क्रगति (External Rotation एक्सटर्नल रोटेशन) प्रारम्भ होती है। यह कन्धे की हालचाल पर अवलम्बित रहती है। एक कन्धा जघनास्थियों की सन्धि के पीछे आकर दूसरा त्रिकास्थि के गहरे से भाग के द्वारा आगे बढ़ता है और इस कारण सिर कुछ इस प्रकार गोलाकार रूप में घूमता है कि यदि प्रसववती बाईं करवट सोई होगी, तो बच्चे का मुंह ऊपर आजायगा और शिर पृष्ठ बिछौने के नीचे अर्थात् बाईं ओर को हो जायगा। बिटप के ऊपर रहनेवाला कंधा प्राय: पहले आगे आता है, और फिर उसके बाद दूसरा अर्थात् जघनास्थिसन्धि की ओर का, कंधा बाहर निकलता है, और इन के पीछे सब शरीर निकलता है।

राइट आक्सिपिटो पोस्टीरियर नामक प्रकार में शिरः पृष्ठ को जघनास्थि की कमान के नीचे गोलाकार घूमकर आते समय, उसको कटीर के सम्पूर्ण दाहने भाग के आसपास घूमना पड़ता है और इसी कारण सिर कुछ काल पर्यंत राइट आक्सिपिटो एन्टीरियर प्रकार में रहता है। कभी कभी राइट आक्सिपिटो पोस्टीरियर प्रकार में शिर: पृष्ठ, अगली ओर घूमने की जगह, पिछली ओर त्रिकास्थि के गहरे से स्थान में

...लाकार घूम जाताहै। इसको "न बदलनेवाला आक्सिपिटो पोस्टीरियर" प्रकार कहते हैं। इस प्रकार में मुह जघनास्थि की कमान के नीचे रहकर बाहर निकलताहै। इसमें प्रसूति में बहुत विलम्ब लगता है, और कभी कभी तो प्रसूति पूर्ण होने के लिये बहुत कौशल से काम लेना पड़ता है।

अल्पवेदनाओं के प्रारम्भ से लेकर लगभग बारह घन्टों में प्रसूति पूर्ण होती है। यह समय प्रथम प्रसूतिमें कुछ अधिक हो जाता है। पहली अवस्थामें प्राय आठ घन्टे लगते हैं। परन्तु कभी कभी इससे कुछ न्यूनाधिक समय भी लगजाता है। जब तक गर्भोदक का कोश नहीं फूटता, तब तक गर्भ के लिए अथवा माता के लिए बिलकुल ही डर नहीं रहता। हां, जिस स्त्री के कई बच्चे हो चुके हैं उसकी दूसरी अवस्था में अवश्य ही तीन घन्टे से अधिक समय न लगना चाहिये; और प्रथम प्रसूति में चार घन्टे से अधिक न लगना चाहिये। यदि अधिक समय लग जाय, तो उस समय, और उस स्थान में, जो जो उपाय किये जा सकते हों, उनको करने में तुरन्त ही लगजाना चाहिये। इससे माता और बच्चे को दीर्घप्रसूति के कारण जो जो आपत्तियां उठानी पड़ती हैं वे उठानी न पड़ेंगी। तीसरी अवस्था पाव घन्टे से लेकर आधे घन्टे में पूर्ण हो जाती है।

ग्यारहवां भाग।

स्वाभाविक प्रसूति की व्यवस्था।

प्रसूति के समय ज्योंही बुलौआ आवे, दाई को तुरन्त ही आना चाहिये। क्योंकि प्रसूति के समय यदि कोई अनिष्ट प्रकार हो जाता है, तो इसका कोई विचार नहीं करता कि, उसका दोष किसके ऊपर आता है।

हर हालत में दाई डाक्टर से पहले ही बुलाई जाती है, और इस कारण दाई को यह भी मालूम होना चाहिये कि डाक्टर को किस हालत में बुलाना ठीक होगा। यह बात विशेष उत्तरदायित्व की है। क्योंकि यदि वह बहुत जल्द डाक्टरको बुला लेगी तो उसका बहुतसा समय व्यर्थ जायगा, और यदि देर को बुलावगी, तो दशा खराब हो जायगी अतएव दोनों दशाओं में उसको दोष दिया जायगा। इसलिये जब डाक्टर की आवश्यकता हो तब दाई को उचित है कि वह प्रसववती की दशा और उसके लक्षण कागज पर स्पष्ट लिखकर डाक्टरके पास भेजे। सिर्फ जबानी सन्देशा न भेजना चाहिये।

अक्सर डाक्टर के आने के पहिलेभी प्रसववती की प्रसूति में उठने वाले भिन्नभिन्न प्रकार के भयकर विकारों पर दाई को उपचार करने पड़ते हैं। ये विकार एकाएक उठ खड़े होते हैं,

और कभी कभी इनका स्वरूप इतना भयकर होताहै कि उनसे माता और बच्चा दोनों के प्राणों को धक्का पहुंचने की सम्भावना रहती है। और इस कारण ऐसे ही समय में दाई की सच्ची सच्ची परीक्षा होती है। अतएव दाई को यदि, अपने व्यवसाय में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त करनी हो तो उसको अपने विषय का तात्विक और व्यावहारिक, दोनों प्रकार का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। इसी प्रकार उसे इस बात का भी ख्याल होना चाहिये कि उसके ऊपर कितनी बड़ी जवाब देही है। उसकी बुद्धि तीव्र और हाथ कौशल युक्त होना चाहिये।

उसको एक छोटासा बेग और उसमें निम्नलिखित सामग्री सदैव तैयार रखनी चाहिये कि जिससे वह बुलौवा आने पर तुरन्त ही पहुंच सके।

(१) हिजिन्सन की पिचकारी और योनिमार्ग में डालते समय उसमें लगाने का मुंह।

(२) मूत्रोत्सर्जक नलिका, पुरुष की मुलायम जाति की (Gum elastie male catheter गम इलेस्टिक मेल काथेटर) कैंची और नाखून साफ करने का स्वच्छ कूचा (Nail Brush नेल ब्रश)।

(३) सूत की डोरी।

(४) सुरक्षित आलपीनें (Safety pins सेफ्टी पिन्स)

(५) उष्णता मापक यन्त्र (Thermameter थर्मामीटर)

(६) क्यारयालाइज्ड वेसलीन।

(७) कीसुंगंदकापतला सत्व एक औंस (एकस्ट्राक्ट अर्गट लिक्विड)

(८) मॅरक्यूरिक परक्लोराइड की टिकियां।

(९) परमैंगनेट आफ पाटाश की एक औंस की शीशी।

(१०) कार्बोलिक एसिड।

इनके अतिरिक्त डाक्टर के पास निम्नलिखित वस्तुयें होनी चाहियेः—

(१) स्टेथस्कोप।

(२) थर्मामिटर।

(३) क्लोरोफार्म और उसको सुंघाने की टोपी।

(४) ईथर।

(५) लायकर फेरी परक्लोराइड।

(६) हायपोडर्मिक सिरिंज।

(७ चांदी का तार, रेशम का डोरा, और सुइयां

(८) आयडोफार्म गाज।

(९) भिन्न भिन्न शस्त्र प्रयोगों के शस्त्र।

दाई को आते ही यदि यह मालूम हो कि प्रसूति का प्रारम्भ हुआ है, तो उसको प्रसवपती से अथवा उसके घर वाले से निम्नलिखित प्रश्न करके जानकारी प्राप्त करनी चाहिये:— (१) प्रथम दर्द कब प्रारंभ हुये? (२) वे किस प्रकार के थे? (३) वे किस जगह आ रहे थे? (४) मूत्राशय और मलाशय की स्थिति कैसी थी? क्योंकि वे प्रसूति के पहले रिक्त हुये

होने चाहिये। यों तो दाई को प्रसूतिकाल के कुछ दिन पहले ही बुलाना उचित होगा, जिससे कि प्रसूति काल के पहिले ही सब तयारी कर रखे।

सूतिका की कोठरी यह कोठरी बड़ी प्रकाशपूर्ण और हवादार होनी चाहिये, उसमें साफ हवा सदैव आती जाती रहनी चाहिये। उसका सब सामान निकाल कर पहले ही से साफ कर रखना चाहिये। उस कोठरी से मोरी जितनी ही दूर हो, उतना ही अच्छा।

सूतिका का बिछौना—सूतिका का पलँग यदि कोई ा हो, तो बहुत अच्छा होगा। उस पलँग को कोठरी में ऐसी गह रखना चाहिये कि प्रसववती जब बाईं करवट लेवे, ब उसकी पीठ की ओर दाई सहज में आ जा सके। मतलब यह है कि उधर की ओर स्थान छूटा रहना चाहिये।

बिछौना बिलकुल साधारण होना चाहिये। पलँग के बीचों बीच एक गज चौड़ा मोमजामे का कपड़ा [illegible] का टुकड़ा डाल रखना चाहिये। इसके ऊपर कपड़ी अथवा दुहरा कम्बल डाल देना चाहिये। इससे प्रसूति के समय जब कि स्त्री उस पर पड़ती है, तब रक्त आदि के गिरने से बिछौना खराब नहीं होगा। इसके सिवाय प्रसव समाप्त होने पर यह मोमजामा स्त्री को कष्ट न देवे।

में निकाला जा सकता है। एक दूसरा भी मोमजामे का टुकड़ा सिरहाने की ओर रखना चाहिये।

प्रसववती के शौच के विषय में पहले प्रबन्ध करना चाहिये। ऐसा करने से बहुत सी आपत्ति और कष्ट टाला जा सकता है। प्रसूतिकाल के लगभग आठ दिन पहले आधा औंस रेंडी का तेल रेचक के तौर पर देना चाहिये। रेंडी का तेल यदि स्त्री को पसन्द न आवे, तो उसकी जगह पर वसी ही कोई अन्य रेचक औषधि देनी चाहिये, जिसके ग्रहण करने की स्त्री को आदत हो।

इसके बाद प्रति दिन सुबह कोई न कोई सारक औषधि देनी चाहिये। जैसे १ ड्राम मुलहटी आदि का चूर्ण (पलिबस ग्लिसराइजा को) अथवा सिडलिट्ज पाउडर देना चाहिये, इससे पाखाना साफ होता रहेगा। प्रसूति प्रारम्भ होने के पहिले स्त्री को गरम पानी से स्नान कराना चाहिये।

सौवर के लिये आवश्यक सब सामान तैयार रखना चाहिये। जैसे पहनने के रूमाल (Diapers), पेट बांधने के कपड़े, बच्चे को पहनाने के कपड़े, गरम और ठण्डा पानी, इत्यादि। मतलब यह है कि ऐसी कोई चीज बाकी न रख छोड़नी चाहिये कि जिसको प्रसूति के समय ढूंढने की नौबत आवे। क्योंकि उस समय तो दाई को जच्चा के पास ही रह कर उसकी सब व्यवस्था करनी होगी सारा ध्यान उसीकी ओर रखना पड़ेगा।

दाई को चाहिये कि कोठरी में निम्नलिखित सामान तैयार रखे ।

(१) स्वच्छ तौलिया (१२) और बहुत से साफ कपड़ों के टुकड़े।
(२) बहुत सी साफ चद्दरें।
(३) दो अथवा तीन पहनने के रूमाल, जिनमें से प्रत्येक सवा गज लम्बा और आध गज चौड़ा हो।
(४) वाटर प्रूफ के दो टुकड़े प्रत्येक एक वर्ग गज।
(५) सेफ्टी पिन्स।
(६) कैंची।
(७) हिजिन्सन की पिचकारी अथवा धावननालिका, (स्वच्छ है बिगड़ी तो नहीं है यह पहलेही देख रखना चाहिये) यदि आवश्यकता हो तो बस्ति देने के लिये भी एक पिचकारी चाहिये।
(८) किम्हाई के लिये एक साफ रकाबी।
(९) मल पात्र (Bedpan बेडपान)।
(१०) कुछ अन्य स्वच्छ रकाबियाँ।
(११) गरम और ठंढा पानी बहुतसा होना चाहिये।
(१२) नाखून साफ करने के स्वच्छ और नवीन दो कूचे।
(१३) जन्तु नाशक मलहम, क्यारबालाइज्ड वेसलीन।
(१४) सालिसिलिक या कारोलिक सल्फ्रेटकी रुईके बण्डल।
(१५) नाल बाधनेके लिये मजबूत सूतकी डोरी अथवा फीता

(१६) वेसलीन या तिलतेल बच्चेके शरीरमें लगानेके लिये।
(१७) बच्चे के वस्त्र और फलालैन का एक टुकडा बच्चे के आसपास लपेटने को।
(१८) सुई, डोरा, इत्यादि।
(१९) बच्चे को नहलाने के लिये पात्र और गरम जल।
(२०) स्नानके पानीकी उष्णता नापनेके लिये एक थर्मामीटर।
(२१) तथा मुह पर डालने का पाउडर और उसे लगाने का फूल।

जब वेग प्रारम्भ हो जायँ,और वे बार बार आने लगें, तब इस बात का विश्वास करने के लिये कि प्रसूति की प्रगति हो रही है या नहीं, योनि परीक्षा करनी चाहिये। यह परीक्षा निम्नलिखित अनुसार उसी समय करनी चाहिये कि जब वेग आवे।

प्रसववती बाईं करवट पड रहे। वह अपने घुटने पेट के पास लावे, और दाई उसकी पीठ की ओर खडी हो। प्रसववती के नितम्ब पलंगके सिरे के पास आजाने चाहिये। इसके बाद दाई अपने हाथ किसी जन्तुनाशक औषधि में अच्छी तरह धो डाले, औरफिर तर्जनी और मध्यमा इनदो उंगलियों में जन्तुनाशक तैल लगावे और फिर उन उंगलियों को विटप के आगे ले जावे। इससे वे बाह्यजननेन्द्रिय तक जावेंगी। इसके बाद उनको योनि के ओष्ठों से योनिमार्ग में धीरे धीरे प्रविष्ट करे।

उक्त ३ गलियां जब इस प्रकार धीरे धीरे योनिमार्ग में आगे प्रविष्ट की जायेंगी तब गर्भाशय की गरदन और मुख तक पहुंचेंगी। गर्भाशय का मुख प्रसूति की भिन्न भिन्न अवस्था में भिन्न भिन्न आकार का रहता है।

योनि परीक्षा से निम्नलिखित बातोंका विश्वास कर लेना चाहिये:—

(१) जननमार्ग की स्थिति।
(२) मलाशय की स्थिति।
(३) प्रसूति की अवस्था।
(४) गर्भ का दर्शन।

(१) जनन मार्ग की स्थिति–जनन-मार्ग यदि गीला और मुलायम हो तो समझना चाहिये कि प्रसूति शीघ्र होगी परन्तु यदि वह गरम और सूखा हो, तो इससे विरुद्ध स्थिति समझनी चाहिये।

फटीर का आकार भी इस समय देखना चाहिये।

(२) मलाशय की स्थिति–मलाशय यदि खाली होगा, तो वह योनि परीक्षा से उंगली में नहीं लगेगा परन्तु यदि वह भरा हुआ होगा तो उंगली और त्रिकास्थि की पुलाई के बीच से, वह योनिमार्ग की पिछली दीवाल से आगे आया हुआ जान पड़ेगा। मलाशय यदि रुद्ध हो, तो बस्ति देकर उसे खाली करना चाहिये।

(३) प्रसूति की अवस्था–प्रसूति की कौनसी अवस्था

है यह बात गर्भाशय के मुख के प्रसरण के परिणाम से मालूम होती है। गर्भाशय का मुख जब तक पूर्णतया चौड़ा न हो जाय तब तक पहली अवस्था रहती है इसके बाद गर्भ की प्रसूति तक दूसरी अवस्था रहती है।

गर्भाशय का मुख जब पूर्णतया चौड़ा हो जाता है तब ऐसा जान पड़ता है कि गर्भाशय और योनिमार्ग दोनों मिलकर एक ही नलिका के रूप में हैं क्योंकि गर्भाशय की गर्दन चूंकि बिलकुल विस्तृत होजाती है इसलिये उसका कगूरा फिर हाथ में नहीं लगता।

वेगों के जारी रहते हुये भी यदि गर्भाशय का मुख बिलकुल ही चौड़ा न होता हो और प्रसववती को ऐसा जान पड़ता हो कि वेग पेट में ही आ रहे हैं, तो यह समझना चाहिये कि वे मिथ्या वेदनायें हैं।

(४) गर्भ दर्शन—यदि गर्भाशय इतना चौड़ा न हुआ हो कि उंगली का सिरा भी उस में जा सके, तो फिर दर्शन का निदान करना बहुत ही कठिन होगा। ऐसी दशा में उसका निदान किस प्रकार करना चाहिये, इसका पूर्ण विचार दर्शन के भाग में किया गया है। परन्तु यहां पर इतना बतला देना आवश्यक होगा कि, यदि मस्तक दर्शन होगा तो वह अवश्य ही योनि के ऊपरी भाग से जाना जा सकता है। वह हाथ में एक कठोर अन्डाकार गोले के समान लगता है। परन्तु यदि आगे आनेवाला भाग बिलकुल

हीन लगे, तो, इसे अस्वाभाविक प्रकार समझना चाहिये। ऐसी दशा में अगले उपचार में लगजाना चाहिये।
गर्भदर्शन कौन सा है। यह बात गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में हाथ से पेट को दाब कर देखने से जान सकते हैं। जघनास्थियों की सन्धि के ऊपर की ओर दोनों हाथ से दाब कर यदि देखा जाय, तो, यदि मस्तकदर्शन होगा तो सिर का कठोर भाग कटीर के सिर पर सहज ही हाथ में लगता है। इसी प्रकार नितम्बदर्शन में सिर गर्भाशय की पेंदी में हाथ से लगता है। कटीर के सिरे पर नहीं लगता। स्त्री यदि नाजुक और पतली होती है तो बच्चे की पीठ नितम्ब और अन्य अङ्ग भी स्पष्टतया हाथ में लगते हैं। शिरश्चीन जान (बच्चे के आड़े इत्यादि हाजाने पर) के समय, सिर दाहने या बायें नितम्बास्थ, के भीतर ऊपर की ओर रहता है। बच्चे के शरीर के भाग का लम्बा व्यास माता के पेट में आड़ा, परन्तु कुछ झुका हुआ सा, रहता है। यदि गमके दो सिर हाथ में लगें तो यह समझना चाहिये कि जुड़े हुए बच्चे हैं। गर्भावस्था के अन्तिम दो तीन महीनों में दाई यदि अपना हाथ भलीभांति गरम करके सावधानी के साथ, पेट की परीक्षा करे तो उपर्युक्त बातें उसे सहज ही में थोड़े ही, अनुभव से मालूम हो जाती हैं। पेट की परीक्षा करते समय गर्भवती के पैर पेट के पास लेकर उठाना पड़ाना चाहिये। पेट को तनने न देना चाहिये।

प्रसूति की प्रथमावस्था की व्यवस्था-यदि प्रसूति का प्रारम्भ हो चुका हो, तो योनिमार्ग को जन्तुनाशक औषधि के पानी से साफ करके धो डालना चाहिये। बाह्यजननेन्द्रियों को साबुन और पानी से स्वच्छता पूर्वक धो डालने के बाद जन्तुनाशक जल से धोना चाहिये। धोते समय स्पञ्ज का उपयोग न करना चाहिये। ग्रीवा चूंकि पहली अवस्था में ही चौड़ी हो जाया करती है, इसलिये यह इस समय कुछ चौड़ी सी अवश्य जान पड़ेगी। आगे चल कर प्रत्येक वेग के साथ गर्भाशय के मुखके सिरे तनते जातेहैं और यदि पहले गर्भोदक का कोश फूटा न होगा तो गर्भोदक की थैली गर्भाशय की ग्रीवा से जो उस समय चौड़ी हो जाती है आगे आई हुई हाथ में लगेगी। जैसा कि पहले बतलाया है जब वेग आता है उसी समय योनि परीक्षाका प्रारम्भ करके ग्रीवाका प्रसरण वेग का जोर और उसका परिणाम इत्यादि बातों की परीक्षा करनी चाहिये। तथापि यह वेग जब तक बन्द न हो जाय तब तक उंगलियां योनिमार्गमें ही रहनेदेना चाहिये। क्योंकि वेग के समाप्त होने पर और भी कुछ जानकारी प्राप्त करनी होती है।

वेग के बन्द होने पर एक उंगली गर्भाशय के मुख से भीतर डालनी चाहिये, और यह देखना चाहिये कि उसके किनारे कैसे हैं। ये किनारे यदि कुछ मोटे और मुलायम जान पड़े, तो समझना चाहिये कि प्रसरण शीघ्र होगा।

परन्तु यदि वे पतले और तने हुये जान पड़ें, तो यह समझना चाहिये कि उक्त प्रसरण क्रिया धीरे धीरे होगी।

ऐसे समय में गर्भोदक की थैली थलथली सी जान पड़ती है। और व गलिया यदि थैली ही ऊपर दबाई जांय तो यदि गर्भ का शिरो दर्शन होगा तो, सिर का गोल भाग द गलियों में लगगा। थोड़ा सा दबाने पर यदि हाथ में कुछ भी न लगें तो यह समझना चाहिये कि कोई न कोई अस्वाभाविक प्रकार है। गर्भोदक कोश के ऊपर से जोर के साथ कभी न दाबना चाहिये। इससे शायद वे फूट जायगे और फिर ग्रीवाके प्रसरणमें जो सहायता होनेवाली होगी, सो न होगी। वेग के समय गर्भोदक कोश तने होत हैं। उस समय भी यदि वे कुछभी दब जाते हैं तो भी उनके फूटने की सम्भावना रहती है। इसलिये इस समय में गर्भाशय के मुख से परीक्षा कभी न करनी चाहिये। जब इस बात का पूरा पूरा विश्वास कर लिया जाय कि प्रसूति ठीक तौर से हो रही है तब बहुत देर तक परीक्षा न करनी चाहिये। क्योंकि बारम्बार परीक्षा करने से ग्रीवा में दाह होने लगता है। और इस कारण ग्रीवा के प्रसरण में विलम्ब लगता है।

परीक्षा हो जाने पर घर के लोग दाई से प्राय यह पूछते हैं कि प्रसूति ठीक तौर से होगी या नहीं, और छुटकारा होने में कितना समय है।

यदि सब ठीक हो, तो पहले प्रश्न का वैसा ही उत्तर

तुरन्त देना चाहिये। यदि कुछ न्यूनाधिक हो तो प्रसववती को कभी न बतलाना चाहिये। परन्तु उसके घरके लोगों को बतला देना चाहिये।

दूसरे प्रश्नका पूरा २ उत्तर कभी न देना चाहिये। क्योंकि यह बात पहले ठीक ठीक नहीं बतलाई जा सकती कि प्रसूति में कितना समय लगेगा। सिर्फ इतना कहना चाहिय कि यह बात वेगों पर और प्रसववती के जोर पर अवलम्बित है। पहली अवस्था में प्रसववती को इधर उधर घूमने का आदेश करना चाहिये, और जब वेग आने लगे तब उसे कांखने की मनाई करना चाहिये। क्योंकि इससे प्रसववती को व्यर्थ श्रम पड़ता है। यदि कुछ खाने को देने की आश्यकता जान पडे, तो उसे गरम दूध चाय अथवा काफी देनी चाहिये। इसी प्रकार आवश्यकता के बिना, उत्तेजक औषधिया न देनी चाहिये।

इस अवस्था में दाई को सब तैयारी कर रखनी चाहिये। जैसे गरम और ठण्डा बहुतसा पानी तैयार कर रखना चाहिये सूतिका के पहनने के लिये रूमाल अथवा कपडे के टुकडे, बच्चे के टुकडे, पेट बांधने के कपडे, इत्यादि सुखाकर भलीभांति तैयार रखने चाहिये। और डोरी तथा कैंची ऐसी जगह रख छोडनी चाहिये कि, तुरन्त ही हाथ से ली जा सके।

दूसरी अवस्था की व्यवस्था–ग्रीवा का पूर्ण प्रसरण हो

जाने पर प्रसुति की दूसरी अवस्था प्रारम्भ होती है। यदि गर्भोदकके कोश अभी तक आपही आगे फूटे न हों, तो उनको स्वयं फोड़ना चाहिये। वेग के समय आगे आई हुई गर्भोदक की थैली नाखून से कुतर-कर फोड़ना चाहिये। गर्भोदक के कोश फूटते ही वह एक-दम बाहर निकल आता है। इसलिये बाह्यजननेन्द्रियों के नीचे एक चौड़ा बर्तन रखकर उसी में गर्भोदक गिरने देना चाहिये जिससे बिछौने के कपड़े न भीगने पावें। गर्भोदक के प्रवाह के साथ ही साथ सिर अथवा दूसरा दर्शन-भाग कटीर के किनारे में बहुत आगे आ जाता है।

अब यह निश्चित करने के लिये, कि गर्भ का दर्शन कौन सा है और यह देखने के लिये कि नाल आगे आया है या नहीं, अच्छी तरहसे योनि परीक्षा करनी चाहिये। क्योंकि इसी समय नालभ्रंश होने की सम्भावना रहती है।

इस अवस्था में प्रसववती को बिछौने पर सुलाना चाहिये और कोई बेंच अथवा स्टूल या वैसी ही कुछ दूसरी बैठक पलग के पायताने की ओर रखना चाहिये। इससे स्त्री इस अवस्था में उसी बैठक में अपने पैर टेक कर, वेगों के समय ज़ोर से काँख सकेगी। दाई को यह भी बार बार देखना चाहिये कि प्रसववती को पेशाब होता है या नहीं, और जैसा कि पिछले भाग में बतलाया है, खूँटी पर लम्बी धोती टांग कर उसको स्त्री के हाथ में खींचने को देना चाहिये, इससे

बसमें भी उसको वैसा ही आगे की ओर ढकेलना चाहिये। इससे सिर की गति की दिशा बदल जायगी और विटप के फटने का भय न रहेगा।

सिरके बाहर निकल आने पर दाई को उसे दाहिने हाथ में लेना चाहिये और उँगलियों से यह देखना चाहिये कि गर्भ की गर्दन के आसपास नाल लपटा तो नहीं है, यदि लपटा हो तो नाल का फेरा सिरके ऊपर से पीछे की ओर से आगे निकाल लेना चाहिये। बच्चे का मुख स्राव में न डूबने देना चाहिये। उसके मुख के अन्दर का श्लेष्मा रूमालसे पोंछ कर निकाल डालना चाहिये; और आंखें तथा उनके आसपास का स्थान, अबसाबेंट काटन से पोंछ डालना चाहिये।

बायां हाथ पेट पर से गर्भाशय की पेंदी पर रखना चाहिये और दूसरे से वेग आनेके साथ ही दाब देना चाहिये। इससे बच्चे के कंधे और शरीर आगे आजायेंगे और गर्भाशय का भली भांति आकुचन भी हो जायगा।

बच्चे का आगे आया हुआ सिर खींच कर प्रसूति पूर्ण करने का प्रयत्न यों तो ऊपर ऊपर से देखने में अच्छा जान पड़ता है परन्तु वास्तव में इस प्रयोग को कभी न करना चाहिये। क्यों कि ऐसा करने से बच्चे को बहुत कुछ हानि पहुँच ने की सम्भावना रहती है। और इसके अतिरिक्त प्रसूति की यंत्रशक्ति बिगड़ कर विटप के फटने की भी सम्भावना रहती है। इस प्रकार सिर खींच कर प्रसूति के पूर्ण करने से

प्राय: विटप अधिकांश में फट जाया करता है इसमें बिल
कुल सन्देह नहीं।

परन्तु पेट पर हाथ करके प्रसूति को सहायता करने से
प्रसूति की नैसर्गिक यन्त्र शक्ति को मदद तो मिलती ही है,
किन्तु इसके अतिरिक्त गर्भाशय की पुलाई ज्यों ज्यों रिक्त होती
जाती है, त्यों त्यों चूकि वह दबती जाती है इसलिये प्रसवोत्तर
रक्त स्राव का भय भी नहीं रहता।

बच्चे के बिलकुल बाहर निकल आने पर माता को चाय
के एक चमचे भर एक्स्ट्राक्ट अर्गाट लिक्विड देना चाहिये।

बच्चा पैदा होते ही श्वासोच्छ्वास करने लगता है, और
रोने भी लगता है रक्त और सफेद चिप चिपा श्लेष्मा दोनों
श्वास के साथ भीतर चले जायेंगे, इसलिये बच्चे के पैदा होते
ही उसकी नाक और मुहँ को धो पोंछ कर साफ कर देना
चाहिये।

पैदा होतेही यदि ... पीठ अथवा
छाती पर जोर से ... सो च्छ्वा-
स प्रारम्भ ... नहो तो

और उस लपेटन को सूतिका की पीठ के नीचे से उस तरफ की ओर ले आना चाहिये और इसके बाद उसको खूब तान कर बांधना चाहिये।

उदरबन्ध सेफ्टीपिन्स से बाँधा जा सकता है। इसके नीचे का किनारा खूब खींचकर मजबूती के साथ बांधना चाहिये और ऊपर का (पेट की तरफ का) किनारा कुछ ढीला रखना चाहिये। इससे सांस लेने में अड़चन न पड़ेगी। उदरबन्ध के निचले किनारे के पास एक सेफ्टीपिन लगाना चाहिये। दूसरी नितम्बास्थि के किनारे के नीचे, तीसरी नितम्बास्थि के किनारे के ऊपर लगाना चाहिये। इसके ऊपर कभी कभी एक चौथी पिन भी लगाई जाती है, परन्तु उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं। गर्भाशय और उदर-बन्ध के बीच में एक तौलिये की गद्दी यदि रखदी जायगी, तो उस पर बराबर दाब पड़ेगी।

अब यदि सूतिका की इच्छा हो तो उसे कुछ पीने के पदार्थ देकर आराम से पड़ने देना चाहिये। सूतिका को सोने का आदेश देने के पहले उसकी नाड़ी को ठीक तौर से गिनना चाहिये। यदि एक मिनट में १०० के अन्दर ठोंके पड़ते हों तो सब ठीक समझना चाहिये, परन्तु यदि इससे अधिक बार उसके ठोंके पड़ते हों तो यह समझना चाहिये कि रक्तस्राव होना चाहता है अथवा हो रहा है। यदि ऐसा हो तुरन्त ही यह देखना चाहिये कि, गर्भाशय पूर्णतया आकु-

चित हुआ है या नहीं, इसके सिवाय यह भी, देखना चाहिये कि योनिमुख के ऊपर वाली रूमाल की घडी क्या रक्तस्राव से तर तो नहीं होगई है। यदि यह जान पड़े कि रक्तस्राव हो रहा है तो उसके बन्द करने का उपाय करना चाहिये ।

यदि सब ठीक हो तो कोठरी में अंधेरा कर देना चाहिये और सब गड़बड़ी बन्द कर देनी चाहिये। इससे सूतिका को गाढ़ी निद्रा आजायगी।

सब गन्दे कपड़े कोठरी मे निकाल डालने चाहियें, और फिन्हाई को जलाने अथवा गाड़ने के लिये ले जाना चाहिये। सूतिका की कोठरी में या और कहीं आसपास उसे न गिरने देना चाहिये। उसको अच्छी तरह जांच कियेबिना उसको ले जाकर न डालना चाहिये।

— —

बारहवां भाग।

अस्वाभाविक प्रसूति और उसके प्रकार।

आकस्मिक प्रसूति और दीर्घप्रसूति।

अस्वाभाविक (Abnormal Labour अबनार्मल लेबर) प्रसूति की भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें प्रसवशक्ति प्रसवमार्ग और उस मार्ग में आनेवाला गर्भ-इनमें से किसी स्थिति में भी जब कोई न कोई दोष रह जाता है तब प्रसूति अत्यन्त शीघ्र पूरी हो जाती है, अथवा उसमें बिलम्ब लगताहै अथवा प्रसूति

होते समय उपर्युक्त तीन बातों के ही सम्बन्ध के अन्य विकार हो जाते हैं। उस समय उस प्रसूति को अस्वाभाविक प्रसूति कहते हैं। अस्वाभाविक प्रसूति के मुख्य तीन भाग हैं:—

(१) आकस्मिक प्रसूति।

(२) दीर्घ प्रसूति।

(३) सकीर्ण प्रसूति।

आकस्मिक प्रसूति (Precipitate Labour प्रेसिपिटेट लेबर) इस प्रकार की प्रसूतिमें प्रसव-क्रिया बहुत जल्द होती है। इसका कारण यह है कि प्रसवमें कभी प्रसव शक्तिअधिक बढ़ती है, प्रसव में कम बाधा होती है अथवा ये दोनों बातें एक दम होती हैं।

इस प्रकार की शीघ्र होनेवाली प्रसूति को अस्वाभाविक कहना पहले पहल कुछ विचित्र सा जान पड़ता है, परन्तु जब यह स्पष्ठ हो जाता है कि, गर्भाशय का भ्रष्ट होना, गर्भाशय का उलटा होना, विटप फटजाना, प्रसवोत्तर रक्त-स्राव होना, इत्यादि परिणाम इसी प्रकार की प्रसूति के कारण होते हैं, तब फिर यह भलीभांति समझ में आ जाता है कि इस प्रसूति को अस्वाभाविक प्रसूति की श्रेणी में क्यों रखा है। इस प्रकार में इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं कि प्रसववती को न काखने के विषय में सलाह दी जाय। इसके सिवाय गर्भ का दर्शन—भाग जब बाह्य जननेन्द्रियों से बाहर आने लगे, तब उसको हाथ से दाब रखा जाय। यदि इतना

अवकाश मिल जाय कि जिसमें यह मालूम हो जाय कि वक्र प्रकार की प्रसूति हो रही है, तो फिर प्रसववती को न कांखने के विषय में ही सम्मति देनी चाहिये। इससे गर्भ अवकाशानुसार बाहर आवेगा, अतएव विटप भी न फटेगा।

इस प्रकार में प्राय: दाई के आने से पहिले ही, अथवा अन्य किसी भी प्रकार की सहायता मिलनेसे पहिले ही या यथा प्रसववती के बिछौने पर पहुचने से पहले ही प्रसूति पूर्ण हो जाती है, और ऐसे समय में प्राय गर्भ और जरायु, ये दोनों पृथ्वी पर, अथवा जहां स्त्री होती है, वहीं गिर जाते हैं। ऐसी दशा में, गर्भ के बाहर गिर जाने पर यदि जरायु भीतर रह जाती है, तो प्राय गर्भ और नाल टूट जाता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो बच्चे के वजन से गर्भाशय में तनाव पड़ता है, और उसका भ्रंश हो जाता है, अथवा वह उलट जाता है।

दीर्घ प्रसूति (Prolonged Labour प्रोलान्गड्‌ लेबर) इस प्रकार की ठीक ठीक व्याख्या करना साधारणतया असम्भव है। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि प्रसूति की पहली स्थिति में यदि आठ घंटे से अधिक समय लगता है, दूसरी में तीन घंटे से अधिक समय लगता है, और तीसरी में यदि आध घंटे से अधिक समय लगता है, तो यह समझना चाहिये कि दीर्घप्रसूति हुई। इस प्रकार के अनियमितपन के कारण, और विलम्ब होने के अनेक न्यूनाधिक भयावह कारणों के होने से यह आवश्यक है कि उन सब कारणों का पूर्ण ज्ञान हो।

विलम्ब का कारण और उससे होने वाले प्रतिबन्ध के मालूम हो जाने पर आवश्यकतानुसार प्रसूति के शीघ्र होने में यथाशक्य मदद ली जा सकती है, और इनसे बहुतेरे बुरेमौके टाले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त माता और बच्चे के भी प्राण बहुधा बचाये जा सकते हैं।

परिणाम-नाडी बहुत जल्द जल्द चलने लगती है और वह प्रायः १०० से १२० बार तक तथा कभी कभी इससे भी अधिक बार तक चलने लगती है। प्रसववती का चेहरा उदास कष्टित और अशान्त दिखाई देता है। ग्रीवा और योनिमार्ग से आनेवाला स्राव बन्द हो जाता है और वे भाग सूखे और गरम होजाते हैं कभी कभी उनमें सूजन भी आ जाती है। कभी कभी उस सूजे हुये भाग में से कुछ भाग सड भी जाता है। स्त्री की जीभ पर मैल आजाता है और आगे चलकर वह सूखी और कुछ स्याह होजाती है। ज्वर बढने लगता है। उसका जी मिचलाने लगता है, वांति होती है, और नाडी द्रुतगति तथा निर्बल होती जाती है। इस के बाद वह स्त्री मर जाती है। ऐसी दशा में, ज्यों ही नाडी १०० से ऊपर जाने लगे, त्यों ही बहुत जल्द प्रसूति के शीघ्र होजाने का उपचार करना चाहिये। आगे के बुरे लक्षणों के होने की प्रतीक्षा न करनी चाहिये। उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त गर्भाशय का सविराम आकुंचन धीरे धीरे बन्द हो जाता है,और इस

का मसत आकुंचन होता है, और गर्भाशय का निचला भाग
तन आता है।

प्रसूति की पहली अवस्था में गर्भोदक के निकल जाने के
पहले यदि प्रसूतिमेंविलम्ब लगे,तो उसी स्थिति में प्रसव घसी
हुत समय तक रह सकती है। इस से उस पर अथवा उस
बच्चे पर किसी प्रकार का बुरा असर नहीं हो सकता। हां,
र्भोदक के बह जाने पर यदि विलम्ब लग जाता है, तो अवश्य
े दोनों को विशेष कष्ट होने की सम्भावना रहती है।

प्रसूति की दूसरी स्थिति में यदि विलम्ब लग जाता है,तो
कु ही घंटों में बहुत भयकर परिणाम हो सकते हैं। उनसे
ाशय और योनि मार्ग में अगली ओर की दीवाल सड़न
गती है, और योनि मार्ग के बीच में छिद्र (vesicovaginal
istula) पड़ जाता है। इस अवस्था में विलम्ब लगने के
ारण बच्चा भी प्राय मर जाता है। इस लिये इस स्थिति में
लम्ब की सम्भावना देखते ही चिमटे का उपयोग करके
सूति शीघ्र ही कराई जाती है।

प्रसूति की तीसरी अवस्था में जब विलम्ब लग जाता है,
े प्रसवोत्तर रक्त स्राव होता है। प्रसूति के विलम्ब के
ारणों के तीन भाग किये जा सकते हैं—(१) पहली अव-
था के कारण, (२) दूसरी अवस्था के कारण, और (३)
ीसरी अवस्था के कारण। इन में से प्रत्येक स्थिति में तीन
कार के दोष होसकते हैं।

(१) प्रसव-शक्ति के दोष।

(२) प्रसव-मार्ग के दोष।

(३) प्रसव-मार्ग से बाहर आने वाले गर्भ के दोष।

प्रसव शक्ति के दोष–प्रसूति की तीनों अवस्थाओं में सब शक्ति एकही रहती है। इसलिये उसके दोषोंका पहले एकदम ही विचार कर लेना ठीक होगा।

प्रसव शक्ति का मुख्य दोष गर्भाशय का, और प्रसूति को मदद देने वाली अन्य स्नायुओं का, अपूर्ण आकुचन होना है। इनमें से गर्भाशय के पूर्णतया आकुचन न होने का कारण विशेष महत्त्व पूर्ण है। स्नायुओं का आकुचन उतना महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि सिर्फ गर्भाशय के आकुचन सेही अकसर प्रसूति पूरी हो जाती है।

(१) गर्भाशय के पूर्णतया आकुचित न होने को गर्भाशय—निश्चलता (Inertia Uteri इनर्शिया यूटेराय) कहते हैं। विलम्ब के अन्य सब कारणों की अपेक्षा यही विशेष बार देखा जाता है।

कारण।

(१) गर्भाशय की दीवाल का पतला होना। अथवा गर्भाशय की स्नायु में वसामय विकृति (Fatty Degeneration फेटी डीजनरेशन) का होजाना। यह विकार प्राय. कमजोरी के कारण हो आया करता है। और विशेष कर उच्च श्रेणी की स्त्रियोंको व्यायामकी विशेष आदत न होनेके कारण,

होता है और इसी प्रकार जिन स्त्रियों को पूरा पूरा भोजन और हवा नहीं मिलती, उन दरिद्रावस्था में रहने वाली स्त्रियों को भी हो जाता है।

(२) अत्यन्त छोटी अवस्था में अथवा बहुत अधिक अवस्था में प्रथम गर्भावस्था प्राप्त होने पर भी यह विकार होता है। इसी प्रकार जिन स्त्रियों के बहुत बच्चे हो चुकते हैं, उन को भी इसके होने की सम्भावना रहती है।

(३) मलावरोध और मूत्रावरोध होने से।

(४) गर्भोदक के अधिक होने से।

(५) एक से अधिक गर्भ होने से।

(६) कभी कभी मन पर विशेष धक्का लगने से भी गर्भ का आकुञ्चन कुछ बन्द हो जाता है।

(७) कभी कभी अत्यन्त श्रम के कारण अथवा किसी रोग से निबल हो जाने के कारण भी कम परिमाण में गर्भाशय आकुञ्चन पाता है, कभी कभी इस स्थिति के होने का कारण भी नहीं बतलाया जा सकता।

चिकित्सा।

पहली अवस्था में गर्भोदक कोश फूटने के पहले चुपचाप देखते रहना चाहिये, कोई उपाय न करना चाहिये। यदि आवश्यकता मालूम हो, तो बस्ति देकर मलमार्ग साफ कर देना चाहिये। प्रसवती की शक्ति स्थिर रखने के लिये दूध दह्यादि पीने को देना चाहिये। उसको शान्ति पूर्वक सोने देना

द्वारा सिरिञ्ज से धीरे धीरे पानी को भीतर जाने देना चाहिये उस पानी के योग से थैली ज्यों ज्यों तनती जायगी त्यों त्यों ग्रीवा भी धीरे धीरे चौड़ी होती जायगी। लगभग एक घन्टे बाद उस थैली को खाली करके बाहर निकाल लेना चाहिये और फिर यह देखना चाहिये कि ग्रीवा चौड़ी हुई है या नहीं और यदि आवश्यकता जान पड़े तो फिर जरा अधिक बड़ी थैली पहले की भांति ही भीतर डालनी चाहिये। कभी कभी इस प्रकार की थैली के उपयोग से दर्शनभाग पीछे एक ओर चला जाता है इसलिये यह देखकर कि वह वैसा गया है या नहीं, यदि गया हो, तो पेट पर से दाब कर फिर उसको उस जगह लाना चाहिये।

आ-चम्पेटीयर डी राइब्स नाम के एक आविष्कारक ने एक और थैली ग्रीवा चौड़ी करने के लिये निकाली है। उसके द्वारा भी ग्रीवा चौड़ी की जा सकती है। प्रथम ग्रीवा में तर्जनी और मध्यमा दोनों उंगलियों की एक पोर डालकर फिर थैली की सब हवा निकाल डाले और उसको उस चिमटे में पकड़कर कि जो इसी काम के लिये बनाया जाता है ग्रीवा में डाली हुई उंगलियों पर से भीतर सरकावे। इसके बाद जब थैली ग्रीवान्त मुख के भीतर भली भांति चली जाय तब उसमें १०० में १ के परिमाण वाला कारबोलिक एसिड का पानी भरे। यह थैली उपर्युक्त द्रव से जब अच्छी तरह चौड़ी हो जाय तब चिमटा भीतर से निकाल ले।

क-उँगली से ग्रीवा चौड़ी करना—कभी कभी उपर्युक्त [यन्त्र]लियों का उपयोग करना भी असम्भव होता है। क्योंकि [सू]तिमार्ग ग्रीवा मुख पर बिलकुल मजबूती के साथ आजाता है, और कभी कभी गर्भाशय के आकुंचन के जोर से थैली भीतर डालतेही बाहर निकल आती है। ऐसी दशा में अथवा उपर्युक्त यन्त्र जब न मिलें उस दशा में ग्रीवा चौड़ी करने में उँगलियों का ही उपयोग किया जाता है। और कुछ सूतिका-शास्त्र वेत्ताओं का यह मत भी है कि ग्रीवामुख को चौड़ा करने के जो भिन्न भिन्न यन्त्र हैं, उनकी अपेक्षा इस कार्य में उँगलियों से ही सहायता लेना विशेष अच्छा है। यह प्रयोग करते समय यदि स्त्री बाईं करवट लेटी हुई हो तो बायें हाथ का ही उपयोग करना चाहिये। परन्तु यदि वह उतानी लेटी हुई हो तो चाहे जिस हाथ का उपयोग कर सकते हैं। पहले योनिमार्ग में अँगूठे को छोड कर शेष चार उँगलियां डाले, और फिर उनमें से दो ग्रीवामुख के भीतर डाल कर उनको टेढ़ा करे और उसको कुछ नीचे खींचे। इसके बाद चारों उँगलियों के सिरे एकत्र करके उनको धीरे धीरे भीतर प्रविष्ट करने का प्रयत्न करे। इसके बाद फिर उन उँगलियों को एक दूसरे से कुछ दूर दूर करता जाय। बस,ऐसा करने से ग्रीवा-मुख अधिकाधिक चौडा होता जायगा। इसके बाद अँगूठे को भी भीतर लेजाय और पाचों उँगलियों को ग्रीवा में डालकर ग्रीवामुख को खूब चौड़ा करे। यह प्रयोग करते समय स्त्री

को क्लोरोफार्म सुंघाने की विशेष आवश्यकता तो नहीं है, परन्तु यदि सुंघादिया जाय तो उसको कष्ट न होगा।

ग्रीवाच्छेद—उपर्युक्त भिन्न भिन्न प्रयोगों से यदि ग्रीवामुख चौड़ा नहीं होता होतो ग्रीवाच्छेद किया जाता है। ग्रीवा का किनारा तीन, अथवा चार जगह लगभग आधे इंच के अन्दर काटा जाता है। इस प्रयोग के कारण कटे हुये भाग के द्वारा विषैले पदार्थों के प्रविष्ट हो जाने का भय रहता है और सिरके बाहर निकलते समय कटे हुये स्थान में ही ग्रीवा के अधिक फट जाने की भी सम्भावना रहती है और इसी लिये सहसा यह प्रयोग नहीं किया जाता।

उपर्युक्त किसी रीति से भी जब ग्रीवा चौड़ी होजाती है तब प्रसूति को पूर्ण करने के लिये चिमटे का उपयोग किया जाता है। परन्तु यह प्रयोग उसी हालत में करना उचित होगा कि जब दीर्घ प्रसूति के भयकर लक्षण दिखाई पड़ने लगेहों, इसी प्रकार ग्रीवामुख भी जब चिमटा लगाने योग्य काफी चौड़ा हो जाता है तभी वह लगाया जाता है।

ग्रीवा को चौड़ी कर लेने के बाद प्रसूति पूर्ण करने के लिये कभी कभी बच्चे को घुमा कर निकालने अथवा मस्तक बेधन करने के प्रयोगों से भी सहायता लेनी पड़ती है।

२-गर्भाशय की गर्दन में दुष्टव्रण (Cancer) केन्सर होना अथवा उसमें दाह होना इत्यादि भी कुछ कारण हैं कि

जिनसे ग्रीवा जकड़ जाती है। परन्तु इस पुस्तकमें उनका सिर्फ नामनिर्देश ही काफी होगा।

३-गर्भाशय की वक्रता- (Oblipuity of the Uterus) अब्लि क्विटी आफ दि युटेरस- गर्भाशय का अगली ओर टेढ़ा हो जाना अथवा पेट का बहुत ढीला होजाना, यही इसके कारण हैं।

ऐसे समय में गर्भाशय के बहिर्मुख की अगली ओर का भाग गर्भ के सिर और कटीर की हड्डियों के बीचमें पड़ जाता है, इसलिये वह सूज कर मोटा होजाता है। और इसी कारण गर्भाशय के मुख के विस्तृत होने में बहुत प्रतिबन्ध होता है। यह सूजा हुआ भाग गर्भोदक कोश की थैली के समान दिखाई देता है और इस कारण कभी कभी वह भूल से भी फोड़ा जाता है।

यह विकार बहुत ही सहज उपाय से अच्छा हो जाता है। प्रसववती स्त्री को उताना पड़ा रहो और फिर उसके पेट के आसपास खूब मजबूत उदरबन्ध बांधो। इससे गर्भाशय सामने हो जायगा और सदैव के स्थान पर रहेगा और फिर प्रसूति सहज में हो सकेगी।

प्रसूति की पहली अवस्था में प्रसूति में बिलम्ब लगाने वाले, गर्भ के दोष।

१-असमयमें गर्भोदक-कोश का फूटना—योनि परीक्ष करते समय उँगलियों का उपयोग जोर से करना अथवा गर्भोदक कोश का बहुत ही पतला होना इसका कारण है।

इस भेद के कारण प्रसूति में देरी लगने का यह कारण होता है कि गर्भोदक के योग से गर्भोदक-कोशों का आकार पच्चर के समान हो जाता है, और उसके कारण गर्भाशय की गर्दन विस्तृत नहीं होने पाती। क्यों कि केवल सिरके योग से उसका आकार पच्चरके समान चूंकि नहीं होता इस लिये वह गर्दन विस्तृत नहीं होसकती। और यदि गर्भोदक बह गया है तो उसकी जो दाब पडती है वह अत्यन्त जोरदार और टेढी मेढी होती है। इस कारण ग्रीवा बडे जोरसे आकुंचित होती है और विस्तृत होते समय वह धीरे धीरे विस्तृत होती है। यही नहीं बल्कि वेदनायें भी खूब होती है।

ऐसी दशा में ग्रीवा के विस्तृत होने में यदि बहुत समय लग जाता है, तो सिर और कटीर के बीच के मृदु भाग दब जाते है और इस कारण उन भागों के सडने की भी सम्भावना रहती है।

२-गर्भका अयोग्य दर्शन—इस विकार में गर्भोदक कोश पच्चर के आकार से नीचे नहीं आते और इस कारण सदैव ग्रीवा के विस्तृत होने में समय लगता है। ऐसे समय में प्रायः गर्भोदक का कोश असमय फूट जाता है और इस असमय के स्फोट से प्रसूति में और भी अधिक विलम्ब लगता है। ऐसे समय में यह मालूम करने के लिये कि दर्शन भाग कौन सा है पेट पर हाथ कर परीक्षा करनी चाहिये।

३-गर्भोदक अधिक होना और जुड़े बच्चे होना—इन विकारों के कारणभी प्रसूतिमें विलम्ब लगता है। क्योंकि ऐसी दशा में गर्भाशय बहुत तना रहता है अत एव ग्रीवा के विस्तृत होने में प्रतिबन्ध होता है।

प्रसूति की पहली अवस्था का विलम्ब इन दो बातों पर अवलम्बित रहता है। (१) गर्भोदक का कोश फूटना अथवा बिना फूटा रहना, और (२) वेगों का कष्ट अथवा अधिक जोर से आते रहना। गर्भोदक के कोश यदि फूटे न होंगे, तो भय करने का कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु, यदि वेग बराबर आते रहेंगे, और उनसे प्रसववती को विशेष कष्ट होता रहेगा तो वह शीघ्र ही शक्तिहीन हो जायगी और इसी लिये प्रसूति को शीघ्र पूर्ण करने के लिये कृत्रिम प्रयोग करने पड़ते हैं। यदि गर्भोदक के कोश फूट गये हैं तो अवश्य ही फिर कोई भी दशा क्यों न हो पूर्वकथनानुसार प्रसूति में विलम्ब

लगना खतरे की बात है। इस लिये ऐसे समय में यथोचित उपचार शीघ्र होने चाहिये।

तेरहवां भाग।

दीर्घप्रसूति।

प्रसूति की दूसरी अवस्था में प्रसूति में विलम्ब लगाने वाले प्रसव मार्ग के दोष।

(अ) मूत्राशय का पूर्ण (भरा हुआ होना)

Full Bladderफुलब्लैडर]--मूत्राशय के पूर्ण भरे हुये होने के कारण प्राय: प्रसूति में विलम्ब होता है। इस कारण की ओर विशेष ध्यान न जाने की बहुत सम्भावना रहती है। इस विकार का निदान पेट की परीक्षा करने से होता है। क्योंकि जब मूत्राशय भरा होता है तब जघन के ऊपर की ओर गर्भाशय के ऊपर से एक छोटे आकार का गोला सा अलग हाथ में लगता है। इसी प्रकार योनि परीक्षा से भी गर्भ के आगे आने वाले भाग के आगे योनि-मार्ग का अगला भाग फूला हुआ दिखाई देता है। यह भाग, और जलपेटिका या गर्भोदक कोश का आगे आया हुआ भाग दोनों देखनेमें समान ही होते है, इसलिये ऐसी दशामें इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं एक भाग को दूसरा भाग समझ कर भूल न होजाय।

इसका यह उपाय है कि मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकाला जाय क्योंकि प्रसूति की दूसरी अवस्था में आपही आप मूत्रोत्सर्जन होना बहुत कठिन होता है। ऐसे समय में मूत्रोत्सर्जक नलिका सदैव की अपेक्षा अधिक भीतर डालनी पड़ती है। इस लिये पुरुषांकी लम्बीरबरवाली मूत्रोत्सर्जक नलिकाका उपयोग करना चाहिये। प्रसंग वश गर्भ के आगे आने वाले भाग का मूत्राशय की गर्दन पर अथवा मूत्र मार्ग पर जब दबाव पड़ता है, तब मूत्रोत्सर्जन करना बहुत कठिन होता है।

(अ) बद्धकोष्ठता (Loaded Rectum लोडेड रेकटम) प्रसूति में बिलम्ब लगाने वाले कारणों में से यह एक मुख्य कारण है जो सदैव होता है। यह विकार शीघ्र मालूम हो जाना विशेष महत्व की बात है। इसके निदान और उपाय पीछे बतलाये हैं।

(इ) योनि और त्रिटप की अकड़ (Regidity of Vagina & Perinium रेजिडिटी आफ-वजायना एन्ड पेरीनियम) प्रथम प्रसूति में यह विकार प्रायः होता है। इसके लक्षण भी ग्रीवा की अकड़ के समान ही होते हैं। जिन स्त्रियों के बहुत से बच्चे हो चुकते हैं, उनके पहिली दीर्घ प्रसूतियों के कारण व्रण होजाते हैं और इनसे योनिमार्ग अकड़ जाता है इस विकार पर निम्न लिखित उपायों का विशेष उपयोग हो सकता है। योनिमार्ग में २० में १ के परिमाण वाला कारबालिक

तेल लगाना, विटप पर जन्तुनाशक औषधि के गरम पानी में भिगोई हुई कपड़े की घड़ियां रखना और जितना धीरज धरा जा सके उतना धरना।

बारम्बार योनि-परीक्षा न करनी चाहिये, क्योंकि इसके कारण योनि-सन्ताप होता है और इसकी अकड़ भी कम नहीं होती।

जोर के वेग और विटप की अकड़, ये दोनों बातें यदि एक दम ही होती हैं, तो योनिमार्ग के पूर्ण तथा विस्तृत होने से पहले ही गर्भ बाहर निकल आता है और इस से विटप एक दम फट जाता है। यदि ऐसा हो तो फटी हुई जगह शीघ्र ही सीं देनी चाहिये।

(ई) कटीर और योनिमार्ग की ग्रन्थियां (Tumaurs in the pelvis & Vagina ट्यूमरस इन् दि पेल्विस एन्ड वजायना) ये ग्रन्थियां बहुत प्रकार की होती हैं। परन्तु इस पुस्तक में सिर्फ दो का ही नामनिर्देश कर देना पर्याप्त होगा। (१) अन्तःफलग्रन्थियां (Overian Tumaurs) ओवेरियन ट्यूमर्स और (२) योनिमार्ग की रक्त ग्रन्थियां (Vaginal Himatoma वजायनल हिमाटोमा।)

१-अन्तःफल-ग्रन्थियां—ये छोटी-होती हैं। ये चूंकि गर्भ के आगे और नीचे आजाती हैं इसलिये प्रसूति में विलम्ब

लगता है। क्योंकि इसके आगे आजाने से गर्भ की गति कुंठित हो जाती है। मूत्राशय और गुदकांड के रिक्त करने पर यदि योनिमार्ग में इस प्रकार की ग्रन्थियां मिलती हैं तो वे प्राय अन्त फल ग्रन्थियाँ ही रहती हैं। इनका निदान निश्चित होजाने पर इन को शस्त्र प्रयोग से निकाल डालना चाहिये।

२ योनिमार्ग की रक्त ग्रन्थियां—योनिमार्ग की धोघात की रक्त वाहिनियाँ फूट कर वहाँ रक्तसंचित होजाता है और इसी से ग्रन्थिया उत्पन्न होजाती हैं। अनेक बार ये ग्रन्थियां बहुत बड़ी होजाती हैं, और योनिमार्ग को बन्द करके प्रसूति में बाधा डालती हैं। कभी कभी ग्रन्थियों का निचलाभाग बाह्य-जननेन्द्रियों के मुखपर आजाता है। उस का रंग कुछ कालापन लिये हुये बैंजनी होता है। इस रंग से ये ग्रन्थियां पहचानी जा सकती हैं। प्राय इन ग्रन्थियों के कारण प्रसूति में कुछ विलम्ब लगता है। यही नहीं, बल्कि कभी कभी बाहर आने वाले गर्भ के जोर से ये फूट जाती हैं, और उस दशा में भयकर रक्त-स्राव होने की बहुत सम्भावना रहती है। इस विकार पर भी शस्त्र प्रयोग के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

(3)कटीर वैरूप्य(Deformed pelvis डिफार्मड पेलविस) यह विरूपता बहुत प्रकार की होती है और बहुत प्रकार से कष्टदायक होती है। जर्मनी फ्रांस इत्यादि देशों की अपेक्षा

इंगलैंड और सौभाग्य से उसकी अपेक्षा भी भारत में यह विरूपता कम परिमाण में देखी जाती है। फिर भी दाई को यह मालूम रहना चाहिये कि क्या कटीर विरूप होगया है और यदि हो गया है तो उसे किस प्रकार पहिचाना जाय।

इस विरूपता के कारण भी सदैव के प्रसवमार्ग में बाधा उपस्थित होती हैं। इसके कारण-कटीर का आकार बदल जाता है अर्थात् प्रवेशमार्ग की चुलाई और निर्गम मार्ग के व्यासों में अन्तर पड़ जाता है।

कटीर अथवा पीठ की रीढ़ की हड्डियों के रोग ही इस विरूपता के आने के कारण है।

इस विकार का सर्व साधारण कारण छुटपन का अस्थि कौटिल्य (Reckets रिकेट्स) रोग है। इससे हड्डियां नरम हो जाती हैं और श्रम के कारण तथा स्नायुओं के ज़ोर से और उठते बैठते तथा चलते समय शरीर के वज़न से हड्डियां टेढ़ी मेढ़ी होती रहती हैं।

१—अस्थिकौटिल्य कटीर वैरूप्य के बहुत प्रकारों का मुख्य कारण है तथापि इसके एक प्रकार को (Rickety Pelvis) अस्थिकौटिल्य जन्य कटीर वैरूप्य कहते हैं।

इस प्रकार में प्रवेशमार्ग का पूर्व-पश्चिम अथवा सामने का व्यास कम हो जाता है। त्रिकास्थि के कूबड़ का अधनास्थि सन्धि की ओर आगे चला जाना ही इसका कारण है।

प्रवेशमार्ग के अन्य व्यास और पुलाई तथा निर्गममार्ग के सब व्यास बिलकुल ही कम नहीं होते। किंतु इसके विरुद्ध कुछ व्यास कुछ बढ़े हुये होते हैं। विशेष कर आड़े व्यास बढ़े हुए होते हैं। इन आड़े व्यासों के बढ़ जाने के कारण त्रिकास्थि की कमान सदैव की अपेक्षा अधिक चौड़ी होती है। सम्पूर्ण कटीर भी सपाट दिखाई देता है और इसी कारण उसको सपाट कटीर (Flat Pelvis फ्लाट पेल्विस) का दूसरा नाम भी दिया गया है। कटीर के इस प्रकार में प्रसूति होने की यान्त्रिक रीति भी बहुत ही बदली हुई रहती है। क्योंकि गर्भ का सिर प्रवेश मार्ग से नीचे जाते हुये आड़े व्यासोंसे नमनकी स्थिति में न रहते हुए शरणस्थिति में नीचे उतरता है। इस कारण पूर्वोत्प्लव और पश्चिमोत्प्लव दोनों एक ही रेखा में आजाते हैं, अथवा कभी कभी पश्चिमोत्प्लव की अपेक्षा पूर्वोत्प्लव नीचे आजाता है। प्रवेश मार्ग से जब सिर नीचे चला जाता है, तब प्रसूति में बाधा बिलकुल नहीं होती। क्योंकि कटीर का आकार निचली और बिलकुल कम नहीं हुआ होता।

इस प्रकार के कटीरका निदान योनि परीक्षा से सहज ही किया जा सकता है गर्भ का सिर बिलकुल ऊपर सत्यकटीर से बाहर और प्रवेश मार्ग के आड़े व्यास में रहता है। पूर्वोत्प्लव सदैव की अपेक्षा नीचे पाया जाता है और उससे ऐसा जान पड़ता है कि मानो सिर प्रसरण को प्राप्त हो रहा है।

अतिरिक्त त्रिकास्थि का कूबड़ भी सर्वत्र की अपेक्षा अधिक सहज रीति से उंगली में लगता है।

बाह्यमाप से भी दोनों ओर की नितम्बास्थियों के ऊपर कगूरों के बीच का अन्तर जो दोनों ओर की नितम्बास्थियों के कटकाग्रों के बीच के अन्तर की अपेक्षा सदैव एक इंच अधिक रहता है, सो उक्त दशा में वैसा न रहते हुए सपाट कटीर में ये दोनों अन्तर समान ही रहते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु कभी कभी कगूरे के बीच का अंतर कटकाग्रोंके बीच के अन्तर की अपेक्षा भी कम रहता है।

२—लघु कटीर वैरूप्य Justominor Pelvis

जस्टोमायनोर पेलविस) इस प्रकारमें कटीरकी वृद्धि में चूंकि रुकावट होती है, अतएव वह छोटा हो जाता है। प्रवेशमार्ग की पुलाई के और निर्गममार्ग के व्यास के परस्पर परिमाण में बिल्कुल ही अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु ये सभी छोटे होजाया करते हैं।

इस प्रकार का कटीर छोटे डील डौल की स्त्रियों में देखा जाता है। नितम्ब चूंकि बिल्कुल कम चौड़े होते हैं, इसलिये लघु कटीर सपाट कटीर की अपेक्षा बिल्कुल निराला रहता है। चौड़ा कटीर चौड़े डील-डौल की अथवा भली भांति बढ़ी हुई स्त्रियों में देखा जाता है। कटीर जब इस प्रकार का होता है, तब उसकी प्रसूति की यंत्र शक्ति सपाट कटीर की यंत्र

शक्ति से बिल्कुल विरुद्ध होती है। अर्थात् गर्भ का सिर बिल्कुल नमन की स्थिति में आकर कटीर के प्रवेशमार्ग से नीचे उतरता है।

इसका निदान करते समय बच्चे का सिर ऊपर पाया जाता है। वह नमन की स्थिति में बहुत ही झुका हुआ होता है। पश्चिमोत्प्लव प्रवेशमार्ग के बिल्कुल मध्य भाग में सहज ही मिल जाता है, परन्तु पूर्वोत्प्लव हाथ में बिल्कुल नहीं लगता। प्रवेशमार्ग से आगे आजाने पर भी बच्चे का सिर कटीर से पूर्ण तथा बाहर आते समय बहुत कष्ट होता है। क्योंकि पुलाई और निर्गममार्ग ये दोनों भी इस प्रकार में बिल्कुल छोटे रहते हैं।

३ मृदु कटीर (Malacostion Pelvis मेलाकोस्टियन पेल्विस) इस विरूपता के आने का कारण अस्थिमार्दव (Asteomalacia आस्टियोमेलेशिया) रोग है। इस रोग में भी अस्थिकौटिल्य की भांति हड्डियां नरम होजाती हैं। परन्तु चूंकि इस विकार में बड़े होने पर हड्डियां नरम होती हैं, इस लिये उन हड्डियों पर भिन्न भिन्न हलचलों के कारण दबाव पड़ता है और कटीर की हड्डियों में विशेष विरूपता आती है।

सपाट कटीर के विरुद्ध इस प्रकार में आड़े व्यास छोटे हो जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि स्त्री के जड़े

समय जांघों की हड्डियों का दबाव नरम-हड्डियों पर दोनों ओर से पड़ता है। इस कारण कटीर के दोनों बाजू एक दूसरे पर दबते हैं। इस कारण अधिक भयकर दशा में कटीर के दोनों बाजुओं का अन्तर क्रमशः बहुत कम होकर एक इंच तक आजाता है और कटीर जघनास्थिसन्धि की नीचे की कमान बिल्कुल गायब हो जाती है।

प्रवेश मार्ग और पुलाईके पूर्व पश्चिम व्यास इस बिकार में कम नहीं होते। परन्तु निर्गममार्ग का पूर्व पश्चिम व्यास अवश्य ही त्रिकास्थि के झुक जाने के कारण बहुत कम हो जाता है। इस त्रिकास्थि के झुक जाने के कारण गुदास्थि का सिरा जघनास्थि के अधिक समीप आ जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह सहज ही मालूम होजायगा कि कटीर वैरूप्य का यह प्रकार कितना भयकर है और ऐसे कटीर से गर्भ के बाहर निकलने में कितनी कठिनाई पड़ती है।

४—पुंकटीर (Mosculine Pelvis) मैस्क्यूलाइन पेलविस

जब स्त्रियों के कटीर का आकार पुरुषों के कटीर के समान होता है, तब उसको पुकटीर कहते हैं। इस बिकार में प्रवेश मार्ग के व्यास में अन्तर नहीं पड़ता। परतु यह कटीर चूंकि अधिक गहरा होता है इस लिये आसनास्थि के सिरे

बिल्कुल निकट आ जाते हैं, और इस कारण निर्गममार्ग का आड़ा व्यास छोटा हो जाता है। त्रिकास्थि चूंकि कम झुकी हुई होती है, अतएव पुलाई का पूर्व पश्चिम व्यास कम हो जाता है और कटीर की कमान सदैव की अपेक्षा कम चौड़ी रहती है। इससे यह मालूम होजायगा कि प्रसूति की सदैव की यत्र शक्ति को पुलाई में और निर्गम मार्ग में ही रुकावट होती है और प्रवेश मार्ग में प्रसूति को किसी प्रकार की बाधा नहीं होती।

प्रसूति में विलम्ब उपस्थित करने वाले कटीर वैरूप्य के बहुत से अन्य प्रकार भी हैं। उनका इस जगह थोड़े ही में वर्णन किया गया है। ये प्रकार पीठ की रीढ़ के भिन्न भिन्न रोगों के कारण होने वाली विरूपता से होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी भिन्न भिन्न रोगों के कारण उक्त प्रकार उत्पन्न होते हैं। इन रोगों के कारण कटीर की वृद्धि में प्रतिबन्ध होता है और इसी कारण नाना भांति के कटीर वैरूप्य विषयक प्रकार उत्पन्न होते हैं।

पीठ की रीढ़ की हड्डियों के रोग से होने वाली विरूपता के प्रकारों को निम्न लिखित नाम लिखे जाते हैं –

(१) कटिमणि पूर्व नमन (Lordosis लार्डोसिस)
(२) मणिस्तम्भकुक्षिप्रतिनमन(Scoliosis स्कोलियोसिस)
(३) कटिमणि पश्चान्नमन) Kyphosis कायफोसिस)
(४) कटिमणि त्रिकास्थिसन्धिविकार) Spondilolisthesis स्पॉन्डिलो लिस्थेसिस)।

ही होती है। परन्तु कभी कभी भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयोग करके (जैसे:-चिमटा लगाना, बच्चा घुमाना, असमय गर्भपात कराना इत्यादि) प्रसूति करानी पड़ती है।

जब यह विरूपता अधिक परिमाण में होती है तब तो मस्तक वेध का प्रयोग करना पडता है, और यदि विरूपता बहुत ही अधिक होती है, तो प्रसवमार्ग से प्रसूति का होना ही असम्भव होजाता है। ऐसी दशा में पेट चीर कर गर्भ को निकालने की आवश्यकता पडती है, इस प्रयोग को उदरच्छेदन कहते हैं।

उपर्युक्त भिन्न भिन्न कटीर वैरूप्यों का निदान करनेके लिये कटीर के भिन्न भिन्नव्यास नापने पड़ते हैं। उनको नापने के लिये कटीर मापक (Pelvimeter पेलविमेटर) नामक यंत्र भी रहता है। उस यंत्र के द्वारा कटीर के भिन्न भिन्न भागों की माप ली जा सकती है।

कटीर की बाह्यमापें-इन मापों को लेने के लिये स्त्री को उताना पड़ने देना चाहिये, और उसके शरीर पर बारीक कपड़ा डालना चाहिये, और फिर कटीर-मापक यंत्र से नापना चाहिये। नितम्बास्थियों के अगले ऊपर के सिरों के बीच का अन्तर लगभग दस इंच रहता है, और नितम्बास्थियों के ऊपर के कंगूरों के बीच का अन्तर अधिक से अधिक साढ़े दस इंच रहता है। इसमें यदि फर्क दिखाई पड़े,

तो समर्भ लेना चाहिये कि कटीर में कहीं न कहीं विकृतता अवश्य है।

बाहर का पूर्व पश्चिम व्यास मापने के लिये स्त्री को करवट से लिटाना चाहिये, और यंत्र का एक सिरा जघनास्थि सन्धि पर रख कर दूसरा कमर के मनके के पिछले सिरे पर रखना चाहिये। इन दो स्थानों के बीच का अन्तर साढ़े सात इंच रहता है और इसी से प्राय यह निकालना होता है कि भीतर का सच्चा पूर्व व पश्चिम व्यास कितना होता है। इसमें से मृदु भागोंकी और हड्डियों की मुटाई अनुमान से घटानी पड़ती है। परन्तु मुटाई न्यूनाधिक भी हो सकती है। फिर भी यदि साढ़े सात इंच से ऊपर यह अन्तर हो तो प्राय यह समझना चाहिये कि कटीर का आकुंचन नहीं हुआ। परन्तु यह अंतर यदि सात इंच से कम हो, तो यह समझना चाहिये कि प्राय कटीर किसी न किसी परिमाण में अवश्य आकुंचित हुआ है।

प्रवेश मार्ग का पूर्व पश्चिम व्यास लगभग चार इंच रहता है, और वह कटीर मापक यन्त्र से नापा जा सकता है। नापते समय उसका एक सिरा जघनास्थि सन्धि की कमान के सिरे पर भीतरी ओर से लगा कर दूसरा सिरा त्रिकास्थि के सिरे पर लगाना चाहिये। प्रवेश मार्ग का आड़ा व्यास दो ओर के आलनास्थियों के कंगूरों के बीच से नापना चाहिये। यह लगभग सवाचार इंच होता है।

इन व्यासों के मापने के अतिरिक्त बाह्य परीक्षा से कटीर का सम्पूर्ण स्वरूप भी निश्चित कर रखना चाहिये।

भीतरी व्यासों की मापें—खास कर, जिसे सच्चा पूर्व पश्चिम व्यास कहते हैं, उसको मापने की तरकीब मालूम होनी चाहिये। यह व्यास त्रिकास्थि के ऊंचे भाग से लेकर जघनास्थि सन्धि के भीतरी ओर के सब से समीप का बिन्दु है। यह माप लेने के लिये योनिमार्ग में हाथ की चारों उंगलियां, जितनी आ सकें उतनी पीछे और ऊपर की तरफ से त्रिकास्थि के उच्च भाग तक डालनी चाहिये। इस प्रकार माप लेने से जितना अन्तर प्राप्त हो, उसमें से लगभग २।२ इञ्च घटाने से जो शेष रहे, वही सच्चा पूर्व पश्चिम व्यास है, इसी को ट्रूकाञ्जुगेट (True Conjugate) कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि त्रिकास्थि का उच्च भाग जघनास्थिसन्धि के ठीक ठीक सामने है अथवा नहीं, और वह उच्च भाग कटीर की पुताई में काफी तौर से आगे आया हुआ है या नहीं। इसके सिवाय यह भी देखना पड़ता है कि त्रिकास्थि की गहरी सी जगह में बहुत सी खाली जगह है या नहीं, और त्रिकास्थि के उच्च भाग के दोनों ओर समान स्थान है, अथवा नहीं।

साध्यासाध्य विचार—कटीर यदि बहुत अधिक परिमाण में आकुंचित हो जाता है तो प्रसूति होते समय बच्चा

य मर जाता है, और उस दशा में प्रसववती के प्राणों का बहुत संदेह रहता है। इससे अवश्य ही यह स्पष्ट है कि दे पेट को चीर कर गर्भ बाहर निकाला जाता है, तो बच्चा य जीवित रहता है। कम परिमाण में भी यदि कटीर कुंचित होता है, तो भी दीर्घ प्रसूति होने के कारण सववती शिथिल पड़ जाती है, अथवा सारा गर्भोदक गिर ने के कारण गर्भाशय में हवा प्रवेश कर जाती है अथवा तव मार्ग के मृदु भागों में कोई कष्ट उपस्थित हो जाता है, र इससे प्रसवजनी के प्राणों का भय रहता है। इसी कार बच्चे के भी बाहर निकलने में चूंकि बहुत विलम्ब लग ता है, इस कारण प्राणों को भी भय रहता है।

व्यवस्था और उपचार—इस विकार की व्यवस्था के पय में भिन्न भिन्न चार भाग किये जा सकते हैं।

पहिला भाग—इस प्रकार में प्रसूति के योग्य समय में स्वाभाविक शक्ति से चिमटे से अथवा बच्चे को घुमाने के योग से जीवित बच्चा बाहर निकल सकता है।

दूसरा भाग—इस प्रकार में अकालिक कृत्रिम प्रसूति रा कर जीवित रहने योग्य और जीवित बच्चा पैदा कर कते हैं। परन्तु प्रसूति के पूर्ण काल में अवश्य ही उसको सा पैदा नहीं कर सकते।

तीसरा भाग—इस प्रकार में कटीर से जीवित रहने

योग्य बच्चा किसी हालत में भी बाहर नहीं निकल सकता, परन्तु उसके शरीर का भाग काट कर, गर्भिणी की बहुत कुछ रक्षा करते हुए प्रसूति कराई जा सकती है।

चौथा भाग—इस प्रकार में प्रसवमार्ग से किसी रीति से भी प्रसूति नहीं कराई जा सकती है, तो वह रीति, पेट चीर कर गर्भ बाहर निकालने की अपेक्षा कहीं अधिक भयानक होगी।

कटीर का पूर्व पश्चिम व्यास यदि साढ़े तीन इंच तक हो, तो ऐसा समझना चाहिये कि प्राय स्वाभाविक रीति से ही से प्रसूति होगी। इस लिये, जहां तक हो सके, जब तक ग्रीवा का मुख पूर्णतया विस्तृत न हो जाय, गर्भोदक कोश फूटने न देना चाहिये। स्त्री को उताना सुला रखना चाहिये, और उठने न देना चाहिये। जब वेग आवे, तब बाहर से, पेट पर से गर्भाशय को दाबना चाहिये, और बहुत देर तक आप ही आप प्रसूति होने की प्रतीक्षा करनी चाहिये। परन्तु अरगट के समान गर्भाशय को सतत आकुञ्चित करने वाली औषधि न देनी चाहिये। यदि वेग कम होने लगे, अथवा प्रसववती के शिथिल होने के चिन्ह दिखाई देने लगे, तो प्रसूति में मदद करनी चाहिये। गर्भ के हृदय की धड़कन सुननी चाहिये, और वह यदि धीमी सुनाई देती हो, तो समझना चाहिये कि गर्भ शिथिल होने लगा है। ऐसी दशा में प्रसूति के शीघ्र होने में मदद करनी चाहिये। यदि यह ज्ञान

पड़े कि गर्भोदक कोश फूटने के बहुत देर बाद भी गर्भ का सिर नीचे नहीं उतरता अथवा गर्भाशय के बहुत जोर से आकुंचित होने पर भी यदि सिर नीचे न आता हो, और जोरदार आकुंचन के कारण गर्भाशय के फटने का भय हो तो भी प्रसूति के शीघ्र होने में सहायता करनी चाहिये।

पूर्व पश्चिम व्यास यदि साढ़ेतीन से तीन इंच तक हो, तो भी कुछ काल तक आप ही आप प्रसूति होने की प्रतीक्षा करके तब फिर यदि आवश्यकता जान पड़े, तो सहायता करनी चाहिये।

ऐसे समय में प्रसूति के शीघ्र होने में सहायता करने का मतलब यही है कि चिमटे के द्वारा अथवा बच्चे को घुमा कर प्रसूति कराई जाय। इन प्रकारों में से कौन सा प्रकार किया जाय इस विषय में बहुत मतभेद है। जर्मनी और अमेरिका में गर्भ को घुमा कर बाहर निकालते हैं। इंगलैंड में चिमटे का ही उपयोग विशेष श्रेयस्कर समझा जाता है।

चिमटे से खींचते हुए बहुतेरा जोर लगाया जा सकता है, और धीरे धीरे सिर को खींचने से भी काम चल जाता है। परन्तु पहले बच्चे को घुमाने का प्रयोग करने के बाद यदि चिमटे से शिर खींचना हो तो धीरे धीरे न खींच कर एकदम खींच लेना चाहिये। बच्चे को घुमा कर खींचने से यदि पीछे से बाहर आने वाला सिर कहीं अटक जाता है, तो बहुत

कष्ट होता है। अच्छा, यदि बच्चे का शरीर पकड़ कर उसको खींचा जाय, तो सिर की नमनावस्था चली जाती है, और वह पिछली ओर झुक कर पीठ में लग जाता है। कटीर में यदि एक ओर स्थान अधिक होगा, तो चिमटे की अपेक्षा बच्चे को घुमा कर खींचने में सुभीता रहेगा, और यदि सिर बहुतेरा नीचे आगया होगा, तो चिमटे का ही उपयोग करना प्रशस्त होगा। परन्तु यदि प्रसववती बिलकुल शिथिल हो गई हो, और यह मालम होता हो कि जितनी जल्दी छुटकारा किया जा सके करना चाहिये, तो बच्चे को घुमा कर ही निकालना ठीक होगा। वास्तव में ऐसा किया जाता है कि पहले चिमटा लगा कर साधारण जोर से बच्चे को खींच कर देखते हैं, और यदि इससे बच्चा बाहर नहीं आता, तो यदि जघनास्थि सन्धि घच्छेदन-प्रयोग करने योग्य परिस्थिति होती है, तो इसी प्रयोग को करते हैं। अन्य था बच्चे को घुमा कर खींचने का प्रयोग करते हैं। बच्चे को घुमा कर निकालने का प्रयोग तभी तक हो सकता है कि जब तक बच्चा जीवित है। इस लिये यदि बच्चा मरा हुआ होता हो तो मस्तकवेध का ही प्रयोग करते हैं।

पूर्व पश्चिम व्यास यदि पौनेतीन इंच होता है, अथवा तीन इंच तक होने पर यदि सिर के बड़े होने का अनुमान होता है, तो बच्चे को घुमाने का प्रयोग नहीं किया जाता। इसी प्रकार पूर्व पश्चिम व्यास यदि सवातीन इंच से कम

हो, तो बच्चे को चिमटे से खींच कर निकालने का प्रयत्न बहुत देर तक न करते रहना चाहिये। यह व्यास यदि पौने तीन इंच से कम होता है, तो मस्तकवेध अथवा उदरच्छेद का कोई न कोई एक प्रयोग करके प्रसूति कराई जाती है। यह यदि पौने तीन इंच से अधिक होता है, और चिमटे से प्रसूति नहीं होती, तो जघनास्थिसन्धिच्छेद का प्रयोग किया जाता है।

बच्चे को घुमा कर निकालने के बाद पीछे से आने वाले सिर के बाहर निकलने में यदि कठिनाई पड़ने लगे, तो बच्चे के पैर पकड़ कर उनको अगली दिशा से, अर्थात् जिस ओर बच्चे का शिर पृष्ठ है उस दिशा से खींचना चाहिये, इससे सिर का नमन हो जायगा, और बच्चे के ऊपर के जबड़े पर दूसरे हाथ की उंगली रख कर उसको धीरे धीरे नीचे दबाना चाहिये, इससे नमन में विशेष सहायता होगी, और सिर सहज ही बाहर निकल आवेगा।

जघनास्थि—सन्धिच्छेद—यह शस्त्र प्रयोग साधारणतयो उसी समय किया जाता है, जब कि, पूर्व पश्चिम व्यास पौने तीन इंच से अधिक होता है, और चिमटे से बच्चा बाहर नहीं निकल सकता।

मस्तक-वेध—यह शस्त्र प्रयोग साधारणतया, पूर्वपश्चिम व्यास के अत्यन्त छोटे होने की ही दशा में किया जाता है। माता के लिये इस प्रयोग से कुछ भी भय नहीं रहता।

उदरच्छेद—पूर्व पश्चिम व्यास यदि ढाई इञ्च अथवा उ
से भी न्यून होता है, और इसी प्रकार यदि प्रसूतिका आरम्भ
हुये बहुत देर नहीं हुई है, तो उदरच्छेदका प्रयोग करते हैं, यं
प्रयोग होशियार और अनुभवी मनुष्य को ही करना चाहिये
यह प्रयोग अन्य सर्व प्रयोगों के पहिले करना चाहिये
परन्तु यदि चिमटे से प्रसूति कराने के प्रयत्न निष्फल हुये हैं
अथवा प्रसूति में विलम्ब लग जाने के कारण स्त्री अत्य
शिथिल हो गई हो, तो फिर, चाहे कटीर का पूर्व पश्चि
व्यास दो से सवा दो इञ्च तक हो, तो भी मस्तक-वेध क
ही प्रयोग करते हैं।

असमय में प्रसूति कराना—इस का कारण यह है कि
गर्भ यदि कम दिनों का होता है, तो उसका सिर छोटा
होता है, और उसके सिर की हड्डियां मुलायम और दब
जाने योग्य होती हैं, इस लिये पहिले की प्रसूति में यदि
कटीर-वैरूप्य के कारण मस्तक-वेध का प्रयोग करना पड़ा
हो, अथवा कटीर से प्रसूति होते हुये बहुत देर लगने के कारण
चिमटे से अथवा घुमा कर निकाला हुआ बच्चा मृत पैदा
हुआ है, तो पूर्णकाल की प्रसूति होने के पहिले अकालिक
प्रसूति कराना ही उचित होगा। हां यदि स्त्री पहली ही बार
गर्भवती हुई है, और पूर्व पश्चिम व्यास साढ़ेतीन इंच अथवा
इससे अधिक है, तो उचित समय पर प्रसूति होने तक
ठहरना चाहिये।

यदि पूर्व पश्चिम व्यास पौने तीन इञ्च से कम है, तो असमय में प्रसूति कराने पर भी बच्चे का जीवित रहना सम्भव नहीं है। इस लिये जब तक पूरे दिन नहीं हो आते, उस स्त्री को वैसा ही रहने देते हैं। और प्रसूति के समय यदि सब तरह का सुभीता होता है, तो उदरच्छेद का शस्त्र प्रयोग करते हैं।

जैसा कि नीचे बतलाया जाता है, तदनुसार, बच्चे के जीवित रहने के लिये, उचित समय पर अकालिक प्रसूति करानी चाहिये --

पूर्व पश्चिम व्यास	३॥ इञ्च	हो, तो	३६ वें	अठवाड़े के अन्त में
,,	३। इञ्च	,,	३४ वें	,,
,,	३ इञ्च	,,	३२ वें	,,
,,	२॥। इञ्च	,,	३१ वें	,,
,,	२½ इञ्च	,,	३० वें	,,

गर्भपात कराना—जब कि पूर्व पश्चिम व्यास इतना थोड़ा होता है, कि जीवित बच्चा किसी हालत में भी पैदा नहीं हो सकता, अथवा स्वाभाविक प्रसूति के समय मस्तक-वेध के शस्त्र प्रयोग से प्रसववती को अधिक कष्ट होने की सम्भावना रहती है, तब उस स्त्री का या तो दसवें अठवाड़े के पहले गर्भपात कराना चाहिये। अथवा दिन पूरे होजानेपर उदरच्छेद का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु यदि गर्भपात न

शीघ्र ही छुटकारा हो जाता है। इस विकार में कभी, गर्भाशय के भी फटने का बहुत भय रहता है।

२—सिर के अतिरिक्त अन्य भागों का बड़ा हो

सिर के अतिरिक्त यदि गर्भ के अन्य कोई भाग भी सूज जाते तो भी प्रसूति में कठिनाई उपस्थित होती है। जैसे छाती, पेट में भिन्न भिन्न प्रकार की गांठें पड़ जाता हैं, पेट अन्तड़ियों में वायु संचित हो जाती है, अथवा मूत्र ही खूब भर जाता है। इन कारणों से भी प्रसूति में विलं लग सकता है। परन्तु ये कारण बहुधा बहुतही कम देखे है, अतएव इनके विषय में यहां पर विशेष विवेचन करने आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

३—नाल का छोटा होना—कभी कभी सच मुच नाल छोटा होता है, अथवा कभी कभी वह गर्भ के आ पास या विशेष कर गर्दन के आस पास लिपट जाता है, इ कारण भी छोटा हो जाता है। अतएव प्रसूति में विलम्ब लग जाता है।

४—मस्तकदर्शन की पश्चाच्छिरःपृष्ठस्थिति—सिर पृ के पीछे रहने पर भी प्रसूति में विलम्ब होता है।

५—गर्भ का अयोग्य दर्शन—जब सिर के अतिरिक्त गर्भ का अन्य कोई भाग दिखाई देता है, तब उस दशा मे

... को अयोग्य दर्शन कहते हैं। इस का परिमाण लग भग ... में सैकड़ा होता है। इस के तीन प्रकार माने जा सकते हैं।

(अ) मुखदर्शन।

(ब) गुददर्शन (इस में नितम्बदर्शन और पाददर्शन के भेद हैं)

(क) तिरश्चीनजनन। इस में स्कंधदर्शन, कूर्परदर्शन और हस्तदर्शन के भेद पाये जाते हैं।

कदाचित् यह कहना ठीक न होगा कि, प्रत्येक जाति के अयोग्य दर्शन के कारण प्रसूति में विलम्ब लगता है, क्योंकि कभी कभी ऐसी दशा में सदैव की अपेक्षा भी शीघ्र छुटकारा हो जाया करता है। परन्तु इस को अपवाद ही समझना चाहिये। योनि परीक्षा में यदि सिर का कठोर भाग हमारे हाथ में न लगे, गर्भोदककोश का आकार यदि सदैव की भांति पत्थर के समान न हो, और स्पर्शपरीक्षा में कटीर के किनारे के पास यदि गर्भ का सिर न लगता हो, तो अयोग्य दर्शन की आशंका की जासकती है। ऐसी दशा में, जहां तक हो सके, बहुत शीघ्र प्रसूति के ठीक ठीक होने में सहायता करनी चाहिये। ऐसे समय में यदि कुछ भी रुकावट पड़ जायगी, तो उसका बहुत बड़ा भयंकर परिणाम होगा। उस दशा में कृत्रिम उपायों से ही प्रसूति को पूर्ण करना पड़ेगा।

(अ) मुखदर्शन—Face Presentation फेस प्रेजेन्टेशन) इसका परिमाण लगभग २५० में १ होता है।

को अधिक भय रहता है। क्योंकि चेहरे के भाग सम विषम और कठोर होने के कारण प्रसवमार्ग के मृदु भागों पर भार पड़ता है। इस कारण उन भागों के सड़ने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार अकसर ठुड्डी भी चक्रगति से आगे नहीं आती। और यदि ऐसा होता है, तो फिर कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। बच्चे को भी, उस की गर्दन अत्यन्त तन जाने के कारण, बहुत खतरा रहता है। मुखदर्शन में १३ फी सदी बच्चे मरे हुये उपजते हैं।

व्यवस्था—योनि परीक्षा करते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि गर्भ की आखों को हानि न पहुंचने पावे। प्रायः प्रसूति आप ही आप पूरी हो जाती है। इस लिये जहां तक हो सके, जान बूझ कर कोई कृत्रिम उपाय न करना चाहिये। इस बात का निश्चय करने के लिये, कि ठुड्डी की चक्रगति आगे हो रही है या नहीं, बारम्बार परीक्षा कर के देखते रहना चाहिये। यदि यह गति जारी हो, तो समझना चाहिये कि सब ठीक है। परन्तु यदि ठुड्डी चक्रगति से आगे न आती हो, तो यह समझ लेना चाहिये कि प्रसूति के पूर्ण होने में बहुत कष्ट होगा। प्रायः प्रसूति होते ही पहले पहल बच्चा बिलकुल विद्रूप दिखाई देता है। अर्थात् उसका सिर लम्बा सा और सपाट होता है, उसका मुंह प्रायः बहुत सड़ा सूजा सा दिखाई देता है। ऐसी ऐसी बातें गर्भवती के

घर वालों को पहले ही से बतला रखनी चाहिये। परन्तु वह विद्रूपता दो तीन दिन बाद आप ही आप दूर हो जाती है।

इस दर्शन में यदि प्रसूति में विलम्ब होने लगता है, तो चिमटा लगा कर, बच्चे को घुमाने का प्रयोग कर के, जघनास्थिसन्धि के काटने का प्रयोग करके अथवा मस्तक-विन्धन का प्रयोग कर के भी कभी कभी प्रसूति करानी पड़ती है।

(ख) गुददर्शन— Breech presentation ब्रीच प्रेजेन्टेशन) इसका परिमाण पचास में एक रहता है। सम्पूर्ण अयोग्य दर्शनों में इसी का परिमाण अधिक रहता है।

अपूर्ण काल की प्रसूति में अथवा जुड़े बच्चों की प्रसूति के समय यह दर्शन प्राय , अन्य किसी कारण के न होते हुये भी, होता है।

शरीर वैरूप्य, गर्भोदक का अधिक होना, इत्यादि इस दर्शन के भिन्न भिन्न कारण बतलाये जाते हैं। परन्तु उनका कोई विशेष महत्व नहीं।

मस्तक दर्शन और मुखदर्शन की भांति नितम्बदर्शन के भी चार प्रकार होते हैं। उन का नाम-निर्देश त्रिकास्थि की परिस्थितिपर से किया जाता है। उनका क्रमभी मस्तक-दर्शन के क्रम के समान ही है।

(१) लेफ्ट सेक्रो एण्टीरियर Leaft Sekro Anterior

(२) राइट सेक्रो एण्टीरियर Right SekroArterior

रहती है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि, कूले जब आगे आजाते हैं, तब गर्भ का सिर बाहर निकलते समय, सिर और कटीर के बीच में नाल कुचल जाता है, और इस कारण गर्भ के रुधिराभिसरण के बन्द होजाने की सम्भावना रहती है।

व्यवस्था—कूलों के आगे आजाने पर, जहां तक हो सके स्वाभाभाविक रीति से ही प्रसूति होने देना चाहिये। इसके बाद नाल का लपेटन धीरे धीरे नीचे खींचना चाहिये। इस से नाल बच्चे के नीचे आजाने के कारण अधिक तनेगा भी नहीं, और यह भी सहज ही में मालूम होजायगा कि नाल की नाडी कैसी चल रही है। नाल की नाडी यदि बहुत ही कमजोर मालूम होती हो, तो यह समझना चाहिये कि प्रसूति को पूर्ण करने के लिये कृत्रिम उपायों की योजना करनी पडेगी। बच्चे का शरीर गरम कपडे में लपेट लें, और सिर बाहर आने के लिये जघनास्थिसन्धि के ऊपर की ओर दावना चाहिये। प्रसववती को उतान पडा कर गर्भ के पैर खीच कर उसको बाहर खींच लेने का प्रयत्न कदापि न करना चाहिये। इस से नैसर्गिक रचना बिगड जाती है, और सिर झुका हुआ न रह कर उसका पिछला भाग पीठ में आ लगता है। अर्थात् उसका नमन न होते हुये प्रसरण हो जाता है। और इसके अतिरिक्त, पैर खींचते ही, शरीर के साथ ही, उस

के हाथ नीचे न आते हुये, वे ऊपर ही अटक रहते हैं, और बाद को सिर के निकलने में बहुत ही कठिनाई पड़ती है।

कटीर में सिर के प्रविष्ट हो जाने पर यदि बच्चे को जीवितावस्था में ही बाहर आना हो तो, प्रसूति तीन ही मिनट में हो जानी चाहिये। क्यों कि इस समय नाल पर खूब दबाव पड़ने लगता है। कूलों के आगे आजाने पर यदि नाल में नाड़ी न लगी, तो प्रसूति के विषय में जल्दी करने से कोई लाभ न होगा, क्योंकि ऐसी दशा में यह समझ लेना चाहिये कि गर्भ पहले ही मर चुका है। माता के पेट के ऊपर से सिर के भाग पर यदि जोर से दाबा जाय, तो सिर जल्दी ही बाहर निकल आता है। सिर के आगे न आने का कारण यह होता है कि वह जितना झुका हुआ होना चाहिये उतना नहीं होता। इस लिये ऐसे समय में इस प्रकार की तजवीज करनी चाहिये कि, सिर नमन की स्थिति में रहे। बायें हाथ की दो उँगलियां योनि में अथवा गुदकांड में डाल कर गर्भ के ऊपरी जबड़े के भाग पर नाक के दोनों ओर मजबूती से दाब कर नीचे की ओर खींच सा देना चाहिये, इससे सिर नमनावस्था में आने लगता है। इसके बाद दाहिने हाथ की दो उँगलियों से शिर पृष्ठ को ऊपर ढकेल सा देना चाहिये, इससे भी नमन में सहायता होती है। अब पेट पर से दाब कर यदि सिर आगे की ओर ढकेल दिया जाय, तो विटप के ऊपर से वह बाहर आजायगा। यदि विटप की ओर

कभी हाथ आगे आता है, अथवा उँगलियों का भाग हाथ
लगता है। इस स्थिति का निदान करने के लिये पेट पर
कर देखना चाहिये। इस स्थिति में गर्भकोश के फूटते ही
के हाथके योनिमार्ग में आजाने की बहुत सम्भावना रहती
कभी कभी योनि के बाहर भी हाथ आ जाता है।

उस समय तो यही जानने की कठिनाई पड़ती है कि
हाथ आयाहै या पैर। पैरकी उंगलियाँ साधारण तथा स
होती है, और एक दूसरे के पास पास होती हैं और हाथ
उंगलियां दूर दूर होती हैं तथा एक दूसरे से छोटी बडी
हैं। हाथ के अगूठे की अन्य उंगलियों की अपेक्षा भिन्न दि
होती है और वह हथेली की ओर झुकाया जा सकता है
के अगूठे की यह दशा नहीं होती। इसके अतिरिक्त पै
ऊंचे से गूले होते हैं जो हाथ में नहीं होते। जो हाथ
आया होगा उस हाथ के साथ अपने जिस हाथ से हम
हाथ मिला सकेंगे अर्थात् शेक हैंड कर सकेंगे उसी हाथ
बाहर आया हुआ समझना चाहिये। जैसे यदि हम
दाहिने हाथ से बाहर आये हुये हाथ के साथ हाथ
सकेंगे तो यह समझना चाहिए कि गर्भ का भी दाहना
ही बाहर आया है। इसी प्रकार यदि हम अपने बायें हाथ
बाहर आये हुए हाथ के साथ शेक हेंड सीधे तौर से
सके में तो आगे आया हुआ हाथ बाया समझना चाहिये

ऐसी दशा में आप ही आप प्रसूति शायद ही कभी

इसलिये ऐसे समय में प्राय: बच्चे को घुमाने का प्रयोग करके प्रसूति करानी पड़ती है। अथवा कभी कभी गर्भ के शरीर के भिन्न भिन्न भाग काट करके भी प्रसूति करानी पड़ती है।

ज्योंही यह मालूम हो जाय कि गर्भ का यह दर्शन है त्योंही उपर्युक्त प्रयोग जहां तक हो सके शीघ्र ही करने की तजवीज करनी चाहिये।

६ एक समय में एकाधिक गर्भों का रहना अस्सी अथवा नव्वे प्रसूतियों में एक के परिमाण से जुड़े हुये बच्चे होते हैं। तीन बच्चे एक साथ बहुत ही कम पाये जाते हैं। इनका परिमाण ७००० में एक है।

यह बात नहीं है कि एकसे अधिक गर्भों के होनेसे प्रसूति में अधिक बिलम्ब हर हालत में लगता ही हो। हां कभी कभी कुछ विलम्ब अवश्य लग सकता है। परन्तु इसका कारण यही होता है कि गर्भाशय के अधिक बड़े होने के सबब से उसका आकुञ्चन समुचित रूप से नहीं होता।

प्राय पहले बच्चे के पैदा हो जाने पर इस प्रकार का निदान हो जाता है। इस स्थिति का प्राय पहले ही निदान होना कठिन होता है। हां, पेट के आकार से साधारण बहुत कुछ अनुमान किया जा सकता है।

जुड़े गर्भ में भी भिन्न भिन्न दर्शन ५

दोनों का एक ही दर्शन होता है अर्थात्

रहना, किन्हाई का बहुत बड़ा होना, और गर्भाशय की ग्रीवा का कटीर में टेढ़ा होना, इत्यादि सब कारणों से यह विकार हो सकता है। कभी कभी गर्भाशय बालू की घड़ी के समान बीच ही में आकुंचन को प्राप्त होता है। यह अन्तिम कारण प्रायः अर्गट औषधि का अधिक उपयोग करने से और नाल खींच कर किन्हाई निकालने का प्रयत्न करने से उत्पन्न होता है। किन्हाई के गर्भाशय में चिपट रहने का कारण प्रायः उपदंश रोग का होना है।

उपचार—प्रसूति की तीसरी अवस्था की यदि पूर्वोक्तानुसार व्यवस्था रखी जाय, किन्हाई के आप ही आप बाहर निकलने के पहिले ही यदि हम उसे निकालने के प्रयत्न न करें नाल खींच कर किन्हाई निकालने का प्रयत्न यदि न करें और वेगों के समय यदि गर्भाशय बाहर से दाबा जाय, तो प्राय यह विकार नहीं होता। यदि विशेष रक्त स्राव न हो, पूर्वोक्त रीति से किन्हाई धीरे धीरे निकालनी चाहिये। परन्तु यदि रक्तस्राव अधिक होता हो, तो किन्हाई जल्दी ही निकाल डालनी चाहिये। इस के लिये प्रसववती को बनाना पड़ाना चाहिये। इसके बाद अपना एक हाथ गर्भाशय में डाल कर दूसरे हाथसे गर्भाशय की पेंदी बाहर से पकड़ रखनी चाहिये। भीतर हाथ के जाने में यदि कोई रुकावट हो, तो उसको उंगलियों से धीरे धीरे दूर करना चाहिये। यदि आवश्यकता हो, तो क्लोरोफार्म सुंघाना चाहिये। इस के भीतर वाले हाथ

से गर्भाशय की भीतरी ओर से धीरे धीरे झिल्लाई को उंगलि या से छुड़ा कर निकालना चाहिये। सब भाग निकाल चुकने पर यदि आवश्यकता हो, तो गर्भाशय का भीतरी भाग जन्तु नाशक औषधि के जल से सावधानी पूर्वक धो डालना चाहिये। इस के बाद अर्गट औषधि पीने को देनी चाहिये।

पन्द्रहवां भाग।

संकीर्ण प्रसूति।

नालदर्शन, गर्भाशय का उलटा होना, गर्भाशय का फटना और प्रसवोत्तर रक्तस्राव।

नालभ्रंशअथवा नालदर्शन—Prolapse of the Funis

प्रोलेप्स आफ दि फ्यूनिस) इस प्रकार म नाल का एक लपेटा दर्शन भाग के आगे आता है।

प्रसूति के समय नाल प्रसवमार्ग और दर्शन भाग के बीच में कुचल जाता है, और इस कारण उस के भीतर के रुधिराभिसरण में व्यत्यय आ जाता है और गर्भ के मर जाने की सम्भावना रहती है।

उपर्युक्त प्रकार कभी कभीसाधारणप्रसूति के समयभी होता है, परन्तु अयोग्य दर्शन के समय और कटारके कम चौड़े होने की दशा म यह विशेष कर देखने में आता है।

फूटजाते हैं अथवा योनिमार्ग हाथजाने योग्य बड़ा नहीं होतातो किसी न किसी पदार्थमें नाल को अटकाकर उसको भीतरडालने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिये एक बड़े आकारकी पुरुष की गमइलास्टिक जाति की मूत्रोत्सर्जक नलिका लेनी चाहिये, और उसके सिर के पास, जहां एक ओर एक छेद रहता है, उसके सामने ही दूसरी ओर, एक छेद करना चाहिये। और ऊपर छेद से एक फीते का टुकड़ा लेकर उसके दोनों सिरे उसमें पिरोना चाहिये। इसके बाद नाल का लपेटन उस फीते की बड़ी में अटका कर मूत्रोत्सर्जक नलिका में तनाव आने के लिये भीतर सदैव का तार डाल कर नाल सहित उस नलिका को गर्भाशय के भीतर डालना चाहिये। इसके बाद मूत्रोत्सर्जक नलिका के तार को निकाल लेना चाहिये, और जब तक सिर नीचे न आजाय, मूत्रोत्सर्जक नलिका भीतर रखनी चाहिये। इस काम में यदि मूत्रोत्सर्जक नलिका के बदले वैसे ही किसी दूसरे पदार्थ का उपयोग कर लिया जाय, तो भी कोई हानि नहीं।

ऊपर बतलाये हुये किसी उपाय से भी यदि नाल ऊपर न जावे अथवा एकबार जाकर फिर नीचे आने लगे, तो चिमटा लगा कर अथवा बच्चे को घुमा कर प्रसूति करानी चाहिये। यदि ग्रीवा पूर्णतया विस्तृत होगईहो, तो चिमटा लगाना चाहिये परन्तु यदि वह विस्तृत न हुई हो, तो बच्चे को घुमाकर प्रसूति करानी चाहिये।

गर्भाशय का फटना-(Rupture of the Uterus) रप्चर आफ दि यूटेरस) यह प्रकार बहुत ही भयंकर है। परन्तु सौभाग्य से यह बहुत कम पाया जाता है।

गर्भाशय की पेंदी लगभग १३०० प्रसूतियों में एक के परिमाण से फटती है।

कारण-जिस समय प्रसवमार्ग और उसके बीच से आने वाले गर्भ में बहुत कुछ अन्तर रहता है, उस समय प्रसवक्रिया में जो रुकावट होती है, उसका प्रतिबन्ध करने के लिए गर्भाशय का बड़े जोर से आकुंचन होता है। इस आकुंचन के होते समय गर्भ फट जाता है। यह प्रकार खास कर उस समय होता है, जबकि आकुंचन पूरा कठोर से जलशीर्ष युक्त गर्भ बाहर निकलता है। इसके अतिरिक्त तिरश्चीनजनन में, जब कि शीघ्र प्रसूति होने के लिये गर्भाशय बहुत आकुंचन पाता है, उस समय भी उसके फटने की सम्भावना रहती है।

इस विकारमें गर्भाशयका आकुंचन बहुत जोर केसाथ होता रहता है,अतएव अर्गट नामकी औषधि न देनी चाहिये। क्यों कि उससे जो भय ऊपर बतलाया गया है, उसमें सन्देह नहीं रहता। ऐसेअनेक उदाहरण पाये जाते हैं कि जिनमें प्रसूति की दूसरी अवस्था में इस औषधि के देने के कारण ही गर्भाशय फट गया है।

लक्षण-प्रसवती को एकाएक ऐसा जान पड़ता है कि जैसे पेट में कुछ फट सा गया हो। और इस कारण उसे बहुत वेद-

नायें भी होती हैं। आने वाले वेग एकाएक ठहर जाते हैं। नाड़ी बारीक और मन्द होजाती है। बदन में पसीना छूटता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया शीघ्रता पूर्वक जारी हो जाती है। योनि-परीक्षा करने से ऐसा मालूम होता है कि पहले का दर्शनभाग मानो अब उंगली में लगता ही नहीं, और उसकी जगह दूसरा ही आ जाता है। कभी कभी फटी हुई जगह हाथ में भी लगती है, और कभी कभी उसके अन्दर से अंतड़ियों का भागभी गर्भाशय में आ जाता है। इस कारण प्रसववती को अवश्य ही भय रहता है। क्योंकि फटे हुये भाग से गर्भ के पेट की पुलाई में प्रविष्ट होजाने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त उस फटे हुए भागसे रक्तस्राव होनेकी भी बहुत सम्भावना रहतीहै।

चिकित्सा-दाई को चाहिये कि उस स्त्री को शान्ति पूर्वक सुलाये रखे, और गरम पानी की बोतलों से सेंके, और उसको गरम गरम पेय पदार्थ और ब्रान्डी पीने को देवे।

इस विकार में निम्नलिखित उपचार किये जाते हैं--ज्योंही यह निदान हो जाता है कि गर्भाशय फट गया है, त्योंही चिमटी की सहायता से, जितनी जल्दी हो सकतीहै, प्रसूति कराई जाती है। और यदि चिमटी का उपयोग नहीं हो सकता, तो गर्भ का सिर फोड़कर प्रसूति करानी पड़ती है।

स्त्री को, शस्त्र प्रयोग करते समय और बाद को भी उताना ही पड़ा रखना चाहिये। इससे गर्भाशय के फटे हुये भाग से श्वासोच्छ्वास के समय, पेरिटोनियम में हवा के जाने की बहुत

सम्भावना नहीं रहती, और इसके अतिरिक्त, सूचित हुआ रक्त भी पेरिटोनियम में नहीं जाता।

बच्चे को बाहर निकालने के बाद तुरन्तही किन्हाई भी बाहर निकाली जाती है। उसको निकालने के लिये यदि गर्भाशय में हाथ डालना पड़े, तो भी कोई हानि नहीं। किन्हाई यदि शीघ्र न निकाली जायगी, तो फटे हुए भाग से वह पेरिटोनियम में चली जायगी। बाहर निकालनेके पहले ही यदि वह पेरिटोनियम में चली जाय तो भी धीरे धीरे, बड़ी सावधानी के साथ, अतड़ियों को हानि न पहुंचाते हुये, फटे हुये भागसे उसको गर्भाशय में खींच लाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार यदि वह गर्भाशय में फिर से खींची न जा सके, तो फिर उसको उदरच्छेद करके बाहर निकालना चाहिये।

यदि सारा गर्भ ही फटे हुये भाग के द्वारा उदर में चला गया हो, अथवा कम से कम उसका सिर ही चला गया हो, तो फिर उस फटे हुये भाग से गर्भ को फिर से गर्भाशय में खींचने का प्रयत्न नहीं किया जाता। क्योंकि ऐसा करने से गर्भाशय औरभी अधिक फट जायगा। और गर्भाशयकी पुलाई भी चूंकि कम हो जायगी, इसलिये बाद को प्रसूति होने में भी दिक्कत होगी।

ऐसे समय में उदरच्छेद का शस्त्र प्रयोग करके गर्भ,जरायु, रक्त के गोले इत्यादि उदर की पुलाई से निकाल डालने चाहिये और फटी हुई जगह सी देनी चाहिये। यह प्रयोग करते समय

सिज़ेरीन सेक्शन नामक शस्त्र प्रयोग की जगह पर ही उदर के बीचो बीच ही छेद करते हैं। फटी हुई जगह यदि गर्भाशय के पिछली ओर होतीहै, तो गर्भाशयको टेढ़ाकरकेआगेकी ओर खीचकर पकड़ते हैं। और अंतडियां स्पंजों से अथवा लिंट के टुकड़ों से नीचे दाब कर पकड़ते हैं। इससे टांके सहज ही लगाये जा सकते हैं।

कभी कभी पारो का शस्त्र प्रयोग करके सारा गर्भाशय काट डालते है। परन्तु यह काम प्राय: खतरे का होता है।

गर्भाशय में टांके लगाने के बाद पेरिटोनियम १०५ फा० उष्णोदकसे उसको साफ करके धो डालना चाहिये। कभी कभी फटे हुये भाग से चाहे गर्भ उदर की पुलाई में न जावे, और चाहे योनि मार्ग से ही बाहर निकाला गया हो तो भी उदरच्छेद का शस्त्र प्रयोग किया जाता है। क्योंकि फटे हुये भाग से पेरिटोनियम में रक्त के गोले इत्यादि चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहां से रोगजन्तु भी भीतर जा सकते हैं। इससे पेरिटोनियम में जलन पैदा होकर मृत्यु हो जाने की भी सम्भावना रहती है। बहुत सा रक्तस्राव होने के कारण यदि स्त्री बिल्कुल निर्बल हो जाती है, अथवा फटने का स्थान ऐसा होता है कि उदरच्छेद करके भी उस जगह टांके नहीं लगाये जा सकते तो फिर यह शस्त्र प्रयोग नहीं किया जाता। कभी कभी फटी हुई जगह बहुत नीचे होती है, तो यदि योनिमार्ग से ही टांके लगाने का सुभीता होता है, तो वहीं से लगाये जाते हैं।

प्रसूति चाहे जिस रीति से हुई हो, उसके बाद योनि मार्ग में और गर्भाशय में आयोडोफार्म गाज लगा रखते हैं।

शस्त्रप्रयोग करनेके बाद स्त्रीको उत्तानापड़ा रखना चाहिये और मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकलना चाहिये।

योनिमार्ग में आयोडोफार्म की गुटिकायें रखनी चाहियें। बोरिक एसिड के समान सौम्य जन्तुनाशक के पानी से योनि मार्ग नित्य धोना चाहिये, और ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये कि योनिमार्ग में जाने वाला सारा पानी बाहर निकल आया करे। एक दो दिन के बाद धोने मे कार्योलिक एसिड के पानी का उपयोग करना चाहिये। सारांश यह है कि सीजे रियन सेक्शन नामक शस्त्र प्रयोग के बाद प्रसववती के विषयमें जो सावधानी रखनी पड़ती है, वही सावधानी इस प्रयोग के बाद भी रखनी चाहिये। यदि गर्भाशय की दीवाल किसी प्रकारभी पूर्णतया न फटी हो, तो ऐसा करना चाहिये कि जिससे किन्हाई गिर जाने के बाद गर्भाशय पूर्णतया आकुंचन पा जावे। इसके सिवाय जन्तुनाशक औषधि के जल से गर्भाशय धोना भी चाहिये।

गर्भाशय का उलटा होना—(Inversion of the Uterus इन्वर्शन आफ दि यूटेरस)—गर्भाशय के उलटे होने का तात्पर्य यह है कि उस दशा में उसकी भीतरी बाजू आजाती है यह विकार कभी कभी प्रसूति के समय के अतिरिक्त भी हो जाता है। परन्तु अक्सर यह विकार प्रसूति में बच्चे के पैदा हो जाने के बाद होता है।

गोले के एक ओर से हम यदि अपनी उंगलियां ऊपर को ले जांय, तो उनमें योनि का ऊपरी भाग लगेगा, और यह भी जान पड़ेगा कि, उसी भाग में वह गोला लगा हुआ है। हां, ग्रीवा का किनारा बिलकुल ही न लगेगा। इसके सिवाय जब पेट पर से दाब कर देखा जायगा, तब सदैव की भांति, गर्भाशय का गोला हाथ में न लगेगा।

गर्भाशय यदि पूर्णतया उलटा न हुआ होगा, तो योनिमार्ग में एक गोला मिलेगा। परन्तु जब ऊपर तक हम अपनी उंगलिया ले जांयगे, तब ऐसा मालूम होगा कि उक्त गोला ग्रीवा के मुख से बाहर निकला है। इसके अतिरिक्त उसके आसपास ग्रीवा का किनारा भी हमारी उंगली में स्पष्टरूप से लगेगा। हां पेट से दाब कर जब हम देखेंगे, तब गर्भाशय का गोला हाथ में न लगेगा।

जब यह निदान निश्चय होजाय कि, गर्भाशय उलटा हो गया है, तब उस पर बहुत जल्द उपचार करना चाहिये। रक्तस्राव न होने देने के लिये योनिमार्ग में गूजे लगाने चाहियें, उत्तेजक ओषधियां अथवा पेय पिलाना चाहिये, और बाहर की उष्णता स्थिर रखने के लिये सेंकना चाहिये।

चिकित्सा—इस विकार के मालूम होते ही, यदि सम्भव हो तो बहुत जल्द गर्भाशय को सीधा करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह प्रयत्न प्रारम्भ करने के पहले प्रसववती यदि बिलकुल शिथिल होगई हो, तो उसको थोड़ीसी ब्रांडी पिलानी

चाहिये, अथवा त्वचा में ईथर का अन्त क्षेप करना चाहिये। किन्हाईं यदि अभी तक चिपटा हो, तो उसको पहले छुड़ा कर निकाल लेना चाहिये। गर्भाशय को सीधा करते समय उसकी पेंदी को जो कि उलटी होकर बाहर निकल आई है, मुट्ठी में पकड़ना चाहिये, और उसको धीरे धीरे ऊपर की ओर ढकेलते जाकर अन्त में हाथ की मूठ बनाकर, उससे गर्भाशय की उलटी हुई पेंदी पर दाब देकर, उसको ऊपर ढकेलना चाहिये। ढकेलते समय ढकेलने की दिशा कटीर के रुख से रखनी चाहिये। ढकेलने का प्रारम्भ करते समय पहले पेंदी को भीतर न दाबना चाहिये। गर्भाशय जैसा नीचे आया हो, उसी क्रम से उसको ऊपर जाने देना चाहिये। अर्थात् पहले ग्रीवा के पास का भाग ढकेलना चाहिये, और फिर बिलकुल अन्त में पेंदी को ढकेलना चाहिये।

प्रसूति हुये यदि अभी थोड़ा ही समय हुआ हो, अथवा गर्भाशय अभी भली भांति आकुञ्चित न हुआ हो, तो क्लोरोफार्म सुंघा कर उपर्युक्त रीति से ही गर्भाशय को ऊपर ढकेलना चाहिये। गर्भाशय के पूर्णतया आकुंचित हो जाने के बाद भी यदि वह उलटा ही बना रहता है, तो यह उस विकार का विलम्बी प्रकार समझा जाता है।

विलम्बी प्रकार में गर्भाशय को फिर से सीधा करने के लिये भिन्न भिन्न यन्त्रों का उपयोग करते हैं।

गर्भाशय को ऊपर ढकेलते समय विटप की ओर से पीछे

खींच कर पकड़ना चाहिये गर्भाशय को ऊपर ढकेलने के पहं
किन्हाई छुड़ाते समय बहुत रक्तस्राव होता है। सो इस त्रिय
में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये। गर्भाशय को ऊप
ढकेलते समय भी पेट को ऊपर से दाब कर पकड़ना चाहिये
गर्भाशय जब पूर्णतया सीधा होजाय, तब भीतर डाले हुये हा
को तुरन्त ही बाहर न निकाल लेना चाहिये। क्योंकि क
कभी गर्भाशय के फिर उलटे हो जाने की सम्भावना रहती है
भीतर हाथ रख कर पेट के ऊपर से गर्भाशय की पेंदी दाब
चाहिये। और जब जोर से आकुंचन पाने लगे, तब हाथ
बाहर निकालना चाहिये। इसके बाद पेट के ऊपर से प
बांधना चाहिये। और स्त्री को शान्ति पूर्वक पड़े रहने दे
चाहिये। गर्भाशय का भली भांति आकुंचन होने के लिये अग
नामक औषधि पीने को देना चाहिये।

गर्भाशय जब किसी उपाय से भी सीधा नहीं होता, त
उस भाग को, जो-उलटा हो जाता है, कभी कभी काट
डालते हैं। परन्तु आज कल, जब कि सूति का शास्त्र का काप
ज्ञान हो चुका है, इस प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

गर्भाशय की ग्रीवा का फट जाना—Rupture of tl
Cervix रप्चर आफ दि सर्विक्स)

कारण—ग्रीवा जब कि अकड़ी रहती है उस समय गर्भाश
जब बड़े जोर से आकुंचित होता है, अथवा जब कि कृत्रि

रीति से प्रसुति कराई जाती है, उस समय ग्रीवा फट जाती है। इस विकार के लक्षण बहुत महत्व पूर्ण नहीं हैं।

फटा हुआ भाग यदि बिलकुल थोड़ा होता है, तो वह आप ही आप जुड़ जाता है।

प्रतिबन्धक चिकित्सा—जिस समय चिमटा लगाने की आवश्यकता जान पड़े, उस समय, जब तक ग्रीवा पूर्णतया विस्तृत नहीं जाय, उसको कभी न लगाना चाहिये। चिमटे से बच्चे का सिर खींचते समय उतावली न करनी चाहिये। ग्रीवा जब अकड़ी हो और वेग जोरदार हों, तब गरम पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। अथवा क्लोरो फार्म सुंघाना चाहिये। यदि गर्भोदक कोश पहले फट चुके हों, और ग्रीवा अकड़ी हो, तो भिन्न भिन्न यन्त्रों से अथवा उंगलियों से विस्तृत करने का प्रयत्न करना चाहिये।

चिकित्सा—खौलते पानी अथवा ठंढे पानी की पिचकारी से रक्त स्राव बन्द करने का उपाय करना चाहिये। कभी कभी बर्फ का भी उपयोग किया जाता है। इन उपायों से यदि रक्त स्राव बन्द न हो, तो फिटकरी अथवा परक्लोराइड आफ आयर्न के पानी में रुई का गूंजा अथवा स्पञ्ज डुबा कर, उस को उस भाग पर दबा कर रखना चाहिये। कभी कभी फटी हुई जगह में एक दो टांके लगा देने से भी रक्त स्राव बन्द हो जाता है। टांके कारटगट के अच्छे होते हैं। परन्तु उसके अभाव में रूपे के तार का उपयोग करने से भी काम चल सकता है। टांका ग्रीवा की

सम्पूर्ण मुटाई से लगाया जाय। आठ दिन के बाद टांके निकाल डालने चाहियें। रक्त स्राव यदि अधिक न होता होगा, तो प्राय. टाके लगाये बिना ही फटी हुई जगह आपही आप भर आती है।

योनि मार्ग का बाह्य मुख, विटप इत्यादि भागों के भी, प्रसूति के समय, फट जाने की सम्भावना रहती है। इन विकारों के होने पर भी कोई विशेष महत्व पूर्ण लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। फटी हुई जगह में न्यूनाधिक परिमाण से पीडा होती है, परन्तु यदि वह थोड़ी ही होती है, तो आप ही आप भर आती है। हा, यदि वह बड़ी होती है, तो सूतिका काल में उस जगह से रोग जन्तुओं के प्रविष्टहो जाने की सम्भावना रहती है, इस कारण सूति का ज्वर उत्पन्न होता है, ऐसी दशा मे फटा हुआ भाग सड़ने लगता है। मल मूत्र विसर्जन करते समय, कांखने के जोर से, योनि मार्ग की अगली और पिछली दीवाल और गर्भाशय के भ्रंश होने की सम्भावना रहती है। वह स्त्री पुरुष से सम्भोग नहीं कर सकती। कभी कभी यह भाग फटते फटते मल द्वार तक भी पहुच जाता है।

ऐसी दशा में सम्पूर्ण योनि मार्ग और फटा हुआ भाग जन्तु नाशक पद्धति से धो कर साफ रखना चाहिये। इसके सिवाय फटे हुये स्थान को, इधर उधर टांके लगा कर सीं डालना चाहिये। मलद्वार तक यदि सारा भाग फट [illegible], तो बहुत सावधानी के साथ और शास्त्रसम्मत रीति [illegible] ये।

इस रीति से [illegible] देने के बाद

थोड़ी अफीम खिलाई जाती है कि जिस से पाखाना न हो। तीन दिन के बाद फिर मलमार्ग में ३ से ४ औंस तक की ओलिव तेल की पिचकारी लगानी चाहिये। इसके कुछ घंटे बाद साबुन के पानी की बस्ति देकर मल मार्ग साफ कर देना चाहिये। इस के बाद प्रति दिन साधारण रेचक देकर दिन में एक बार पाखाना होने देते हैं। जब तक पाखाना न होने लगे, दूध इत्यादि हलका भोजन देना चाहिये। पहले के दो तीन दिनों में मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकालना पड़ता है। इसके बाद घुटने टेक कर, झुक कर, पेशाब कराते हैं। मलमूत्र विसर्जन के बाद, प्रत्येक बार, क्लिप इत्यादि बाह्यजननेन्द्रियों के भाग पिचकारी से धो डालना चाहिये। उन पर आयोडोफार्म की बुकनी डालनी चाहिये। लगभग सात दिन बाद क्लिप में लगाये हुए टांके निकाल डालना चाहिये।

प्रसवोत्तर रक्त स्राव -Post partam Haemorrhago पोस्ट पार्टम हेमरेज) यह प्रसूति के विकारों में एक कष्ट दायक विकार है। किन्हाई गिर जाने के बाद अथवा पहले यह विकार प्रारम्भ होता है।

यह विकार चूंकि प्रायः बिलकुल अचानक ही प्रारम्भ हो जाता है, इसलिये इसमें इस बात के लिये बिलकुल ही अवकाश नहीं मिलता कि इसका बन्द करने के लिये किसी उपाय के विषय में बहुत देर तक विचार किया जाय, अथवा किसी दूसरे के पास जाकर सम्मति ली जाय। इस विकार में सूतिका के प्राण

बचाने के लिये जो उपाय करने हों, वे तुरन्त ही और सावधानी पूर्वक करने चाहिये। जिस मनुष्य को पूसवोत्तर रक्तस्राव के बन्द करने के उपाय मालूम नहीं है, उसको दाई का काम अपने जिम्मे लेना अपराध माना जाता है।

इस विकार में होशियारी के साथ और विलम्ब न लगाते हुए, जो उपाय किये जाते हैं, उन्हीं के अच्छे परिणाम होते हैं। इस बात के समान सूतिकाशास्त्र में अन्य कोई भी बात सन्तोषजनक नहीं है। इसके विरुद्ध यदि उपाय ठीक ठीक और उचित समय पर नहीं होते, तो भयंकर परिणाम होता है। ऐसे समय में दाई की सच्ची पूर्णता और उपाय योजनाकी शैली का पूर्ण परिचय हो जाता है। दाई की शान्ति, उसकी समय-सूचकता और उसकी पूर्ण कर्तव्यदक्षता ऐसे समय में जितना काम देती है, उतना और किसी समय भी नहीं।

उद्गम—अन्तिम वेगों से किन्हाई गिर जाने के बाद, गर्भाशय की पुलाई में एक बड़ी ऊंची नीची जगह रहती है, जहां किन्हाई चिपकी रहतीहै। उस जगहकी रक्तवाहिनियां टूटी हुई रहतीहैं।

साधारण पूसूतिमें इन टूटी हुई रक्तवाहिनियों से होनेवाला रक्तस्राव, गर्भाशय के स्नायु तन्तुओं के आकुंचित हो जाने के कारण, बन्द हो जाता है। स्नायु तन्तुओं के आकुंचन से रक्तवाहिनियों पर दबाव पड़ता है, इससे उनकी पुलाई दूरहो जाती है और इस कारण रक्तस्राव बन्द हो जाता है। अतएव पूसवोत्तर रक्तस्राव का कारण बच्चे के पैदा हो जाने पर गर्भाशय का पूर्ण,

ग आकुंचन न होना ही है। जब गर्भोदकके अधिक परिमाण होने के कारण, अथवा जुड़े बच्चे होने के कारण गर्भाशय तन जाता है, तब भी कभी कभी इस विकारकेहो जाने की सम्भावना रहती है। कम उम्र की स्त्रियों में भी जब गर्भधारण हो जाता और प्रसूति का अवसर आता है, तब उन स्त्रियों के गर्भाशय की भी वृद्धि पूर्णतया बाढ नहीं होने पाती, अतएव उनको भी यह विकार हो जाता है।

प्रसवोत्तर रक्तस्राव की व्यवस्था-प्रसूतिकी तीसरी अवस्था यदि उपर्युक्त रीति से व्यवस्था रखी जायगी, तो प्रसवोत्तर रक्तस्राव, यदि होगा भी, तो बहुत ही कम होगा। बच्चेका शरीर बाहर आनेके लिये पेटपर हाथ रखकर दाबना और इसके अनन्तर गर्भाशय को पकड़ रखना, ये ऐसे विश्वसनीय उपाय हैं कि जिनसे गर्भाशय का पूर्णतया आकुंचन अवश्य होता है।

रक्तस्रावके लक्षण दिखाई पड़तेही सूतिकाको अर्गट औषधि पीने को देना चाहिये, अथवा उस औषधि का त्वचा में अन्त-क्षेप करना चाहिये। पिचकारी के द्वारा त्वगन्त क्षेप करने का उपचार विश्वसनीय है, और इससे बहुत जल्दलाभ मालूम होता है। अर्गट के लिक्विड एक्सट्राक्ट के दो ड्राम पिलाना चाहिये, अथवा २० बूंद अर्गटीन का त्वचा में अन्त क्षेप करना चाहिये स्त्री के सिर के नीचे का तकिया निकाल लेनी चाहिये, और नीचे की खिड़कियां खोल देनी चाहिये। पेटके उपर से जो गर्भाशय पकड़ रखा है, उसे एक क्षण भर के लिए भी न

छोड़ना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि बच्चे को स्तन में लगा दिया जायगा, अथवा दुग्धशोषक यंत्र से दूध सोख लिया जायगा,तो इससेभी गर्भाशय कुछअवश्य आकुंचित होजायगा।

इन उपायों से यदि रक्तस्राव बन्द न हो, और डाक्टर की सहायता मिलना भी यदि सम्भव न हो,तो दाई को चाहिये कि एक हाथ योनिमार्ग में डालकर, पेट के ऊपर के हाथ और योनि के अन्दर के हाथ के मध्य के गर्भाशय को दाब कर पकड़े। ऐसा करने से फिर रक्तस्राव जारी नहीं रह सकेगा। दाई को चाहिए कि जब तक डाक्टर न आजावे, इसी प्रकार गर्भाशय को दाब कर पकड़े रहे। डाक्टर के आजाने पर फिर उस पर जिम्मेदारी नहीं रहेगी। इस स्रावको बन्द करनेके लिये प्राय: गरम पानी की पिचकारी भी लगाई जाती है। इसलिये सूतिका के कमरे में गरम पानी बहुत सा तैयार रखना चाहिये।

जिन स्त्रियों के प्रसवोत्तर रक्त स्राव होता है, उनका उचित उपचार यदि ठीक समय पर हो जाता है, तो वे बहुत जल्दी अच्छी होजाती हैं–फिर उनके शरीर से चाहे बहुत सा रक्त क्यों न निकल गया हो।

जब जब रक्त स्राव का कुछ भी चिन्ह दिखाई पड़े, तब तब, स्राव के बन्द होने पर, गर्भाशय को कम से कम एक घंटे तक,खूब मजबूती से पकड़ रखना चाहिये। और इस बात का पूरा पूरा विश्वास कर लेना चाहिये कि गर्भाशय का आकुंचन ठीक ठीक हुआ है या नहीं। जब तक नाड़ी की धड़कन

सो से ऊपर रहे, तब तक प्राय ऐसा समझना चाहिये कि रक्त जानहीरहा है। गर्भाशय जब तक पूर्णतया आकुञ्चन न होजाय पेट कदापि न बांधना चाहिये।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि, गर्भाशय के कड़े और आकुंचित हो जाने पर भी रक्तस्राव जारी रहता है। ऐसे समय में स्राव गर्भ की पुलाई से नहीं होता, किन्तु वह ग्रीवा के फटे हुये भाग से होता रहता है, अथवा मदनध्वज के पास का कोई भाग यदि फट जाता है, तो वहीं से रक्त आता रहता है। ऐसे समयमें दाई को चाहिये कि योनिमार्गमें गूजे लगावे। कभी कभी प्रसूति के बाद थोड़े ही दिनों में, सूतिका अवस्था में हो, रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है। सूतिका काल में अधिक श्रम करने अथवा शौच के समय में कांखने, इत्यादि से ऐसा होता है। किन्हाई अथवा गर्भकोशों के भागों के गर्भाशय में अवशिष्ट रहजाने से भी ऐसा रक्तस्राव होने लगता है।

प्रसूति के बाद भौंरेटे का आना भी रक्तस्राव का एक लक्षण है। इस प्रकार का भौंरेटा या चक्कर यदि आ जाय, तो स्त्री का सिर कुछ निचला रखकर उसको उताना पड़ा देना चाहिए। यदि ■ मालुम हो कि बच्चे के पैदा होने के बाद कुछ भी रक्त-स्राव होता है, तो गर्भाशय को पेट के ऊपर से जोर के साथ दाबकर पकड़ना चाहिये, मुंहपर थोड़ापानी छिड़कना चाहिये और बाहरकी ताजीहवाके भीतर आनेका प्रबन्ध करनाचाहिये।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त निम्नलिखित उपचार भी करने चाहिये-

१ ठंडक-यदि रक्तस्राव कम होता है, तो ठंडे उपचार किया जाते हैं। एक तौलिया ठंडे पानी में भिगोकर, उसको एकदम कूलों के ऊपर अथवा पेट पर लगाना चाहिये। यदि बर्फ मिल सके तो उसकी थैली गर्भाशय पर रखनी चाहिए।

२ उष्णता-एक बड़ी पतेली पर ११०-११५ फा० उष्णता का गरम पानी लेना चाहिये। सूतिका के कूले पलंगके पायताने के पास लाना चाहिए। स्त्री करवट से लेटी हुई हो। उसके घुटने पेट के पास लगे हों। उसके कूलों के नीचे एक लम्बा सा मोमजामा डालकर मोमजामे को नीचे लटकता रहने दे। उसका सिरा जमीन पर नीचे रखी हुई बालटी में डाल देवे। ऐसा करने से यह होगा कि योनिमार्ग से निकलने वाला पानी नीचे बालटी में गिरता रहेगा। इसके बाद इरिगेटर से उपर्युक्त पानी गर्भाशय में जाने दे। इरिगेटर की नलिका का अगला मुख वल्कनाइट का अथवा कांच का होना चाहिये।

इस प्रकार गर्भाशय से बहुत सा पानी जाकर निकलना चाहिये। इससे गर्भाशय का आकुञ्चन होने लगता है, और रक्तस्राव बन्द हो जाता है। पानी को भीतर जाने देने के पहिले नलिका की सब हवा बाहर निकाल देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उक्त पानी जन्तुनाशक होना चाहिये। योनिमार्ग की श्लैष्मिक त्वचा बहुतसी उष्णता सहन कर सकती है। इस

ये गरम पानी से सूतिका को कष्ट नहीं होता। परन्तु योनि-मार्ग से पानी जब बाहर निकलता है, तब वह यदि बाह्य जननेन्द्रियों की अथवा चिट्टप की खाल में लगता है, तो अवश्य ही बहुत कष्ट होता है। इस बात को ध्यान में रखकर एक तौलिया भिगोकर उसकी घड़ी ऐसी रखनी चाहिए कि जिससे बाहर आनेवाले पानी के कारण बाह्य जननभाग जलें नहीं।

३ गर्भाशय में गूंजा लगाना-साफ नवीन धोए हुए कपड़े के लम्बे लम्बे टुकड़े करो। ये टुकड़े यदि लिंट के किये जायें, तो भी कोई हानि नहीं। यदि एक से अधिक टुकड़ों का उपयोग करना हो, तो प्रत्येक के सिरे में फीते का एक टुकड़ा बाधना चाहिये, इससे उनके बाहर निकालने में सुभीता होगा। इसके बाद उनको आयोडोफार्म में खूब लसेटना चाहिये। तत्पश्चात् गर्भाशय के जमे हुये रक्तके सब गोले निकाल डालो, और उसमें इन टुकड़ों को पेंदी तक अच्छी तरह लगाकर गर्भाशय को बिलकुल भर दो। केवल योनिमार्ग को ही गूंजों से भर देना अथवा गर्भाशय के सिरके निचले भाग में ही गूंजें लगाना भूल है क्योंकि इससे गूंजों के पीछे की पोली जगह में रक्तस्राव जारी रहेगा। इन गूंजों को चौबीस घंटे तक रखना चाहिये। इसके बाद फिर उनको निकाल डालो और गर्भाशय को मरक्युरिक परक्लोराइड (२००० में १) के पानी से धोना चाहिये।

४-परक्लोराइड आफ आयर्न-अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी तीव्र स्तम्भक औषधि की पिचकारी गर्भाशय में

लगाना, इस उपाय को तभी करना चाहिये, जबकि अन्य किसी उपाय से भी रक्तस्राव बन्द न होता हो। क्योंकि इस उपाय से दो तीन प्रकार के ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं कि जिनसे सूतिका के जी को कष्ट पहुंचने की सम्भावना रहती है।

(अ) इस औषधि के कारण जमे हुये रक्त का गोला रक्त प्रवाह में चला जाता है। वहां से फिर फेफड़े में उसके चले जाने से पल्मनरी एम्बोलिजम नामक विकार हो जाता है, और इस कारण औषधि की पिचकारी लगाते ही मृत्यु हो जाने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार से मृत्यु हो जाने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

(ब) यह औषधि गर्भाशय और अंडवाहक नलिका के बीच से पेरिटोनियम में जाकर दाह उत्पन्न करती है।

(क) रक्त के गोले, जो नवीन तैयार हो जाते हैं उनके सड़ जाने से सूतिकाज्वर के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

एक भाग लायकर फेरी परक्लोराइड फार्टियार और तीन अथवा चार भाग पानी को मिलाकर उस द्रव की पिचकारी लगानी चाहिये। एक भाग फेरी परक्लोराइड और आठ भाग पानी का भी उपयोग किया जाता है। पहले रक्त के गोले इत्यादि जो कुछ गर्भाशय में हों, उनको निकाल डालना चाहिये और जन्तुनाशक पानी से गर्भाशय को खूब स्वच्छ करके धो डालना चाहिये। रबर की पिचकारी का सिरा उपर्युक्त औषध के पानी में डाल कर उस पानी को पिचकारी के द्वारा भीतर

जाने देना चाहिये। रक्तस्राव बन्द हो जाने पर गर्भाशय अधिक ज़ोर से दबाना अथवा हिलाना भी न चाहिये।

उपर्युक्त औषधि के बदले में कभी कभी टिंक्चर आयोडीन अथवा विनेगर का उपयोग भी किया जाता है।

रक्तस्राव के कारण आई हुई नीरक्तता की चिकित्सा—रक्तस्राव यदि थोड़ा ही हुआ होतो पतला परन्तु पौष्टिक पदार्थ पीने को देना चाहिये। पानी में नमक डालकर भी पिलाते हैं।

रक्तस्राव यदि अधिक हुआ हो, और अत्यन्त कमजोरी आ जाने के कारण यदि नाड़ी बिलकुल शिथिल होने लगी हो, तो असली बात यह है कि हृदय की धड़कन सुनाई देनी चाहिये। इसलिये सिर को ज़रा निचला रखना चाहिये। सिरके नीचे की तकिया बिलकुल निकाल डालनी चाहिये। कुछ पीने के समय भी सिर को ऊपर न उठाने देना चाहिये। पलग के नीचे के पायों के नीचे लकड़ी के गट्ठे रखकर पायताने को ऊंचा कर देना चाहिये। ब्रांडी इत्यादि उत्तेजक औषधियां न देनी चाहियें इन उपायों से यदि नाड़ी ठिकाने पर न आवे तो हाथ पैरों को अन्त की ओर से हृदय की ओर बाधते हुये लाना चाहिये, और जब तक नाड़ी ठीक रास्ते पर न आ जाय, कई घंटे तक उनको वैसा ही बँधा रहने देना चाहिये।

उपर्युक्त उपायों से यदि कुछ असर नहीं होता, तो फिर सूतिका के शरीर में रक्त डालने (Transfusion of Blood ट्रान्सफ्यूज़न आफ ब्लड) का प्रयोग करते हैं। कभी कभी

किसी दूसरे मनुष्यकी शुद्ध रक्तवाहिनियों का रक्त लेकर उसको सूतिका की अशुद्ध रक्त वाहिनियों में डालते हैं। कभी कभी दूसरे मनुष्य की अशुद्ध रक्त वाहिनियों का रक्त सूतिका की अशुद्ध रक्त वाहिनियों में डालते हैं। कभी कभी दूसरे मनुष्य की अशुद्ध रक्त वाहिनियों का रक्त निकाल कर उसको पांच मिनट तक एक स्वच्छ कांटे से खलबलाते हैं। इसके बाद उसको मल मल के छन्ने से छान लेते हैं। फिर उसमें सलाइन सॉल्यूशन डाल कर उसे सूतिका की अशुद्ध रक्त वाहिनियों में डालते हैं।

कभी कभी दो भाग नमक और एक भाग सोडा बाय कार्ब मिलाकर उसमें नब्बे ग्रेन लेकर उसको एक पाइंट गरम पानीमें डालते हैं। इसके बाद उसको छान कर चार से छै पाइंट तक सूतिका की अशुद्ध रक्त वाहिनियों में डालते हैं। कभी कभी यह ओषधि अशुद्ध रक्त वाहिनियों में न डालते हुये त्वचा में ही उसका अन्त क्षेप करते हैं।

उपर्युक्त प्रयोग कर चुकने के बाद सूतिका को कई बार, परन्तु थोड़ा थोड़ा, कोई पतला पदार्थ पीने को देना चाहिये और उसको शान्ति पूर्वक निद्रा लेने देना चाहिये।

सोलहवां भाग।

सूतिका शास्त्र के शस्त्र-प्रयोग।

नीचेजो शस्त्र-प्रयोग दिये गयेहैं, उनमें से अधिकांश शास्त्र

प्रयोग दाई के करने के नहीं होते। वे अनुभवी सूतिकाशास्त्रवेत्ता शस्त्रवैद्य के द्वारा कराये जाते हैं। इन प्रयोगोंके दो भाग किये जा सकते हैं। पहले भाग में वे प्रयोग आते हैं कि जिन प्रयोगों के द्वारा गर्भको मारकर, अथवा यदि वह गर्भको सहायता करने के पहले गर्भाशय में ही मरा हुआ होता है, तो उसको वैसा ही बाहर निकालते हैं। दूसरे भाग में वे प्रयोग आते हैं कि जिनके द्वारा जीवित गर्भ के बाहर लाने का प्रयत्न किया जाता है।

इन शस्त्र-प्रयोगोंका यहा पर संक्षिप्त वर्णन केवल इसीलिये दिया जाताहै कि, दाई कोभी इनका साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिये। इससे उस को इस बात का ज्ञान हो जायगा कि इन शस्त्र प्रयोगों के समय दाई को क्या क्या तैयारी कर रखनी चाहिये। इस विषय का थोड़ासा ज्ञान हो जाने से, इन प्रयोगों के समय में, भिन्न भिन्नकार्य करनेके लिये उसे सुविधा भी हो जायगी।

गर्भ को मारकर बाहर निकालने के शस्त्र-प्रयोग।

(१) गर्भपात करना।

(२) गर्भ का सिर तोड़कर उसको बाहर निकालना।

(३) गर्भ के शरीर के भिन्न भिन्न टुकड़े करके उसको बाहर निकालना।

गर्भपात करना (Induction of abortion इन्डक्शन आफ अबोर्शन)-यह प्र योग साधारणतया दो दशाओं में किया जाता है -(१) उस दशा में, जब कि प्रसवमार्ग से

ऐसे बच्चे की प्रसूति होना असम्भव होता है कि जो किसी समय में भी जीवित रह सके, (२) उस दशा में, जब कि सगर्भावस्था के भिन्न भिन्न विकारों के कारण माता की प्रकृति अत्यन्त भयंकर हो जाती है, और सगर्भावस्था के बन्द करने से उसके जीवित रहने की सम्भावना रहती है।

ये दोनों दशायें निम्नलिखित विकारों में प्राप्त होती हैं—

(१) जब कटीरवैरूप्य के कारण,अथवा कटीरमें भिन्न भिन्न प्रकार की गिलटिया पड़ जाने के कारण, उसका पूर्व पश्चिम व्यास पौने तीन इन्च से भी कम हो जाता है।

(२) सगर्भावस्था के विकार.—

(अ) अत्यन्त वान्ति।

(ब) जब गर्भाशय पश्चान्नत हो जाता है, और किसी उपाय से भी सरल नहीं होता।

(क) पेशाब में अल्ब्युमेन का जाना।

(ड) कांवल, झटके, गर्भाशय से रक्तस्राव का होना, गर्भोदक का अधिक तादाद में संचित होना, कम्पवात, अण्डाशय और गर्भाशय की गिलटिया, अत्यन्त नीरक्तता और हृदय तथा फेफड़े के भयंकर रोग।

यह प्रयोग दो एक अन्य डाक्टरों की सम्मति लिये बिना कदापि किया नहीं जाता। क्योंकि उनकी सम्मति ले लेने से जनापवाद होने अथवा कानूनी बाधा होने की सम्भावना नहीं रहती।

गर्भपात करने का समय—यदि गर्भपात करना होता है, गर्भावस्था के प्रथम दो अथवा ढाई महीनों में करते हैं। महीने के बाद फिर जब पांचवा महीना समाप्त नहीं हो, तब तक प्रायः उसे नहीं करते, फिर पांचवे महीने के करते हैं।

गर्भपात करने की रीति—प्रथम ढाई महीनों में यदि पात करना होता है, तो लामीनेरिया का तम्बू ग्रीवा में डाल उसे चौड़ा करते हैं। तम्बू को भीतर डालते समय, जन्तु के पद्धति के अनुसार सारी व्यवस्था की जाती है। तम्बू बत्ती को भीतर डालने के पहले उसमें ८ में १ के हिसाब से सरीन और आयडोफार्म का मिश्रण लगाते हैं, यदि एक से गर्भाशय आकुंचित नहीं होने लगता, तो बहुत सी या एक ही जगह करके ग्रीवा में डालते हैं। उनके द्वारा गर्भाशय आकुंचित होने लगता है। परन्तु यदि ऐसा होता तो प्रयोग करने वाला स्वयं अपनी उंगली से ही, को, जो पहले से कुछ चौड़ी हुई होती है, और भी चौड़ी के गर्भाशय शलाका से अंडे में छेद कर देता है। परन्तु भी कभी ऐसा नहीं किया जा सकता। ऐसा होने पर उंगली बाजू से ही एक छोटा सा चिमटा गर्भाशय में डाल कर दि गर्भकोश को उसने पकड़ कर नीचे खींचते हैं तो वे फट ते हैं, और इससे गर्भादि बाहर वह आता है। इस रीति से दि रक्तस्राव बहुत होता है, तो टिगार के ग्रीवा चौड़े करने

वाले यंत्रों से ग्रीवा चौड़ी कर के गर्भाशय को एक दम खा
करते हैं। अगले महीनों में यदि गर्भपात करना होता है,
गर्भाशय शलाका के सिरे से गर्भोदक कोश फोड डालते हैं
चौथे महीने के अन्दर यदि गर्भपात करना होता है, तो उस
करने के पहले ग्रीवा खास तौर पर चौड़ी करनी होती है
इस प्रयोग में यदि कभी बहुत रक्तस्राव होने लगता है, अथ
दुर्गन्धियुक्त स्राव होने लगता है, तो बेहोशी की ओष
सूघने को देते हैं, और हिगार के ग्रीवा चौडी करने वालों य
से ग्रीवा चौडी करके गर्भाशय को शीघ्र खाली करते हैं।

प्रयोग हो जाने के बाद शान्ति लेने देना और जन्तु नाशक
का उपयोग करना, ये दोनों बातें आवश्यक हैं, सो बतलाने की
आवश्यकता नहीं।

मस्तक विन्धन (Craniotomy क्रेनियोटोमी) इस
शस्त्रप्रयोग में दो बातें आती हैं—(१) बच्चे के सिर में छेद
करना, (२) छेद करने के बाद उसको दाब कर, बाहर
निकालना।

इस शस्त्र प्रयोग के मौके (१) माता के कटीर के हिसाब
से बच्चे का सिर अधिक बड़ा होना। (२) गिलटियों के कारण
अथवा ग्रीवा के दुष्ट व्रण से प्रसूति में बाधा पहुंचना। (३)
ग्रीवा का किसी कारण से भी, अत्यन्त तना हुआ होना। (४)
माता की प्रकृति झटके इत्यादि के कारण जब बहुत शिथिल
हो गई हो, और इस कारण प्रसूति को बहुत जल्द पूर्ण करना

जब बिलकुल आवश्यक हो, तब यह प्रयोग करना चाहिये। तथा (५) जब इसका पूर्ण विश्वास हो जाय कि गर्भ मर गया है, तब भी यह प्रयोग किया जा सकता है। हां, जब गर्भ जीवित हो, तब उसी दशा में यह शस्त्र प्रयोग करना उचित होगा कि जब अन्य प्रत्येक रीति से प्रसूति कराने से माता की जान का खतरा हो। इस शस्त्र प्रयोग के करने का जब एक बार निश्चय हो जाय, तब उसको अविलम्ब ही करना चाहिये। यूरप के कई देशों में रोमीश चर्च के पन्थानुसार यह माना जाता है कि, माता की जान का खतरा कम करने के लिये अथवा उसकी जान बचाने के लिये भी गर्भ की हत्या करना बिलकुल बेकायदा है।

इस प्रयोग में काम आने वाले शस्त्र—पहले सिर में छिद्र करने के लिये एक वेधनिका अथवा शूल (Perforetor परफोरेटर) की आवश्यकता होती है। और उस फोड़े हुये सिर को दाब कर खींचने के लिये एक चिमटा (Cramotomy Farceps क्रेनियोटमी फारसेप्स) होता है।

इस प्रयोग के लिये ग्रीवा का पूर्णतया विस्तृत होना आवश्यक नहीं है। हां, यह इतनी विस्तृत अवश्य होनी चाहिये कि जिससे वेधनिका के सिरे लम्बे करते समय, उसके लगने से, वह फट न जाय, और सिर को खींच कर बाहर निकालने का चिमटा जब भीतर डाला जाय, तब भी कोई कठिनाई न पड़े। इतनी चौड़ी यदि वह न हुई हो, तो भिन्न भिन्न यन्त्रों से, जो

इसी काम के लिये बनाये जाते हैं, अथवा पांचों उँगलियां एकत्र करके, हाथ के आकार को शंकु के समान करके, उनके द्वारा उस को विस्तृत करना चाहिये। इस रीति से ग्रीवा को विस्तृत करते समय बेहोशी की औषधि सुंघानी चाहिये।

प्रयोग करने की रीति–यह प्रयोग करते समय बेहोशी की दवा सुंघाने की बहुत ही अधिक आवश्यकता नहीं है, परन्तु हां, यदि उस को सुंघा देंगे, तो प्रयोग करने में सुविधा रहेगी और प्रसववती के मन पर भी बुरा प्रभाव न पड़ेगा। इस लिये क्लोरोफार्म का उपयोग करना बुरा न होगा। पहले मूत्राशय और मलाशय को खाली करके प्रसववती के कूलों को बिल्कुल पलग के सिरे पर लाते हैं। बिछौने पर मोमजामा डाल कर उसको पलंग के सिरों से नीचे लटकने देते हैं। और सिर से निकलने वाले भेजे को रखने के लिये एक बर्तन तैयार कर रखा जाता है।

दर्शनभाग के बिलकुल बीचों बीच छेद करना चाहिये। यह छेद अगली सीमन्तास्थि पर रहना चाहिये, और किसी सीवन अथवा उत्लव पर रहना ठीक नहीं।

प्रयोग करने वाला पहले बॉया हाथ योनिमार्ग में डाल कर छेद करने की जगह में उंगलियां लगा रखता है। प्रयोग में सहायता देने वाला मनुष्य पेट पर से गर्भाशय को दाबकर पकड़ता है, और उस एक स्थान में रखने को प्रयत्न करता है। इसके बाद वेधनिका को अगले हाथ में पकड़ कर प्रयोग करने

वाला उसके बायें हाथ की हथेली पर से ऊपर ले जाकर उसका सिरा उस जगह लगाता है कि जहां सिर में उँगलियां लगा रखी हैं। इसके बाद वेधनिका की मूठ कुछ पिछली ओर करने से उसका सिरा सिर पर प्राय. लम्ब की रेखा में आ जाता है। इसके बाद साधारण ज़ोर से छेद करने योग्य अथवा स्क्रू घुमाने के समान जब वेधनिका को गति दी जाती है, तब हड्डियों में छेद हो जाता है, और वेधनिका यहां तक भीतर प्रविष्ट की जाती है जब तक उसके कंधे का भाग सिर की खाल में न लग जावे। इसके बाद जब उसकी दोनों मूठें एक जगह लाई जाती हैं, तब सिरे एक दूसरे से दूर होकर छेद बड़ा हो जाता है। इतनी देर तक बाया हाथ पहले के ही स्थान में रहता है, और उससे इस बात का विश्वास किया जाता है कि, अन्य किसी जगह तो छेद नहीं हो रहा है। इसके बाद फिर सिरे बन्द करके, वेधनिका को बाहर खींच कर घुमाते हैं, और उसके काटने वाले फलों की दिशा बदली जाती है, और फिर उसको गति देकर उसके सिरे एक दूसरे से दूर किये जाते हैं। इससे पहले छेद के समकोण एक दूसरा छेद हो जाता है। इसके बाद फिर सिरों को बन्द करके वेधनिका को सिर के अन्दर चारों ओर से घुमाते हैं विशेषतया वेधनिका का सिरा नीचे ले जाकर गर्भ के मेडयुला आबलांगेटा का भी नाश कर डालना चाहिये इससे गर्भ बिलकुल मर जायगा, इतना हो चुकने पर वेधनिका धीरे से बाहर निकाली जाती है। वेधनिका जिस समय भीतर

घुमाई जाती है, उस समय ज़ोर बिलकुल नहीं लगाया जाता क्योंकि अधिक जोर करने से सिर की दूसरी ओर छेद हो जाने की सम्भावना रहती है।

कभी कभी वधनिका को बाहर निकालने के बाद सिर के भीतरी भाग में पानी की धार छोड़ कर सारे भेजे को बाहर निकल आने देते हैं। ऐसा करने करने से भेजा भीतर बिलकुल वाकी नहीं रहता, और इससे सिर को दाब कर उसे सहज ही में छोटा कर सकते है।

क्रेनियोटमी फार्सेप्स से सिर खींचना।

इसके बाद बायां हाथ योनिमार्ग में डाल कर उसकी उग लिया गभ के सिर में किये हुये छेद पर रखी जाती है। इसके बाद क्रेनियोटमी फार्सेप्स का ठोस फल पहले लेकर, उसको बाय हाथ में लगा कर, सिर में किये हुए छेद में डाला जाता है। और उसके दांतों की बाजू गर्भ के शिर. पृष्ठ के भाग की ओर अथवा कपाल के भाग की ओर करके, उस फल को, जितना भी वह अन्दर जा सके, जाने देते हैं। इसके बाद बाहर का छिद्रवाला फल लेकर, उसको सिर के बाहर से इस प्रकार भीतर डालते हैं, कि जिससे वह भीतर गये हुये फल के बरा वर बैठ जावे। इसके बाद, जबकि दोनों फल एक जगह हो जाते हैं, उनको स्क्रू के द्वारा एक ही जगह मजबूती से बैठा देते हैं, फिर शरीर के आसार की दिशा से सिर को बाहर

खींचते हैं, इतने में वह बाहर आ जाता है। खींचते समय यदि हड्डियों का कोई भाग टूट आता है, तो यह चिमटा फिर निकाल कर उसका फिर लगाते हैं, और सिर का दूसरा भाग पकड़ कर खींचते हैं। इस रीति से हड्डियों के टुकड़े जब बाहर खींचे जाते हैं, तब यदि उनके ऊपर से हाथ रख कर उनको खींचते हैं, तो आस पास के मृदु भागों को हानि नहीं पहुँचती।

इस रीति से सिर की हड्डियां के टुकड़े टुकड़े करके जब उनको बाहर खींचना पड़ता है, तब इस चिमटे का बाहरी फल, सिर की हड्डियों और सिर की त्वचा के बीच में डालते हैं, और फिर सिर की हड्डियों के टुकड़े ज्यों ज्यों टूटते आते हैं त्यों त्यों उनको बाहर निकालते जाते हैं। इस प्रयोग क्रनियाक्लाजम (Cranioclasm) कहते हैं।

कभी कभी सिर में छेद हो चुकने के बाद उसको क्रेनि टमी फासप्स से पकड़ कर बाहर नहीं निकालते, किंतु केफ लोट्राइब (Cephalotribe) नामक एक चिमटे के द्वारा सिर पकड़ कर, उसको खींच निकालने की चाल है। इसके दोनों फल मामूली चिमटों की भांति ही सिर के बाहर से लगाये जाते हैं। क्रेनियोटमी फासप्स की भांति एक फल सिर में किये हुए छेद के अन्दर नहीं डालते।

गर्भकर्त्तन (Embryotamy एम्ब्रियोटमी) गर्भ शरीर के भिन्न भागों के टुकड़े टुकड़े करके उनको निकालना, तिरछीन जनन के स्कन्ध दर्शन में प्रायः करनी

घुमाई जाती है, उस समय ज़ोर बिलकुल नहीं लगाया जाता क्योंकि अधिक जोर करने से सिर की दूसरी ओर छेद हो जाने की सम्भावना रहती है।

कभी कभी वधनिका को बाहर निकालने के बाद सिर के भीतरी भाग में पानी की धार छोड़ कर सारे भेजे को बाहर निकल आने देते हैं। ऐसा करने करने से भेजा भीतर बिलकुल बाकी नहीं रहता, और इससे सिर को दाब कर उसे सहज ही में छोटा कर सकते है।

क्रेनियोटमी फार्सेप्स से सिर खींचना।

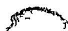
इसके बाद बायां हाथ योनिमार्ग में डाल कर उसको उंगलिया गर्भ के सिर में किये हुये छेद पर रखी जाती है। इसके बाद क्रेनियोटमी फार्सेप्स का ठोस फल पहले लेकर, उसको बायें हाथ में लगा कर, सिर में किये हुए छेद में डाला जाता है। और उसके दांतों की बाजू गर्भ के शिर. पृष्ठ के भाग की ओर अथवा कपाल के भाग की ओर करके, उस फल को, जितना भी वह अन्दर जा सके, जाने देते हैं। इसके बाद बाहर का छिद्रवाला फल लेकर, उसको सिर के बाहर से इस प्रकार भीतर डालते हैं, कि जिससे वह भीतर गये हुये फल के बराबर बैठ जावे। इसके बाद, जबकि दोनों फल एक जगह हो जाते हैं, उनको स्क्रू के द्वारा एक ही जगह मज़बूती से बैठा देते हैं, और फिर शरीर के आसार की दिशा से सिर को बाहर

खींचते हैं, इतने में वह बाहर आ जाता है। खींचते समय यदि हड्डियों का कोई भाग टूट आता है, तो यह चिमटा फिर निकाल कर उसका फिर लगाते है, और सिर का दूसरा भाग पकड़ कर खींचते हैं। इस रीति से हड्डियों के टुकड़े जब बाहर खींचे जाते है, तब यदि उनके ऊपर से हाथ रख कर उनको खींचते हैं, तो आस पास के मृदु भाग को हानि नहीं पहुँचती।

इस रीति से सिर की हड्डिया के टुकड़े टुकड़े करके जब उनको बाहर खींचना पड़ता है, तब इस चिमटे का बाहरी फल, सिर की हड्डियों और सिर को त्वचा के बीच में डालते है, और फिर सिर की हड्डियों के टुकड़े ज्यों ज्यों टूटते आते है, त्यों त्यों उनको बाहर निकालते जाते है। इस प्रयोग को क्रेनियाक्लाज़्म (Cranioclasm) कहते है।

कभी कभी सिर में छेद हो चुकने के बाद उसको केनियोटमी फार्सेप्स से पकड़ कर बाहर नहीं निकालते, किन्तु केफालोट्राइब (Cephalotribe) नामक एक चिमटे के द्वारा सिरको पकड़ कर, उसको खींच निकालने की चाल है। इसके दोनों फल मामूली चिमटों की भांति ही सिर के बाहर से लगाये जाते हैं। क्रेनियोटमी फार्सेप्स की भांति एक फल सिर में किये हुए छेद के अन्दर नहीं डालते।

गर्भोत्कर्त्तन (Embryotamy एम्ब्रियोटमी -) गर्भ के शरीर के भिन्न भागों के टुकड़े टुकड़े करके उनको बाहर निकालना, तिरछीन जनन के स्कन्ध दर्शन में कभी कभी यह



को घुमा कर निकालने की क्रिया से भी प्रसूति नहीं कराई जा सकती। क्योंकि गर्भाशय गर्भ के आस पास अत्यन्त ज़ोर से आकुचन को प्राप्त रहता है, और गर्भोदक को बाहर निकले भी बहुत समय हो जाता है। इस कारण पैर खींच कर बच्चे को घुमा नहीं सकते। कभी कभी बच्चा मर कर सड़ने भी लगता है, इस कारण जब पैर पकड़ कर खीचने लगते हैं, तब वह शरीर से अलग होकर निकल आता है। यदि गर्भ की गर्दन तक हम पहुँच सकते हैं, अथवा बच्चा मर जाता है, तो ग्रीवाच्छेद (De capitationडीक्यापिटेशन) का शस्त्र प्रयोग किया जाता है। ऐसे समय में बच्चे को घुमा कर निकालने के लिये अत्यन्त जोरसेखींचने की अपेक्षा उपर्युक्त प्रयोग करना ही अधिक श्रेयस्कर है। क्योंकि ऐसी दशा में अत्यन्त ज़ोर करने से गर्भाशय के फट जाने की भी सम्भावना रहती है। विशेष कर यदि कंधा योनि मार्ग में आकर अटक जावे, और हाथ बाहर निकल आवे, तो घुमाने के प्रयोग का प्रयत्न न करना चाहिये।

इस प्रयोग के लिये लम्बी मूठ का अर्ध चन्द्राकृति फल का एक शस्त्र होता है, उसी का उपयोग करते हैं। उसे ग्रीवाच्छेदक(De capitating Hookडीक्यापिटेटिंग हुक) कहते हैं।

गर्भ-ग्रीवाच्छेद करने की रीति-पहले बाहर आये हुये हाथ को खींच कर फिर कधे को जितना नीचे ला सकते हैं, उतना खींचते हैं। इस के बाद गर्भाशय की ग्रीवा से बायां

हाथ भीतर डाल कर उँगलियों को गर्भ की गर्दन तक पहुंचाते हैं, और फिर ग्रीवाच्छेदक को, भीतर डाली हुई हथेली पर से, गर्भ की गर्दन के अगले भाग तक ले जाते हैं। इसके बाद उस का सिरा पिछली ओर घुमा कर उसके फल को गर्दन पर लाते हैं, और उँगली से यह देखते हैं कि, गर्दन की दूसरी ओर ग्रीवाच्छेदक का सिरा आया है, अथवा नहीं। यदि यह ठीक होता है, तो दाहने हाथ से ग्रीवाच्छेदक की मूठ, आगे पीछे हिलाते हुये, धीरे धीरे, परन्तु जोर के साथ, नीचे खींचते हैं, इस रीति से गर्दन काटी जाती है। काटते समय यह भी देखना पड़ता है कि वह ठीक ठीक दिशा से काटी जाती है अथवा नहीं। अन्यथा काटने की दिशा कभी कभी पिछली ओर चली जाती है, जिस से कंधे का भी कुछ भाग कट जाने की सम्भावना रहती है। काटना जब समाप्त होने पर हो, तब अन्तिम भाग बहुत धीरे धीरे और हलके हाथ से ही काटना चाहिये। अन्यथा ग्रीवाच्छेदक एक दम चूक जायगा और इससे प्रसववती के मृदु भाग को भी हानि पहुंचे बिना न रहेगी। ग्रीवाच्छेदक का सिरा पिछली ओर को करने का कारण यही है कि, आगे की ओर उसके रहने से मूत्राशय को हानि पहुंचने की सम्भावना रहती है।

गर्दन जब कट जाती है, तब गर्भ के शरीर का भाग, हाथ से बाहर खींचने पर, अच्छी तरह से बाहर आजाता है। हां, कटा हुआ सिर अवश्य ही किसी न किसी प्रकार बाहर निका-

इस प्रयोग के अवसरः--

(१) कटीर का आकुंजन जब साधारण परिमाण में होता है, तब यह प्रयोग बच्चेका जीव बचानेके लिये किया जाताहै।

(२) गर्भावस्था के भिन्न भिन्न विकारों में माता के प्राण बचाने के लिये यह प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ-झटके मूत्रपिंड के रोग, हृदय और फेफड़ो के तीव्र रोग, गर्भोदक का अधिक संचय, कम्पवात, अतिशय नीरक्तता, जलोदर, ग्रीवा में हुए व्रणों का होना, इत्यादि।

(३) सगर्भावस्था के अन्त के दो महीनों में यदि प्रत्येक गर्भावस्था में गर्भ मर जाता है और इस स्थिति का कारण यदि उपदंश हो, तो अकालिक प्रसूति कराने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि इस विकारके गर्भप्राय नहींबचते। इसलिये यदि उपदंश काही कारण हो तो गर्भ के जीवित रहने के लिये उपदंश की औषधि देनी चाहिये। परन्तु यदि इस कारण के अतिरिक्त नीरक्तता के समान कोई दूसरा कारण हो, तो यह प्रयोग उस समय के कुछ पहले करना चाहिये, जब कि पहले की गर्भावस्था में गर्भ मरता हो।

इस प्रयोग की रीति-(१) योनिमार्ग का पानी से धोना गरमपानी लगभग १०५,-११५, अंशफा०का लेना चाहिये,और उसी से योनिमार्ग को धो डालना चाहिये। इससे योनिमार्ग कुछ तन जाता है, और गर्भाशय के मुख में उष्णता लगने के कारण गर्भाशय भी आकुंचित होता है। इसके अतिरिक्त यंनि-

मार्ग के धोते समय कुछ गरम पानी ग्रीवा में जाता है। और ग्रीवान्तर्मुख के समीप थोड़ी सी जगहमें गर्भकोश भी गर्भाशय से छूटते हैं। यह प्रयोग दीवाल में टांग रखने वाले इरिगेटर से करनाचाहिये। उसकी नलीके सिरेके पास कार्क रहना चाहिये। स्त्री को उताना पड़ाना चाहिये। और इरिगेटर में लगभग एक गेलन पानी डालना चाहिये। नली की सारी हवा जब चली जाय और पानी बाहर निकलने लगे, तब कार्क बन्द करके नली का सिरा योनिमार्ग में डाल देवे, और फिर कार्क को हटावे। यह प्रयोग पहले प्रति तीन अथवा चार घंटे में करना चाहिये। और फिर बाद को यदि आवश्यकता जान पड़े, तो अधिक जल्दी जल्दी करना चाहिये।

यह रीति बिलकुल सुरक्षित हैं, परन्तु बहुत कष्टदायक है, और साथ ही विश्वसनीय नहीं। इसीलिये इसका बहुत प्रचार भी नहीं है। परन्तु बहुत बार अन्य रीति से इस प्रयोग के करते समय इस रीति से प्रथम योनिमार्ग धोकर ग्रीवा को मुलायम और चौड़ी होने देते हैं।

(२) गर्भोदककोश फोड़ना-यह रीति विश्वसनीय है। क्योंकि इसके करने पर प्राय समय पर प्रसूति होनी ही चाहिये। इस प्रयोग से स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं होता। परन्तु इस प्रयोग के करने से, गर्भोदक कोश की थैली का जो ग्रीवा के चौड़ी करने में पत्थर के समान उपयोग होता है, सो नहीं होता। इसलिये प्रसूति में अवश्य कष्ट होता है।

इस प्रयोग के अवसरः--

(१) कटीर का आकुंजन जब साधारण परिमाण में होता है, तब यह प्रयोग बच्चेका जीव बचानेके लिये कियाजाताहै।

(२) गर्भावस्था के भिन्न भिन्न विकारों में माता के प्राण बचाने के लिये यह प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ-झटके, मूत्रपिंड के रोग, हृदय और फेफड़ो के तीव्र रोग, गर्भोदक का अधिक संचय, कम्पवात, अतिशय नीरक्तता, जलोदर, ग्रीवा में दुष्ट व्रणों का होना, इत्यादि।

(३) सगर्भावस्था के अन्त के दो महीनों में यदि प्रत्येक गर्भावस्था में गर्भ मर जाता है और इस स्थिति का कारण यदि उपदंश हो, तो अकालिक प्रसूति कराने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि इस विकारके गर्भप्राय. नहींबचते। इसलिये यदि उपदंश काही कारण हो तो गर्भ के जीवित रहने के लिये उपदंश की औषधि देनी चाहिये। परन्तु यदि इस कारण के अतिरिक्त नीरक्तता के समान कोई दूसरा कारण हो, तो यह प्रयोग उस समय के कुछ पहले करना चाहिये, जब कि पहले की गर्भावस्था में गर्भ मरता हो।

इस प्रयोग की रीति-(१) योनिमार्ग का पानी से धोना गरमपानी लगभग १०५-११५ अंशफा०का लेना चाहिये,और उसी से योनिमार्ग को डालना चाहिये। इससे योनिमार्ग कुछ तन जाता है, और गर्भाशय के मुख में उष्णता लगने के कारण गर्भाशय भी आकुंचित होता है। इसके अतिरिक्त यं.लि-

र्ग के धोते समय कुछ गरम पानी ग्रीवा में जाता है। और ग्रीवान्तर्मुख के समीप थोड़ी सी जगहमें गर्भ कोश भी गर्भाशय से छूटते हैं। यह प्रयोग दीवाल में टाग रखने वाले इरिगेटर से करनाचाहिये। उसकी नलीके सिरेके पास कार्क रहना चाहिये। स्त्री को उताना पड़ाना चाहिये। और इरिगेटर में लगभग एक गेलन पानी डालना चाहिये। नली की सारी हवा जब चली जाय और पानी बाहर निकलने लगे, तब कार्क बन्द करके नली का सिरा योनिमार्ग में डाल देवे, और फिर कार्क को हटावे। यह प्रयोग पहले प्रति तीन अथवा चार घंटे में करना चाहिये। और फिर बाद को यदि आवश्यकता जान पड़े, तो अधिक जल्दी जल्दी करना चाहिये।

यह रीति बिल्कुल सुरक्षित है, परन्तु बहुत कष्टदायक है, और साथ ही विश्वसनीय नहीं। इसीलिये इसका बहुत प्रचार भी नहीं है। परन्तु बहुत बार अन्य रीति से इस प्रयोग के करते समय इस रीति से प्रथम योनिमार्ग धोकर ग्रीवा को मुलायम और चौड़ी होने देते हैं।

(२) गर्भोदककोश फोड़ना-यह रीति विश्वसनीय है। क्योंकि इसके करने पर प्राय समय पर प्रसूति होनी ही चाहिये। इस प्रयोग से स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं होता। परन्तु इस प्रयोग के करने से, गर्भोदक कोश की थैली का जो ग्रीवा के चौड़ी करने में पत्थर के समान उपयोग होता है, वो नहीं होता। इसलिये प्रसूति में अवश्य कष्ट होता है।

परन्तु झटके और आकस्मिक रक्तस्राव के समान विकारों में जब प्रसूति शीघ्र करनी होती है, तब यह रीति अमल में लाते हैं। इस रीति में यदि ग्रीवा और चौड़ी कर ली जाय, तो प्रसूति बहुत जल्द हो सकती है।

(३)एक मुलायम लचीली लकड़ी का गर्भाशय में डालना-कोई मुलायम जाति की मूत्रोत्सर्जक नलिका लेकर उसको गर्भाशय और गर्भकोश के बीच में धीरे धीरे सरकाना चाहिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि, यह नलिका यदि जरायु और गर्भाशय के बीच में जायगी, तो रक्तस्राव होगा। परन्तु यदि ग्रीवा बहिर्मुख से ७ इंच की अपेक्षा अधिक आगे न बढ़ेगी, तो वैसा होने की सम्भावना नहीं रहेगी। इसके सिवाय कभी कभी उस नलिका के भीतर डालते समय गर्भोदक कोश के भी फूटने की सम्भावना रहती है। इस रीति से प्रसूति के प्रारम्भ होने में लगभग २४ घंटे लगते हैं और प्रसूति ४८ घंटे में पूर्ण होती है। इस रीति को प्रारम्भ करने के पहले, जैसा कि हमने पहले बतलाया है, गरम पानी की पिचकारी देनी चाहिये। नलिका को डालने के पहले उसको प्रथम गरम पानी में भिगोकर मुलायम होने देना चाहिये। इसके सिवाय अपने हाथ, योनिमार्ग और नलिका को जन्तुनाशक औषधि से धोना भी चाहिये। यह प्रयोग करते समय पहले स्त्री को बाईं करवट से पड़ना चाहिये, और नलिका को उंगली में पकड़ कर धीरे धीरे भीतर जाने देना चाहिये। यह प्राय गर्भाशय की पुलाई की

पिछली ओर से सहज ही में ऊपर जा सकती है। गर्भाशय में नलिका के जाने के बाद स्त्री को उताना लेटने देना चाहिये। लगभग ७ इंच तक भीतर जाने पर उसको वहीं बाध रखना चाहिये। इस रीति से प्राय कुछ रक्त के बूंद बाहर आते हैं परन्तु यदि रक्तस्राव अधिक होने लगे तो यह समझ करके, कि झिल्लियां छूटने लगी हैं, नलिका को अधिक भीतर न जाने देना चाहिये और गर्भोदक कोश को तुरन्त ही फोड़कर प्रसूति के शीघ्र होने में सहायता करनी चाहिये। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, तदनुसार नलिका को भीतर रखने पर यदि २४ घंटे के अन्दर प्रसूति न हो, तो दूसरे दिन उस नलिका को निकाल डालना चाहिये, और दूसरी नली गर्भाशय की दूसरी ओर से भीतर डालनी चाहिये। प्रसूति के प्रारम्भ के बाद यदि पहली अवस्था में ही बहुत समय लगने लगे तो ग्रीवा को चौड़ा करके किसी न किसी रीति से प्रसूति को शीघ्र होने देना चाहिये।

(४) ग्रीवा चौडी करना—जन्तु नाशक पद्धति के अनुसार बहुत सावधानी पूर्वक तैयारी करके पूर्वोक्त भिन्न भिन्न रीतियों से ग्रीवा को चौड़ा करना चाहिये। यदि आवश्यकता जान पड़े, तो इस समय क्लोरोफार्म सुंघाना चाहिये।

(५) भिन्न भिन्न औषधियां खिलाना।

(६) बिजली का उपयोग करना।

(७) गर्भाशय में भिन्न भिन्न पदार्थों का अन्त क्षेप करना।

उदाहरणार्थ गरम पानी, ग्लिसरीन, इत्यादि। इन पदार्थों को भीतर डालते समय हवा को भीतर जाने न देना चाहिये।

(८) रबर की थैलियों में पानी डाल कर उनके द्वारा योनिमार्ग को चौड़ा करना। परन्तु यह रीति विश्वसनीय नहीं है।

उपर्युक्त प्रयोगों से अकालिक प्रसूति कराने के बाद पैदा हुये बच्चे की व्यवस्था—बच्चा जितना कम दिन का होता है, उतनी ही उसकी व्यवस्था भी कठिन होती है। मुख्य बात यह है कि उसे हवा और ठंढक से बचाना चाहिये। जाड़े में अथवा बरसात में ज्योंही बच्चा पैदा हो, त्योंही उसके शरीर के आस पास रुई की गद्दियां लपेट देनी चाहियें, और उसको गरम कपड़े में लपेट कर गरम जगह में रखना चाहियें, और पास ही एक अंगीठी भी रखनी चाहियें। जब उसको स्नान कराया जाय, तब भी हवा न लगने देना चाहियें पहले पहल यदि वह माता के स्तनों से दूध खींच न सकता हो, तो स्वयं माता का दूध निकाल कर चमचे के द्वारा उसे पिलाना चाहिये।

चिमटा।

चिमटे से बच्चे का सिर खींचकर प्रसूति कराना—Delivery by Application of Forceps (डेलिवरी बाई अप्लिकेशन आफ फार्सेप्स) पहले पहल सन् १६२५ ई० के लगभग पीटर चेम्बरलेन नामक एक आविष्कारक ने यह शस्त्र ढूढ़ निकाला, और उसने

तथा उसके लड़कों ने कई वर्ष तक इसको गुप्त रखा। परन्तु धीरे धीरे इसकी गुप्तता दूर होती गई, और सन् १७३५ ई० में चेपमेन नामक एक महाशयने अपने सूतिका शास्त्र नामक ग्रन्थ में इसका सचित्र वर्णन प्रकाशित किया।

छोटा चिमटा।

यह चिमटा नामक शस्त्र दो प्रकार का होता है। एक छोटा चिमटा और एक बड़ा चिमटा। छोटे चिमटे का उपयोग उस समय होता है, जब गर्भ का सिर बहुत नीचे आजाता है और लम्बे चिमटे का प्रयोग उस समय करते हैं, जब सिर प्रवेशमार्ग में ऊपर अटक जाता है।

चिमटे के उपयोग भी खास कर दो प्रकार के होते हैं—(१) चिमटे से खींचना, और (२) चिमटे से सिर दाबना। इन दोनों उपयोगों में से पहला उपयोग अधिक महत्व का है। दूसरे उपयोग से कभी कभी हानि ही पहुचती है।

बढ़िया चिमटा निम्न लिखित रीति का होना चाहिये—सच तो यह है कि नाजुक चिमटे की अपेक्षा मजबूत चिमटा अच्छा होता है। उसके फल साधारणतया लम्बे होने चाहिये। न्यून से न्यून पाच इञ्च की अपेक्षा कम न होने चाहियें। वे लचलचीले न होने चाहिये परन्तु बहुत मोटे भी न होने चाहिये। इसके फल में सिर के लिये जो झुकाव रहता है, वह मध्यम होना चाहिये। अर्थात् ६ इञ्चमध्य रेखा के वृत्त के घेरे के झुकाव

और गर्भ के बीच में सरकावे। इसके बाद चिमटे का निचला फल, जैसा कि पहले बतलाया है गरम करके और उसमें तेल लगाकर उसको दाहने हाथके अंगूठे और अन्य दो तीन उंगलियोंके बीच में, खूब मजे के साथ मूठ के सिरे के पास पकड़ें। इसके बाद भीतर डाले हुये हाथ की हथेली की ओर की बाज से उसका फल भीतर डाले। उसका सिरा अपनी उंगलियों के सिरों और गर्भ के सिर के बीच में जाने दे। उसको जब भीतर डाले, तब उसकी मूठ पहले कुछ ऊंची करके कुछ अगली ओर ले जावे और ज्यों ज्यों फल आगे जावे त्यों त्यों मूठ पिछली ओर को ले जावे। फल को भीतर डालते समय जोर कभी न करे। उसकी मूठ खूब मजे के साथ पकड़े। यदि आगे न जावे तो उसकी दिशा बदल दे इससे वह सहज ही आगे चला जायगा। इस प्रकार जब एक फल भीतर चला जावे, तब उसकी मूठ पिछली ओर विटप पर रखे और वहीं उसको किसी दूसरे से पकड़ने को कहे।

पहला फल जब डाल चुके, तब उसी रीति से दूसरा फल भीतर डाले। इस फल को डालते समय उसकी मूठ ऊंची करने के स्थान में नीची करे।

उपर्युक्त रीति से जब दोनों फल भीतर डाल लेवे, तब उनको एक दूसरे की पकड़ में बैठावे। पकड़ में बैठाते समय वे समान सपाट पर रहने चाहियें। पकड़ यदि भली भांति

बैठगी न हो तो फलों को आगे पीछे अथवा ऊपर नीचे करके ऐसी तजवीज करे कि वे पकड़ में बैठ जावें।

पकड़ के बैठ जाने पर फिर एक बार भीतर उंगली डालकर यह देखना चाहिये कि फल भीतर अच्छी तरह सिर के आस पास बैठे हैं, अथवा नहीं।

जब यह मालूम हो जावे कि सब ठीक है, तब खींचने के प्रयोग का प्रारम्भ करे। इस समय तक वेग यदि नियमित रूप से आते हों, तो वेगों के समय में ही खींचना चाहिये। यदि पहली प्रसूति हो, और अन्त अन्त में विटप के फटने का भय हो,तो वेगों के मध्यसमयमें खींचना चाहिये। यदि वेगोंका जोर बिल्कुल कम हो गया हो, और वे बहुत अन्तर से आते हों, तो उतने अन्तर से बीच बीच में खींचना चाहिये जितने अन्तर से वेग नियमित समय में आते हैं। यदि ग्रीवा अच्छी तरह चौड़ी नहीं हुई हो तो चिमटे से प्रसूति कराने में भी बहुत समय लगता है। यह प्रयोग करने में १० मिनिटों से लेकर एक घंटा अथवा कभी कभी दो घंटे भी लगते हैं।

चिमटा लगाने के बाद खींचते समय उसको कटीर के आकार की दिशा से खींचना चाहिये। कटीर के आकार का रुख प्रवेशमार्ग में पिछली ओर से और नीचे अगली ओर से होता है, इसलिये पहले नीचे और पिछली ओर के रुख से खींचना चाहिये। अर्थात् स्त्री की पिछली ओर चिमटे की मूठ करके खींचना चाहिये। इसके बाद खींचनेका रुख आगे करना

चाहिये। और अन्त में तो वह इतना आगे रहना चाहिये कि चिमटे की मूठ पेट की ओर आ जावे।

उपर्युक्त रीति से खींचा जा सके-इसलिये एक भिन्न प्रकार का चिमटा बना हुआ रहता है। उसे ऐक्सिस ट्रैक्शन फारसेप्स (Axix Traction Fordeps) कहते हैं।

चिमटे से खींचते समय समान दिशा से खींचना चाहिये ऊपर नीचे करते हुये नहीं खींचना चाहिये। परन्तु यदि यह जान पड़े कि एक दिशा से खींचने पर सिर नीचे नहीं आता, तो खींचने वाला अपनी इच्छा के अनुसार खींचने की दिशा बदल सकता है। इस विषय में ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता कि, खींचते समय कितने जोर से खींचना चाहिये। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत जोर करना माताकी प्रकृति के लिये ठीक नहीं। कभी कभी खींचनेमें दो दो भी लगते हैं। परन्तु वास्तव में सौ पौंड के वजन के जोर से अधिक वजन का जोर लगाना अच्छा नहीं।

जब सिर विटप के भीतरी ओर आजावे, तब खींचने की रीति बदलना चाहिये। अब खींचने में सिर्फ दाहना ही हाथ लगना चाहिये। और बायें हाथ से तने हुये विटप को दाब कर पकड़े, जिससे वह फटे नहीं। इसके बाद दाहने हाथ से बहुत धीरे धीरे और बहुत अन्तर से खींच कर सिर को आगे लेवे। सिर जब बिल्कुल बाहर आने लगे, तब खूब सावधानी के साथ और धीरे धीरे चिमटे की मूठ की दिशा पेट की ओर करे।

इसके बाद ठुड्डी ज्योंही विटप से बाहर निकले, त्योंही चिमटे के फल धीरे से निकाल लेवें।

शिर पृष्ठ यदि पीछे हो, तो चिमटा लगाने के पहिले बहुत देर ठहरना चाहिये। क्योंकि शायद कुछ समय बाद शिर पृष्ठ चक्रगति से आगे आ जावगा। परन्तु यदि उसके उस प्रकार आने की सम्भावना न हो, अथवा माता की प्रकृति से यह मालूम होता हो, कि अत्यन्त शीघ्र ही प्रसूतिका होना आवश्यक है, तो अवश्य ही चिमटे को उस स्थिति में लगाना चाहिये। मुख दर्शन में भी, जब ठुड्डी आगे होती है, चिमटे का उपयोग होता है। जहां तक हो सके, ऐसा करना चाहिये कि जिस से चिमटे के फल मुख पर न आवें। परन्तु ठुड्डी यदि पिछली ओर को हो, तो जहां तक हो सके, चिमटा लगाने के पहिले बहुत मार्ग प्रतीक्षा करनी चाहिये। इससे प्राय आप ही आप प्रसूति होती है। मस्तकदर्शन में यदि सिर बहुत ऊपर हो, तो बच्चे को घुमा कर निकालने का प्रयोग ही विशेष अच्छा होता है। परन्तु यदि गर्भाशय बहुत कड़ा हो, और इस कारण घुमाने का प्रयोग नहीं हो सकता हो, तो चिमटा लगा कर ही प्रसूति करानी चाहिये।

गर्भ का शरीर यदि पहले बाहर आजाता है, और सिर अटक रहता है, तो इस में भी चिमटा लगाते हैं। परन्तु बहुधा शरीर का भाग पीठ की दिशा से खींच कर और उसकी ठुड्डी नीचे खींच कर सिर बाहर निकाल सकते हैं। परन्तु शरीर

वैरूप्य के कुछ प्रकारों में पीछे से आने वाला सिर चिमटा से ही अच्छी तरह बाहर आता है।

बच्चे को घुमा कर बाहर निकालने का प्रयोग (दर्शन Version) बच्चे को घुमा कर निकालने का मतलब यह है कि गर्भ जिस दशा में है, उस दशा को बदल कर, अर्थात् उसका दर्शन भाग बदल कर दूसरे सिरे को ग्रीवामुख के पास लाना। इस प्रयोग के मुख्य प्रकार दो हैं। पहले प्रकार में ऐसा किया जाता है जिससे मस्तक-दर्शन हो, और दूसरे प्रकार में पाद दर्शन की तदबीर करते हैं। इनमें से प्रत्येक प्रकार की भिन्न भिन्न तीन रीतियां हैं। पहले प्रकार में यह प्रयोग सिर्फ बाहर से किया जा सकता है। दूसरे प्रकार में यह प्रयोग सिर्फ गर्भाशय में हाथ डाल कर किया जा सकता है। तीसरे प्रकार में यह प्रयोग भीतर से और बाहर से दोनों रीतियों से किया जा सकता है।

यह प्रयोग बहुत पुराना है। चिमटे के पहले से ही इसका प्रचार है।

इस प्रयोग की उपर्युक्त भिन्न भिन्न रीतियों में से एक ही दो विशेष महत्व की है। इस लिये सिर्फ उन्हीं का यहा पर वर्णन दिया गया है।

बच्चे को घुमा कर सिर को दर्शन भाग में लाना
(Cephalic Version के फालिक वर्शन)

बाहर की रीति-यह प्रयोग जिस समय किया जाय, उस समय गर्भोदककोश फूटा हुआ न होना चाहिये। गर्भाशय ढीला होना चाहिये। गर्भोदक में गर्भ सहज ही हिल सकना चाहिये। जिस समय प्रसूति को बहुत जल्द समाप्त करना आवश्यक हो उस समय यह प्रयोग न करना चाहिये। वास्तव में इस प्रयोग की अपेक्षा पैर नीचे लाने का प्रयोग सहज है, इसलिये इस प्रयोग का करने वाला यदि खूब चतुर हो, तभी उसको यह प्रयोग करना चाहिये। पहले प्रसववती को उताना लिटावे, उसके सिर के नीचे तकिया लगावे और जिस समय वेग न हो, उस समय एक हाथ से गर्भ का शिर गर्भाशय की निचली बाजू की ओर और गर्भ के कूले की ओर का भाग ऊपरी बाजू की ओर ढकेलना चाहिये। इस प्रकार से सिर जब नीचे ले आवे तब यदि ग्रीवा खूब चौड़ी हो गयी हो तब गर्भोदक कोश फोड़ कर प्रसूति का प्रारम्भ करे।

भीतरी और बाहरी रीति-मूत्राशय और मलमार्ग को खाली करना चाहिये। क्लोरोफार्म सुंघाना चाहिये। प्रसववती को बाईं करवट से अथवा उताना लिटाना चाहिये और हाथों से पेट के ऊपर से देखना चाहिये कि गर्भ का सिर और कूले कहां हैं। इसके बाद बायां हाथ योनिमार्ग में डाल कर उंगलियों से कंधे का वह भाग जो दर्शन भाग में रहता है कूले की दिशा से अर्थात् सिर की ओर से, लम्बाला ढकेलना चाहिये और बाहर

पहले प्रसववती को यांई करवट लिटाना चाहिये, और अपना वाम हस्त प्रथम जन्तु नाशक पद्धति से शुद्ध करके, गरम जन्तु नाशक जल में डबो कर, अथवा अँगीठी में सेंक कर गरम करना चाहिये। इसके बाद उसको गर्भाशय में डालना चाहिये। इस प्रयोग को करते समय क्लोरोफार्म यहां तक सुंघाया जाय कि जिस से उसका पूरा पूरा असर हो जाय। भीतर डालने के पहले बायें हाथ में कुहनियों तक कार्बोलिक तेल लगा लेना चाहिये, और योनि में भी बहुत सा कार्बोलिक तेल अथवा वेसलीन डाल लेना चाहिये। हाथ की पांचों उंगलियां एकत्र करके सारा हाथ धीरे धीरे योनि मार्ग में डालना चाहिये। ग्रीवा यदि भली भांति विस्तृत न हुई हो, तो उंगलियों से उसको तान कर धीरे धीरे विस्तृत कर लेनी चाहिये। इसके बाद भीतर के हाथ से यह टटोल कर, कि गर्भ का मुख किस ओर है, तब उसी ओर को हाथ आगे ले आना चाहिये। अर्थात् पेट और घुटने उसी ओर होते हैं। अपना हाथ यदि हम शिर पृष्ठ की ओर से डालेंगे, तो वह पीठ की ओर जायगा, और फिर घुटना नहीं मिलेगा। गर्भ का पैर पेट की ही ओर से खींचना होता है। पीठ की ओर से यदि उसे खींचे, तो वह नहीं खींचा जाता। और उस दशा में गर्भ भी घूम नहीं सकता इसके अतिरिक्त पीठ की ओर हाथ जाने के लिये वहां काफी स्थान भी नहीं रहता। बच्चे के बाहर निकले हुये हाथ का तलवा यदि अगले अङ्ग

ओर हो, तो यह समझना चाहिये कि उसका पेट भी अगले अङ्ग की ही ओर है। बच्चे के हाथ का तलवा यदि माता की पीठ की ओर घूमा हुआ हो, तो यह समझना चाहिये कि उस का पेट माता की पीठ की ओर है, और ऐसी दशा में अपना हाथ पिछले अङ्ग की ओर डालना चाहिये। इसके बाद भीतर गये हुये हाथ में गर्भ का घुटना लगेगा। उस घुटने में उंगली डाल कर उसको नीचे खींचना चाहिये। घुटने के पहले यदि पैर हाथ में लगे, तो उस को खींचने में भी कोई हानि नहीं। पैर को पकड़ कर उसको यहां तक नीचे खींचना चाहिये कि जब तक कूला ग्रीवा में न आजावे। बाहर के हाथ से यदि सिर को ऊपर ढकेलेंगे, तो इस कार्य में सहायता मिलेगी।

तिरछीन जनन में, कुछ सूतिकाशास्त्र-वेत्ताओं का यह मत है कि, यह प्रयोग करते समय, जो कंधा नीचे आया हो, उस के सामने का पैर पकड़ना चाहिये। परन्तु ऐसा करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। सच तो यह है कि जो पैर समीप हो, उसी का पकड़ कर खींचने से काम चल जाता है। कभी कभी बाहर निकले हुये हाथ में कुहनी के पास फीता भी बांध दिया जाता है, और इसके बाद पैर खींचने का प्रयोग किया जाता है। ऐसा करने से गर्भ के घूमते समय उसका हाथ सिर पर जाकर अटक नहीं रहता और इस कारण पीछे से सिर के बाहर आने में कठिनाई नहीं पड़ती। गर्भ के घुटने को उंगली से खींचने के बदले कभी कभी ब्लन्ट हुक *Blunt Hook*

नामक शस्त्र की योजना घुटने को खींचने के लिये की जाती है और कभी कभी भीतर गर्भ के घुटने में अथवा पैर में डोरी बांध कर भी खींचने में सहायता की जा सकती है।

कभी कभी पैर अथवा हाथ के पहचानने में भी कठिनाई उपस्थित होती है। कई बार ऐसा होता है कि जिसको हम पैर समझ कर बाहर खींच कर निकालना चाहते हैं, वह हाथ निकल आता है। हाथ और पैर का भेद निम्नलिखितअनुसार होता है। इसको ध्यान में रखने से प्रायः पैर पहचानने की कठिनाई उपस्थित नहीं होती। हाथों की उंगलियां पैरों की उंगलियों से कुछ लम्बी सी होती हैं। हाथ का अगूठा अन्य चार उंगलियों से बहुत कुछ अन्तर पर रहता है, और वह अन्य चार उंगलियों से एक ओर ले जाया जा सकता है। पैरों की पांचों उंगलियां छोटी और एक ही पंक्ति में होती हैं, और एक दूसरे के पास होती हैं, और अंगूठा अन्य उंगलियों से एक ओर नहीं ले जाया जा सकता। हाथों की उंगलियां तलुवों की ओर भली भांति बन्द की जा सकती हैं परन्तु पैरों की उंगलियां सिर्फ थोड़ी सी ही झुकती हैं और वे पैर के तलवे की ओर बन्द नहीं हो सकतो। हाथ की मुट्ठी जितनी बन्द होती है पैर की उतनी नहीं बन्द होती। पैरों में जैसा गुल्ला उठा होता है, वैसा हाथों में नहीं होता। इन्हीं चिन्हों से बहुधा पैर अथवा हाथ पहचाना जा सकता है।

घुटने और कुहनी में अन्तर इतना ही है कि कुहनी का

अपेक्षा घुटना अधिक विस्तीर्ण होता है, और घुटनों में दोनों ओर दो गोल हड्डियों का जोड़ रहता है, तथा बीच में दराज रहती है। उसके नीचे की ओर जो कटोरी सी गोल हड्डी रहती है, वह हिलती रहती है। कुहनियों में दोनों ओर हड्डियों के बारीक और नोकदार सिरे रहते है, और पिछली ओर मध्यभाग में एक तीसरी हड्डी का सिरा रहता है। यह सिरा हिलता नहीं। नियम यह है कि जो हाथ बाहर आया हो, उसके विरुद्ध ओर का घुटना अथवा पैर ऊपर से खींचना चाहिये, परन्तु यदि दोनों पैर मिलते हों, तो दोनों नीचे खींचने चाहिये। उनको पिछली ओर से न खींचना चाहिये, सो ऊपर बतला ही चुके हैं।

पैर नीचे आजावें, और बाहर आया हुआ हाथ ऊपर चला आवे, तथा बच्चा सीधा हो जावे-बस, घुमाने का काम खतम हो चुका। इसके बाद ज्यों ज्यों वेग आने जाते हे, त्यों त्यों बच्चा स्वाभाविक रीति से ही बाहर निकलता आता है। जहां शीघ्र ही बच्चे को निकालना आवश्यक हो, वहां पैरों को धीरे धीरे बाहर खींचते हुये निकालना चाहिये। पैरों के निकलते समय बच्चे का पेट माता की पीठ की ओर घूमा हुआ होना चाहिये। कूल्हे ज्यों ही निकलने लगें, त्यों ही बच्चे को थोड़ा सा बाई ओर को घुमा देना चाहिये, अर्थात् ऐसा करना चाहिये कि जिससे उसका पेट माता की दाहिनी जंघा की ओर घूम जाय, ऐसा करने से बच्चे का सिर कटीर के आड़े व्यास में आता है। इतने में

नाल बाहर आता है। उसको कुछ थोडा सा नीचे खींच कर बाईं अथवा दाहनी त्रिकनितम्ब-सन्धि की ओर हटा देना चाहिये। ऐसा करने से कटीर से बाहर आते समय नाल दब नहीं सकता। इसके बाद ज्यों ज्यों सिर नीचे आता जायगा त्यों वह अपना स्वाभाविक मार्ग पकड़ कर बाहर निकलेगा। सिर के बाहर निकलते समय यदि दोनों हाथ सिर पर अटके हों, तो धीरे से एक हाथ बच्चे की कांख में डाल कर उसकी कुहनी ढूढ़ निकालनी चाहिये। और कुहनी में उंगली डाल कर हाथ को नीचे निकाल लेना चाहिये। इस प्रकार दोनों हाथ क्रमशः निकाल लेने चाहिये। सारा प्रयोग जब समाप्त होजाय तब रीति के अनुसार जन्तुनाशक पद्धति से सब व्यवस्था करनी चाहिये।

जघनास्थिसन्धिच्छेदन।

जघनास्थिसन्धि के काटने का शस्त्र प्रयोग (Symphisiotamy सिंफिसिओटमी)—यह प्रयोग पहले पहल सन् १६५५ ई० में किया गया। इसके बाद वह सन् १७७७ ई० में हुआ। परन्तु सन् १८९१ तक इस प्रयोग का कुछ बहुत प्रचार न हुआ था। तब से फिर यह प्रयोग अब तक काफी परिमाण में किया जाने लगा है।

कटीर का सामने का व्यास यदि, लगभग पौने तीन इंच तक होता है, तो यह प्रयोग किया जाता है। इस लिए यह

प्रयोग कभी कभी सिज़ेरियन सेक्शन के बदले किया जाता है। इसी प्रकार चिमटे के योग से जब प्रसूति नहीं होती, तब बच्चे का बचाव करने के लिये क्रेनियोटमी के शस्त्र प्रयोग के स्थान में भी यह प्रयोग किया जाता है। कभी कभी क्रेनियोटमी का शस्त्रप्रयोग करने पर भी जब गर्भ बाहर नहीं निकाला जा सकता, तब भी यह प्रयोग किया जाता है। इस अन्तिम अवसर के अतिरिक्त यह शस्त्रप्रयोग सदैव बच्चे के प्राण बचाने के लिये ही किया जाता है। खास कर जब कटीर सब ओर से संकुचित हो जाता है, और आड़ा व्यास विशेष कम हो जाता है, तब यह प्रयोग किया जाता है।

इस प्रयोग को करने के बाद उन स्त्रियों को विशेष कष्ट होता है, जिनको कई बार प्रसूति हो चुकी है। प्रथम प्रसूति की स्त्रियों को उतना कष्ट नहीं होता।

प्रयोग करने के पहले की तैयारी—जघन और महाभगोष्ठ के ऊपर के सब बाल निकाल डालने चाहिये, और जघन तथा योनिमार्गको १००० में १ के परिमाण वाले मरक्युरिक परक्लोराइड के पानी से धो डालना चाहिये। गर्भाशय की ग्रीवा जहां तक हो सके, चौड़ी होने देना चाहिये। यदि चौड़ी न होती हो, पहले होती बतलाई हुई भिन्न भिन्न रीतियों से चौड़ी करना चाहिये।

इस प्रयोग के शस्त्र-चाकू, कैंची, चिमटा, रक्तवाहिनियों के मुख दाबने वाले चिमटे, झुकी हुई सूइयां, सूई पकड़ने

उदरच्छेदन ।

उदर और गर्भाशय में छेद कर के गर्भ को बाहर निकालना–(Caesarion Section सिजेरियन सेक्शन)–यह प्रयोग साधारण रीति से मनुष्यों को सहज ही सूझने योग्य है । जूलियस सीजर का जन्म इसी शस्त्र–प्रयोग से हुआ था, और कहते है कि, इसी कारण इस प्रयोग को उस का नाम दिया गया है । परन्तु जान पड़ता है कि प्रायः उस समय यह प्रयोग माता के मृत होजाने के बाद किया गया होगा । आज कल भी मध्य आफ्रिका में कुछ जङ्गली लोगों में इस प्रकार का प्रयोग किया जाता है । कुछ वर्ष पहले तक इस प्रयोग से प्राय. माता के प्राणों को बहुत खतरा था, अर्थात् उस समय लग भग ८४ फी सदी मातायें इस प्रयोग से मर जाती थीं । सन् १८७६ में पारो नामक सूति का शास्त्र वेत्ताने यह प्रयोग किया, और उसमें उसने गर्भाशय और अन्त फल सब निकाल डाले । इस नवीन शस्त्र प्रयोगसे काफी सफलता प्राप्त होने लगी । इसके बाद सन् १८८२ में उसी रीति से यह शस्त्र प्रयोग किया गया कि जिस रीति से आज कल किया जाता है । इसके बाद धीरे धीरे इसमें सुधार ही होता गया, और अब तो यह प्रयोग इतनी अच्छी तरह से होने लगा है कि, कभी कभी ऐसा भी जान पड़ता है कि, कदाचित क्रेनि योटमी का प्रयोग अब आगे बिल्कुल ही न करना पड़ेगा । सँगर की रीति के अनुसार जो

शस्त्र प्रयोग किया जाता है, उसमें विशेष कर गर्भाशय में भिन्न भिन्न प्रकार के टांके लगाये जाते हैं, इस से गर्भाशय में किया हुआ छेद इतनी अच्छी तरह से मिट जाता है कि सूति का स्राव पेरिटो नियम में बिल्कुल ही आ नहीं सकता।

इस प्रयोग के भिन्न भिन्न अवसर–यह प्रयोग उस दशा में किया जाता है कि जब कटीर अत्यन्त आकुंचित हो जाता है, अर्थात् जब सामने का व्यास लग भग ढाई इञ्च से भी कम हो जाता है। कटीर में गिल्टियां होना, ग्रीवा में केन्सर होना, अथवा ग्रीवा में व्रण हो जाने के कारण वह ऐसी हो जावे कि चौड़ी न की जा सके, इत्यादि। रोमन कैथौलिक देशों में धार्मिक भोलेपन के कारण, बच्चे को मारने का क्रेनियोटमी सम्बन्धी प्रयोग करने की अपेक्षा इसी प्रयोग को विशेष पसन्द करते हैं। इंगलैंड में बच्चे की अपेक्षा माता के प्राण विशेष महत्व पूर्ण मानते हैं। इस कारण् वहां क्रेनियोटमी का प्रयोग ही विशेष श्रेयस्कर समझा जाता है। परन्तु अब, जब से यह सहज प्रयोग हाथ आगया है, और इधर अकालिक प्रसूति करा कर भी जीवित बच्चा जब कि पैदा नहीं हो सकता, तथा इस प्रयोग के करने की सब प्रकार की सुविधा मौजूद है, तब क्रेनियोटमी का प्रयोग न करके वह भी यही प्रयोग विशेष किया जाता है, और इस प्रकार अब बच्चे के प्राणों का भी मूल्य वहाँ अधिक दिखलाया जाने लगा है।

पहले से निश्चय करके यदि यह प्रयोग

में किया जाय तो इसमें सफलता प्राप्त होती है। जबप्रसूति प्रारम्भ हुये बहुत समय होजाता है, तब इस प्रयोग से विशे सफलता नहीं होती। इस प्रयोग का उत्तम समय वही है कि जब प्रसूति तो शुरू हो जाय, परन्तु ग्रीवा पूर्ण तया विस्तृत ह कर गर्भोदक कोश फूटने न पावे।

शस्त्र—चाकू, कैंचियां, सादे चिमटे, बड़ी शुद्ध रक्तवाहिनियों के पकड़ने के चिमटे, छोटी रक्तवाहिनियों के पकड़ने के लग भग बारह चिमटे, डिरेक्टर, टेढी सुइयां, और उनको पकड़ने के चिमटे, स्पज पकड़ने के चिमटे, स्पंज, रूपे का तार, कोमिलाइ जड गट, रेशम का डोरा, और लग भग आधे इञ्च डायामेटर की रबर की लम्बी और मजबूत नली। इस प्रयोग में कम से कम तीन सहायक अवश्य होते हैं, एक बेहोशी की औषधि सुंघाने के लिये, दूसरा प्रयोग करने वाले के सामने खड़ा होकर गर्भाशय और अंतड़ियों इत्यादि को पकड़े रहने के लिये, और तीसरा बच्चा के निकलते ही उसको लेने के लिये और उसका श्वासोच्छ्वास यदि जारी नहीं होता, तो कृत्रिम रीति से उसे जारी करने के लिये। इसके अतिरिक्त और भी यदि कोई मनुष्य परिचारिका, दाई, इत्यादि होती है, तो उसकी भी स्पंज इत्यादि धो देने के लिये आवश्यकता रहती है।

जन्तु नाशक विषयक प्रबन्ध—योनिमार्ग पहले १००० में १ के परिमाण वाले मरक्युरिक पर क्लोराइड के पानी से धो डालना चाहिये, नाभि में लाय कर पोटाश डालकर उसको

स्वच्छ कर डालना चाहिये, जघन के बाल निकाल डालने चाहिये, और उदर का सारा भाग साबुन के पानी से धोकर स्वच्छ करना चाहिये, और १००० में १ के परिमाण वाले मरक्युरिक परक्लोराइड के पानी से धो डालना चाहिये। सम्पूर्ण शस्त्र खूब भली भांति शुद्ध किये हुये होने चाहियें, और प्रयोग करने वाले, मददकरने वाले, और दाई के हाथ भी, जैसा कि पहले बतला चुके हैं, जन्तु नाशक पद्धति से शुद्ध किये हुये होने चाहियें।

स्त्री को उताना लिटाना चाहिये। दो टेबल, एक आडा और एक खड़ा, अंग्रेजीके (T) इस अक्षरके समान रखने चाहिये, और प्रसववती का सिर आड़े टेबल पर रखने का प्रबन्ध करना चाहिये। कंधे के नीचे एक तकिया लगानी चाहिये और स्त्री के पेर उजेले की तरफ रखने चाहिये। उसके दोनों पर बेंडेज से एक जगह बांध कर उनको टेबल के पाये में बांध रखना चाहिये। इसी प्रकार पहुँचे के पास उसके हाथ भी टेबल में बांध देने चाहिये। इस से वह हाथ पैर हिला नहीं सकेगी। फिर चाहे उसे बेहोशी की औषधि कम ही क्यों न दी जाय।

क्लोरोफार्म के बदले ईथर का उपयोग करना अच्छा है, क्योंकि ईथर के प्रयोग से गर्भाशय अत्यन्त ढीला नहीं होता। गर्भाशय से बच्चा जब निकाल लिया जाय, उसके बाद बेहोशी की औषधि कम परिमाण में देनी चाहिये, इस से पीछे से गर्भाशय के आकुंचित होने में बाधा उपस्थित नहीं होगी।

प्रयोग करने की रीति–पहले मूत्रोत्सर्जक नलिका डाल कर मूत्र निकाल डालने के बाद पेट पर बीचों बीच छै इञ्च लम्बाई का छेद किया जाता है। इस छेद का ३ नाभि के ऊपर रहता है, और उस का नीचे का सिरा ज़घन के लग भग दो या तीन इञ्च ऊपर आता है। त्वचा को काट कर उसकी रक्तवाहिनियां बन्द करने के बाद रक्टाय स्नायु के बीच से छेद किया जाता है। इसके बाद पेरिटोनियम दिखाई देने लगता है उसको चिमटे से पकड़ कर थोड़ा काटना चाहिये जो छेद हो चुका है, उससे डिरेक्टर डाल कर बाद को त्वचा के छिद्र के समान उसमें भी छेद किया जाता है। प्राय. सम्पूर्ण छेदभर गर्भाशय पेरिटोनियम में लगा रहता है। परन्तु क्वचित् ऊपर की ओर अंतड़ी का भाग आया हुआ होता है। यदि ऐसा हो, तो मदद करने वाले को अपने दोनों हाथों से गर्भाशय को कुछ आगे ढकेलना चाहिये। नीचे की ओर से यदि छेद बड़ा करना हो, तो छेद के दोनों ओर से अपनी दोनों उंगलियां डाल कर उनके बीच से यदि छेद करेंगे, तो मूत्राशय, फिर चाहे वह बहुत ऊपर ही क्यों न हो, हमारी उंगलियों को मालूम होगा, क्योंकि प्रसूति में यदि बहुत समय लग जाता है, तो मूत्राशय बहुत ऊपर आ जाता है।

गर्भाशय में छेद करने के पहले एक गज लम्बाई की रबर की नली गर्भाशय के ऊपर से उसके पीछे डालते हैं। उसमें अतड़ियों का भाग न फॅसना चाहिये। कोई कोई यह नली

बच्चे के बाहर निकालने के बाद डालते हैं, और कोई कोई तो नली का उपयोग न करते हुये, सहायक के द्वारा दोनों हाथों से, दोनों ओर से, गर्भाशय को आगे खिंचवा कर, दबा कर, पकड़वाते हैं।

यहां तक यह प्रयोग धीरेधीरे करना होता है। परन्तु इसके आगे उसको बहुत जल्द खतम करना चाहिये। अब, सहायक द्वारा गर्भाशय को दोनों हाथोंसे बिलकुल बीचों बीच पकड़नेके बाद गर्भाशय में बाहर के छेद के बीचों बीच भीतर वहां तक छेद किया जाता है कि जहा तक गर्भ कोश न मिल जायें। गर्भकोश जब मिल जाते हैं, तब गर्भाशय और गर्भकोश के बीच में डिरेक्टर डाल कर गर्भाशय का छेद दोनों ओर से त्वचा के छेद के समान बड़ा किया जाता है। बच्चा यदि पूरा बढ़ा हुआ होता है, तो उसके सहज में निकलने में लगभग छे इंच के छेद की आवश्यकता होती है। रक्तस्राव प्राय बहुत नहीं होता, परन्तु यदि छेद के नीचे ही किन्हाई लगी होती है, तो अवश्य ही विशेष रक्तस्राव होने की सम्भावना रहती है। छेद के आधे भाग में ही यदि किन्हाई होती है, और निचला भाग खाली होता है, तो छेद को नीचे की ओर से बड़ा करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो किन्हाई को जल्दी जल्दी से बीचों बीच काट कर भीतर हाथ डाल कर बच्चा बाहर निकाला जाता है, और इसमें बाद किन्हाई को छुड़ा कर बाहर निकालते हैं। छेद को पूरा कर चुकने पर और किन्हाई यदि छेद की जगह पर न हो, तो

प्रयोग करने की रीति-पहले मूत्रोत्सर्जक नलिका डाल कर मूत्र निकाल डालने के बाद पेट पर बीचों बीच छै इञ्च लम्बाई का छेद किया जाता है। इस छेद का ३ नाभि के ऊपर रहता है, और उस का नीचे का सिरा जघन के लग भग दो या तीन इञ्च ऊपर आता है। त्वचा को काट कर उसकी रक्तवाहिनियां बन्द करने के बाद रक्टाय स्नायु के बीच से छेद किया जाता है। इसके बाद पेरिटोनियम दिखाई देने लगता है उसको चिमटे से पकड़ कर थोड़ा काटना चाहिये जो छेद हो चुका है, उससे डिरेक्टर डाल कर बाद को त्वचा के छिद्र के समान उसमें भी छेद किया जाता है। प्राय: सम्पूर्ण छेदभर गर्भाशय पेरिटोनियम में लगा रहता है। परन्तु क्वचित् ऊपर की ओर अतड़ी का भाग आया हुआ होता है। यदि ऐसा हो, तो मदद करने वाले को अपने दोनों हाथों से गर्भाशय को कुछ आगे ढकेलना चाहिये। नीचे की ओर से यदि छेद बड़ा करना हो, तो छेद के दोनों ओर से अपनी दोनों उंगलिया डाल कर उनके बीच से यदि छेद करेंगे, तो मूत्राशय, फिर चाहे वह बहुत ऊपर ही क्यों न हो, हमारी उंगलियों को मालूम होगा, क्योंकि प्रसूति में यदि बहुत समय लग जाता है, तो मूत्राशय बहुत ऊपर आ जाता है।

गर्भाशय में छेद करने के पहले एक गज लम्बाई की रबर की नली गर्भाशय के ऊपर से उसके पीछे डालते हैं। उसमें अतड़ियों का भाग न फँसना चाहिये। कोई कोई यह नली

रखना चाहिये, उसके घुटने के नीचे एक तकिया रखनी चाहिये और उसको बिल्कुल हिलने न देना चाहिये। आवश्यकता के समय मूत्रोत्सर्जक नलिको डालकर पेशाब निकाल डालना चाहिये, प्रयोग के बाद कम से कम बारह घंटे तक थोड़े से पानी के अतिरिक्त और कुछ भी खाने को न देना चाहिये। इसके बाद सिर्फ दूध पीने को देना चाहिये। कष्ट कम होने के लिये अफीमकी गुटिका योनिमार्गमें रखनी चाहिये। उससे यदि कष्ट कम न हो, तो मार्फिया की पिचकारी देनी चाहिये। प्रति दिन दो बार योनिमार्ग ५० में १ के परिणाम को कार्बोलिक एसिडके पानीसे धोना चाहिये। धोते समय भीतर पानी बहुत जोर से न जाने देना चाहिये। सूतिकास्रावमें यदि दुर्गन्ध आने लगे, तो बोरिक एसिड का पानी बनाकर उससे गर्भाशय धोना चाहिये। धोने के पश्चात् प्रत्येक बार एक गुटिका जिसमें आयडोफार्म दस ग्रेन रहे, योनिमार्ग में रख देनी चाहिये।

इस प्रयोग के बाद रक्तस्राव से कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है, अथवा कभी पेरिटोनायटिस हो जाता है।

कभी कभी स्त्री की मृत्यु होजाने पर भी यह प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु माता की मृत्यु के बाद कम से कम १५ मिनट के भीतर यदि यह प्रयोग किया जाता है, तो बच्चा जीवित रह सकता है। इसलिये यदि ऐसा ही मौका आजाय, तो समय पर जो शस्त्र पास हो, उससे यह प्रयोग करना चाहिये। बच्चे

रबर की नली का उपयोग यदि किया गया हो, तो अब उसको निकाल डालना चाहिये। पेरिटोनियम में विशेष कर डगलस के पाउच में यदि गर्भोदक अथवा रक्त गिर कर जमा हो गया हो, तो स्पंज से सब पोंछ डालना चाहिये। यह सब हो चुकने के बाद उदर के छेद में टांके लगाने चाहियें। ये टांके सिल्कवर्मगट्के होनेचाहियें। इसकेबाद सदैवकी भांतिघाव की व्यवस्था करके बैंडेज बांधदेनाचाहिये,औरउसको साधारण तया सात दिन तक खोलना न चाहिये। पेट के टांके दस दिन में निकालने चाहिये।

कुछ शस्त्रवैद्य गर्भाशय में छेद करने के पहले उसको ऊपर की ओर से उदर के बाहर खींच कर पकड़ते हैं। परन्तु यदि ऐसा किया जाता है, तो उदर का छेद बहुत बडा करना पड़ता है।

कभी कभी अंडवाहक नलिका इसलिये बांध डाली जाती है कि जिससे फिर सगर्भावस्था प्राप्त न हो। किन्तु इस कार्य से सगर्भावस्था बन्द हो ही जायगी, इसका कुछ ठीक नहीं। कभी कभी अंडवाहक नलिका कुछ अन्तर पर दो जगह बांध दी जाती है, और उस बन्धन के बीच का थोडा सा भाग काट कर निकाल डाला जाता है। परन्तु कहते हैं कि इस कृति से गर्भाशय-बाह्य गर्भ धारण होने का भय रहता है, परन्तु ऐसा होने का कोई उदाहरण अभी तक नहीं मिला।

प्रयोग के बाद की व्यवस्था—उस स्त्री को उताना लिटा

इसलिये स्तनपान के समय में यदि रजःस्राव प्रारम्भ हो जाय, स्तनपान तुरन्त ही बन्द कर देना चाहिये। जो स्त्रियां बच्चे को स्तनपान नहीं करातीं, उनको प्राय: तीन मास में रज स्राव होने लगता है।

सूतिका काल की व्यवस्था।

सूतिकाकाल में दो बातें विशेष महत्व की मानी जाती हैं–(१) स्वच्छता, (२) स्वस्थता। इसलिये इनकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इससे फिर प्राय किसी बात का डर नहीं रहता। इन दो बातों की ओर यदि ध्यान नहीं दिया जाता तो कोई न कोई भयंकर मौका जरूर आता है। फिर चाहे वह जल्दी आवे, अथवा देर से आवे।

दाई को ऐसी जगह सोना चाहिये कि जिससे वह जच्चा के पुकारते ही जाग उठे। दाई को चाहिये कि वह जच्चा को, सिर्फ अपनी ही कल्पना से कोई औषधि न दे। सूतिका की प्रकृति में जो अन्तर दिखाई दे, उसे दाई को डाक्टर से ठीक ठीक बतलाना चाहिये। हां जच्चा से उसको बतला कर व्यर्थ के लिये उसे डराना न चाहिये।

जैसा कि पिछले भाग में बतलाया है, तदनुसार प्रसूति के बाद माता की यथोचित व्यवस्था करने पर उसको दो तीन घंटे विश्रान्ति और निद्रा लेने देना चाहिये। सोने के पहले यदि वह कुछ खाने को मांगे, तो दूध या अन्य कोई हलका पौष्टिक पेय बादाम का हरीरा आदि देना चाहिये।

स्चार्ज कहते हैं। यह स्राव कभी कभी दस दिन बाद बन्द
जाता है। परन्तु कभी कभी यह महीने भर तक भी जारी
है। प्रथम तीन चार दिन तक यह स्राव रक्त का ही रहत
आगे चल कर धीरे धीरे उसका रंग कम होता जाता है
कुछ दिन बाद रक्त का भाग बिलकुल नहीं रहता।

यह स्राव धीरे धीरे कम होता जाता है। इस स्राव
एकाएक बन्द हो जाना कोई अच्छा लक्षण नहीं समझा जात
सूतिका स्राव में एक प्रकार की विचित्र महक आती रहत
परन्तु उसमें दुर्गन्धि नहीं होती।

प्रसूति होने के समय भी स्तनों में थोड़ा सा दूध रहत
परन्तु वास्तविक दूध तीसरे दिन से प्रारम्भ होता है।
समय जच्चा को ज्वर आता है, उसको दुग्धज्वर (Milk Fe
मिल्क फीवर) कहते हैं। इस समय स्तन बड़े होते हैं। वे
करके कठोर बन जाते हैं, और उनकी नसें तन कर के ऊपर
झलकने लगती हैं।

जो दूध पहले आता है, उसके गुण धर्म्म भिन्न होते
वह कुछ रेचक सा होता है, उसके योग से बच्चे का कोठा शु
होता है।

नौ मास तक बच्चे को स्तनपान करने देना चाहिये।
समय के बाद माता के दूध की अपेक्षा गौ का दूध तथा अ
खुराक उसके लिये अधिक लाभदायक होती है। जब तक स
पान होता रहता है, तब तक प्रायः रज स्राव बन्द रहता

कारण प्रसूति के अनन्तर होने वाली वेदनायें (वायगोले के वेग) बन्द हो जाती हैं। क्योंकि ये वेदनायें रक्त के गोलों के भीतर रह जाने के कारण ही होती हैं। इसके सिवाय स्तनपान के प्रयत्न से स्तनों के चूचुकों की रक्षा भी ठीक रहती है।

सूतिका स्त्री के कमरे में वायु का सचार काफी तौर से होना चाहिये। स्राव से भीगे हुये कपड़े और पहनने के रूमाल २००० में १ परिमाण वाले मरक्युरिक पर्क्लोराइड के पानी में भिगोकर धो डालने चाहियें। इसके बाद उनको सुखा कर गरम करके उपयोग में लाना चाहिये। पहनने के रूमाल जन्तु-नाशक औषधि में सदैव खौला करके साफ करने चाहिय। प्रसूति के बाद पहले चार दिन तक तीन तीन घटे के बाद उनको बदलना चाहिये। इसके बाद स्राव के परिमाण के अनुसार जल्दी जल्दी अथवा कुछ देर से बदलते रहना चाहिये। पहनने के रूमाल की जगह पर मरक्यूरिक पर्क्लोराइड डालकर तैयार किया हुआ रुई का गूंजा जननेन्द्रिय पर रखकर जघाओं के बीच से एक रूमाल उस पर बांध कर फिर उसका उदर बन्ध में आलपीनों से बैठाना चाहिये। यह रुई का गूंजा जब खराब हो जाय, तब उसको निकालकर जला डालना चाहिये, और उसकी जगह पर दूसरा लगा देना चाहिये। इससे अधूरा रूमाल फिर से भूलकर काम में लाये जाने का भय ... रूमाल बदलते समय प्रत्येक बार ...नाशक औषधि के गरम पानी से

प्रसूति के बाद प्रायः विशेषतः प्रथम प्रसूति के बाद, सर्वांग कांपने लगता है। यह स्थिति यद्यपि भयप्रद जान पड़ती है, परन्तु इससे कोई बुरा परिणाम नहीं होता, और आप ही आप शान्त हो जाती है। यह दशा प्राय, ज्ञानतन्तुओं को एकदम बहुत सी गति प्राप्त हो जाने के कारण होती है। ऐसे समय में स्त्री को एक कटोरी भर गुनगुना दूध या काफी देनी चाहिये। गरम पानी की बोतलें शरीर पर रखनी चाहियें। शरीर पर एक ओढना डाल देना चाहिये। इसके बाद यदि, फिर भी कंप हो तो अवश्य थर्मामेटर लगाकर यह देख लेना चाहिये कि बुखार कितना है। कुछ घटे उसे उताना लिटाना चाहिये। फिर कुछ देर बाद करवट से लिटाना चाहिये। उसको पहले आठ दस दिन तक बिलकुल पड़े ही रहना चाहिये। उठना बैठना भी न चाहिये। बहुत जल्द यदि उठने, बैठने लगेगी, तो रक्तस्राव प्रारम्भ हो जायगा, चक्कर आने लगेगा, अथवा एकाएक मृत्यु होने की भी सम्भावना रहेगी।

बच्चा जब सो करके उठे, तब बच्चे के मुह में स्तन देवे और उसको दूध पिलाने का प्रयत्न करे। ज्ञानतन्तुओं द्वारा गर्भाशय और स्तनों का सम्बन्ध होता है, अतएव स्तनपान के प्रयत्न से गर्भाशय के आकुंचित होने में सहायता मिलती है और इससे रक्तस्राव का भय नहीं रहता। इसके सिवाय स्तनपान के प्रयत्न से गर्भाशय भली भाति आकुंचित होता है, इससे भीतर रहे हुये रक्त के गोले सहज ही बाहर आजाते हैं और इस

कारण प्रसूति के अनन्तर होने वाली वेदनायें (वायगोले के वेग) बन्द हो जाती हैं। क्योंकि ये वेदनायें रक्त के गोलों के भीतर रह जाने के कारण ही होती हैं। इसके सिवाय स्तनपान के प्रयत्न से स्तनों के चूचुकों की रक्षा भी ठीक रहती है।

सूतिका स्त्री के कमरे में वायु का सचार काफी तौर से होना चाहिये। स्राव से भीगे हुये कपड़े और पहनने के रूमाल २००० में १ परिमाण वाले मरक्युरिक पर्क्लोराइड के पानी में भिगोकर धो डालने चाहियें। इसके बाद उनको सुखा कर गरम करके उपयोग में लाना चाहिये। पहनने के रूमाल जन्तु नाशक औषधि में सदैव खौला करके साफ करने चाहिये। प्रसूति के बाद पहले चार दिन तक तीन तीन घन्टे के बाद उनको बदलना चाहिये। इसके बाद स्राव के परिमाण के अनुसार जल्दी जल्दी अथवा कुछ देर से बदलते रहना चाहिये। पहनने के रूमाल की जगह पर मरक्यूरिक पर्क्लोराइड डालकर तैयार किया हुआ रुई का गूंजा जननेन्द्रिय पर रखकर जघाओं के बीच से एक रूमाल उस पर बाँध कर फिर उसको उदर बन्ध में आलपीनों से बैठाना चाहिये। वह रुई का गूंजा जब खराब हो जाय, तब उसको निकालकर जला डालना चाहिये, और उसकी जगह पर दूसरा लगा देना चाहिये। इससे अधूरा धोया हुआ रूमाल फिर से भूलकर काम में लाये जाने का भय नहीं रहता। पहनने का रूमाल बदलते समय प्रत्येक बार बाह्यजननेन्द्रियों को जन्तुनाशक औषधि के गरम पानी से

स्वच्छ करके धोना चाहिये। और यदि डाक्टर बतलावे तो उसी पानी से योनिमार्ग भी उसकी बतलाई हुई रीति के अनुसार धोना चाहिये। दाई को अपनी जिम्मेदारीपर योनिधावन न करना चाहिये। उसको यह ध्यान में रखना चाहिये कि कोई भी वस्तु जन्तुनाशक ओषधि से शुद्ध किये बिना जननेन्द्रिय पर न लगाई जाय। किसी प्रकार का भी अशुद्ध पदार्थ भीतर न जाने देना चाहिये। सूतिका स्त्री का शरीर, पहले तीन दिन तक, प्रतिदिन गरम पानी में फलालेन का कपड़ा भिगोकर पोंछ डालना चाहिये।

प्रति दिन सुबह और रात को बुखार नापना चाहिये, और नाडी देखनी चाहिये। यदि बुखार १०० फा० के ऊपर होगा तो संशय का कारण होगा, और उसमें यदि नाडी जल्दी चलती होगी, तो और भी अधिक संशय का कारण होगा। कुछ समय बुखार बढ़ना और कुछ समय कम होना ज्ञानेन्द्रियों के थोड़े से बिगाड़ के कारण भी होता है।

नाड़ी से शरीर की दशा अधिकांश में मालूम हो सकती है, इस लिये, उसकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। ६० से लेकर ८० वार तक यदि नाड़ी एक मिनट में चलती हो, तो भय का कोई कारण नहीं। प्रसूति के बाद यदि नाड़ी की धडकन १०० वार से ऊपर हो जाय, तो यह कहा जा सकता है कि रक्तस्राव शरू होगया और प्रसूतावस्था में आगे यदि ऐसा हुआ, और उस हालत में यदि बुखार अधिक न हुआ, तो यह

समझने में प्रत्यवाय नहीं कि कोई न कोई अन्तर्गत सन्ताप जन्य विकार हो गया है।

साधारणतया यदि नाडी प्रति मिनट १०० से कम और बुखार १०० अंश फा० के नीचे हो, तो यह समझना चाहिये कि, जच्चा की प्रकृति ठीक है।

जब कि सूतिका स्त्री को भोजन रुचता हो, और वह चीजें उसको देना, हो उस हालत में उस विषय में कोई नियम निर्बन्ध नहीं किया जा सकता। प्रसूति होते ही गरम दूध या कोई हल्का पौष्टिक अन्न घी के साथ, यदि उसकी इच्छा हो, तो देना चाहिये। पहले दो दिन भूख चूंकि विशेष नहीं लगती, इसलिये दूध के सामान पौष्टिक पेय ही उसके लिये काफी होंगे। यदि भूख अधिक हो, तो बदाम की खीर, मोटे रवे का हलुआ और दूध, इन चीजों में से कोई भी चीज़ दे सकते हैं। तीसरे दिन यदि कोठा शुद्ध हो गया हो, और थकावट, बुखार, अपचन और अग्निमान्द्य न हो, तो साधारण और सदा का भोजन देने में कोई हानि नहीं। फिर भी यदि माता बच्चे को अपना ही स्तनपान कराती हो, तो उसे दूध इत्यादि हल्के पौष्टिक पदार्थ विशेष परिमाण में देने चाहियें। [illegible] तक [illegible], कोई उत्तेजक औषधि [illegible] चाहियें। कम से कम [illegible] आठवाड़े [illegible] अच्छा [illegible] चाहिये। [illegible] उसके पति [illegible] उसके कमरे में [illegible]

आदमियों को आने ही न देना चाहिये। कमसे कम दस दिन तक सूतिका स्त्री बिछौने पर ही पड़ी रहे। इतने समय तक उसका बिछौना और उसके शरीर के नीचे के कपड़े झाड़कर साफ नहीं किये जा सकते। कपड़े बदलते और झाड़ते समय जरा सा भी कष्ट न होने देना चाहिये। ग्यारहवें दिन उसके उठने पर विशेष सावधानी से काम लेना चाहिये। श्रम थोड़ा थोड़ा बढाना चाहिये। परन्तु कमसे कम एक डेढ मास विशेष श्रम कदापि न करना चाहिये।

यह नहीं कहा जा सकता कि उपर्युक्त नियमों के अनुसार हर हालत में चलना ही चाहिये। परन्तु यदि इन नियमों का पालन कर लिया जायगा, तो प्रसूतावस्था से स्त्री कुशल पूर्वक निकल सकेगी और इन नियमों का भंग करने से शरीर विषयक भिन्न भिन्न विकारों के होने की सम्भावना रहती है।

यदि दो दिन में सूतिका स्त्री को पाखाना साफ न हो, तो रेचक देना चाहिये। चार ड्राम रेंडी का तेल अथवा साबुन और पानी की सादी बस्ती, इन दोनों में से कुछ भी दिया जा सकता है। यदि बवासीर का विकार हो, तो जन्तु नाशक औषधियों के गरम पानी से उसपर सेंक करना चाहिये और इस विषय में डाक्टर की सलाह लेनी चाहिये। प्रसूति के बाद प्रथम आठ घंटे के भीतर पेशाब होता है, इसके बाद फिर आठआठ घंटेके बाद पेशाब होता रहता है। पेशाब इसी हिसाब से होता है या नहीं, इस ओर दाई को ध्यान रखना

हिये। इस परिमाण से यदि पेशाब न होता हो, तो इसके ... अगले भाग में बतलाये हुये उपायों की योजना करनी चाहिये।

... सूति वा काल की व्यवस्था का वृत्तान्त समाप्त करने के ... स्वच्छता और जन्तुनाशक औषधियों के उपयोग के ... र में फिर एक बार याद दिला देना अनुचित न होगा। ... अवस्था में जन्तुनाशक औषधियों का काफी उपयोग ... ना चाहिये। प्रसूति और सूतिकावस्था की महत्वपूर्ण ... वस्था यही है कि उपर्युक्त दो बातों की ओर विशेष ध्यान ... जाय। उक्त बातों की ओर ध्यान देने से इस अवस्था ... होने वाले छोटे बड़े सब विकार टाले जा सकते हैं। और ... को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि इन दोनों ... पर विशेष भरोसा रखने से उसके व्यवसाय में सफलता ... होती है।

यदि बच्चा मर गया हो, अथवा अन्य किसी कारण से ... अपना दूध न पिला सकती हो, तो जच्चा को भोजन ... कम करना चाहिये। स्तन जब तक बहुत बड़े न हो गये ... दुग्धोत्क्षेपक (Breast Pump ब्रेस्ट पम्प) से दूध ... न निकालना चाहिये। इस यन्त्र का बार बार उपयोग ... से दूध और भी अधिक पैदा होने लगता है इसके ... सब दूध निकाल डालना बहुत कठिन होता है। स्तनों ... बार बार सेंकना भी चाहिये कि जिससे वे फूल न जावें,

और एक भाग कोलन वाटर तथा चार भाग पानी
करके, उसमें लिंट का टुकड़ा डुबोकर, उसे स्तनों पर
चाहिये और उस पर रेशम का कपड़ा तेल में भिगो
रखना चाहिये। इसके सिवाय डाक्टर की सलाह
कोई साधारण जुलाब भी देना चाहिये। एक्स्ट्राक्ट बेला
और ग्लिसरीन को मिलाकर यदि स्तनों में लगाया
तो उनका दूध कम होने में मदद मिलेगी। बेलाडोना प्ल
के छै इंच लम्बे और छै इंच चौड़े दो टुकड़े स्तनों
लगाना चाहिये, स्तनों के चूचुक पर नहीं। इन प्लास्टरों
आठ दिन तक वैसा ही रहने देना चाहिये। पट्टे से
से भी दूध कम होता है। प्लास्टरों को निकालते स
उसका एक किनारा धीरे से छुड़ा कर, रुई का फाहा टरपेन्ट
में डुबोकर, उस तेल को धीरे धीरे भीतर छोड़ना चाहिये। इ
वे बहुत जल्द छूट जायगे। प्लास्टर्स के निकाल डालने
खाल को साबुन और पानी से साफ करके धो डा
चाहिये, इससे उसकी चिपचिपाहट चली जायगी।

प्रसूति काल के पहले दो अठवाड़ों तक दाई को
लिखित बातें दिन में कम से कम दो बार तो अवश्य
देखनी चाहिये।

१—नाड़ी।

२—उष्णतामान (ज्वर)।

३-४- मूत्रोत्सर्जन और मलोत्सर्जन।

५-पेट की स्थिति-पेट फूला तो नहीं है, अथवा दाबने से दर्द तो नहीं होता।

६-सूतिका स्त्री की साधारण स्थिति-उसके पेट की वेदना, उसको जाड़ा तो नहीं लग आता, भूख, जीभ, मुख की प्रफुल्लता इत्यादि,

७-गर्भाशय की स्थिति और उसका आकार-दाई को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि मूत्रोत्सर्जन होने के पूर्व गर्भाशय कुछ ऊपर आ जाता है।

८-सूतिका स्राव की स्थिति और उसका परिमाण-यह देखना चाहिये पहले कि तीन दिन हो जाने के बाद स्राव कितना होता है। तथा उसके रंग पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। सूतिकाकाल में कदापि दुर्गन्धि न होनी चाहिये।

९-निन्द्रा--सूतिका काल में जच्चा को सदैव की निद्रा की अपेक्षा दिन में तीसरे प्रहर दो घंटे अधिक निद्रा लेनी चाहिये।

सूतिका काल में होने वाले विकार।

१०-प्रसवोत्तर वेदना-(Afterpains (आफ्टरपेन्स) इन वेदनाओंकाकारण गर्भाशयका बीच बीचमें आकुंचित होना

है। जब कोई रक्त का गोला, गर्भकोश का टुकड़ा अथवा निन्हाई का कोई भाग गर्भाशय की पुलाई में रह जाता है, तभी गर्भाशय बीचबीच में आकुंचित होता रहता है। इससे गर्भाशय को कष्ट होता है। कभीकभी ये वेदनायें बहुत भयंकर होती हैं। कुछ स्त्रियों को प्रसव वेदनाओं की अपेक्षा यही वेदनायें विशेष असह्य जान पड़ती हैं।

यदि प्रसूति के बाद गर्भाशय के पूर्ण और स्थायी आकुंचन के विषय में खबरदारी रखी जाय, तो ये वेदनायें प्रायः टाली जा सकती हैं, अथवा कम से कम उनका कष्ट अवश्य कम किया जा सकता है। जिन स्त्रियों के बहुत से बच्चे हो चुके हैं, उनको ये वेदनायें बारम्बार होती हैं। परन्तु प्रथम प्रसूति के बाद बहुत कम स्त्रियों को ये वेदनायें होती हैं। इन वेदनाओं का हितकर परिणाम यही होता है कि रक्तस्राव नहीं होने पाता और गर्भाशय से रक्त के गोले भी निकल जाते हैं। बच्चे को स्तनों में लगाने से भी इन वेदनाओं के अधिक दुस्सह हो जाने की सम्भावना रहती है।

उपाय—इन वेदनाओं के शीघ्र ही कम करने के अच्छे उपाय ये हैं कि गर्भाशय दाबा जाय, और एक ड्राम एक्स्ट्राक्ट अर्गट लिक्विड नामक औषधि पिलाई जाय। इन दोनों उपायों से यदि लाभ न हो तो चौथाई ग्रेन की मार्फिया की गुटिका गुद द्वार में रखी जाय, इससे शीघ्र लाभ होता है।

२-मूत्रा विरोध Retention of Urine रटेंशन आफ यूरिन

यह एक ऐसा विकार है जो सदैव हो जाया करता है। विशेष कर यह प्रथम प्रसूति वाली स्त्रियों के ही आया करता है। इस लिये दाई को इस बात की जांच रखनी चाहिये कि स्त्री को कहीं यह विकार तो नहीं हो गया है। इस विकार के अनेक कारण है। खास कर प्रसूति के समय, जब कि बच्चे का सिर बाहर निकलता है, जननेंद्रिया तननी हैं इस कारण वे सूज कर दर्द करने लगती हैं, और इसी से यह विकार हो जाता है। कभी कभी केवल भय के कारण हिस्टेरिया के कारण अथवा विटप के कुछ फट जाने के कारण भी यह विकार हो जाता है।

सूतिका स्त्री को आपही आप पेशाब के लिये जाने की इच्छा ही नहीं होती। इस कारण प्राय इस स्थिति की ओर ध्यान नहीं जाता इस लिये दाई को इस बात की जाच करनी चाहिये कि प्रसूति के बाद आठ घंटे के अन्दर पेशाब हुआ है अथवा नहीं। इस बातकी पूरीपूरी जाच होनी चाहिये, क्यों कि जच्चा को यद्यपि पेशाब बिल्कुल नहीं होता तो भी यह मिथ्या भ्रम होने की ही सम्भावना रहती है कि पेशाब हुआ है।

यदि चोबीस घंटे के अन्दर पेशाब नहीं होता, तो पेट के नीचे के भाग में एक गोला साफ तौर से हाथ में अटकाता है। इससे अधिक समय यदि हो जाता है, तो पेशाब बराबर बूंद बूंद होता रहता है। इस कारण इस विकार को मूत्रावरोध के बदले मूत्रायाम, अथवा पेशाब का बूंदबूंद होना कहते हैं।

उपाय—जन्तु नाशक औषधियों के गरम पानी से बाह्य जननेन्द्रियों को सेंकना चाहिये। जघनास्थि सन्धि के ऊपरी भागों पर दागना चाहिये। ऐसी तजवीज करना चाहिये कि जिससे धार गिरते हुये पानी की आवाज सूतिका स्त्री को सुनाई दे। सूतिका स्त्री घर्कौवन होकर (अर्थात् जैसे छोटा बच्चा चलता है) पेशाब करने का प्रयत्न करे। ये सब उपाय जब निरुपयोगी हो जाय तब फिर मूत्रोत्सर्जक नलिका से मूत्र निकालने का उपाय अन्त में करना चाहिये। प्रसूति के समय जब बहुत कष्ट होता है तब प्रायः लगभग आठ दिन तक स्वयही पेशाब नहीं होता, ऐसे समयमें प्रतिआठ घंटे बाद कम से कम एक बार अवश्य पेशाब निकालना चाहिये। मूत्रोत्सर्जक नलिका से यदि पेशाब निकालना हो, तो स्वच्छता के विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि गन्दी और अस्वच्छ नलिका के उपयोग से मूत्राशयदाह इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये नलिका का उपयोग करने के पूर्व उसको ४० में १ परिमाण वाले कारबोलिक एसिड के पानी से साफ करके धो डालना चाहिये।

२-कटीर सन्ताप (Pelvic cellulitis) पेल्विक सेल्युलायटिस)—यह विकार भी अकसर हो जाया करता है। इसके भी बहुत से कारण हैं। उनमें से जो कारण विशेष कर सदैव देखा जाता है वह रक्त में विषैले पदार्थ का प्रविष्ट हो जाना है। और सचमुच ही प्रायः यह सूतिका ज्वर का ही एक भेद

हो जाता है। इस रोग के अन्य कारण -प्रसूति के बाद अधिक श्रम करना बहुत जल्द ठंढक में घूमने-फिरने लगना, इत्यादि इस विकार में निम्नलिखित लक्षण देखे जाते हैं :-

पेट के निचले भाग में बीचों बीच अथवा अन्य किसी न किसी ओर दर्द होता है उस जगह दाबने से और भी अधिक दर्द मालूम होता है। शरीर में ज्वर १०० डिग्री से भी अधिक रहता है। नाड़ी की धड़कन १००-१२० तक रहती है। सूतिका स्राव बन्द हो जाता है। इनके सिवाय और और वही लक्षण हैं जो साधारण सदैव होते रहते हैं,। जैसे-मिचलाहट, वमन, पाखाने पेशाब के समय दर्द, इत्यादि।

ये लक्षण प्रसूति के थोड़े ही दिनों बाद दिखाई देने लगते हैं। परन्तु कभी कभी कुछ अठवाड़ों और महीनों के बाद भी यह विकार होता है। कभी कभी दर्द या अन्य कोई लक्षण भी लक्षित नहीं होता, परन्तु ज्वर और नाड़ी अवश्य विशेष कर सन्ध्या समय बढ़ जाती है। यदि ऐसी दशा हो, तो समझना चाहिये कि कोई न कोई अन्तर्गत विकार हो रहा है। ऐसे समय में सूतिका स्त्री को किसी निमित्त से भी उठने न देना चाहिये, क्योंकि इस विकार में पीब हर हालत में हो सकती है। इससे मालूम हो जायगा कि उपर्युक्त कारणों से सुबह और शाम ज्वर तथा नाड़ी उस समय तक जाचते रहना कितने महत्व की बात है कि जब तक सूतिका स्त्री भली भाति चलने फिरने न लगे।

दाह होकर यदि पीव पड़ जायगी, तो ज्वर और नाड़ी एकाएक बढ़ जायगी, और कुछ काल बाद योनिमार्ग, गुदकांड अथवा मूत्राशय से पीव का स्राव होने लगेगा। यह विकार वास्तव में सूतिका स्त्री के लिये भयकर ही समझना चाहिये क्योंकि इसमें बहुत कष्ट होता है, चंगा होने में बहुत दिन लग जाते हैं, इसके अतिरिक्त इस विकार के कारण सूतिका स्त्री को कई विकार सदा के लिये हो जाते हैं।

पेट का दर्द कम करने के लिये उसमें टरपेन्टाइन लगा कर उसको गरम कपड़े से सेंकना चाहिये। इसके सिवाय स्त्री को पूर्ण विश्रान्ति शान्ति और हल्का भोजन इस विकार में बहुत आवश्यक है।

४-श्वेतपाद Phlegmasia-Albadolens फ्लेग्मेशिया आल्बाडोलन्स)-यह विकार सूतिका काल के दूसरे अठवाड़े में प्रायः उन स्त्रियों को होता है कि जिनकी हालत पहले ही से कमजोर होती है। इस विकार में एक अथवा कभी कभी दोनों पैर सूज कर दर्द करने लगते हैं। जाड़ा देकर बुखार भी आता है। दाह के अन्य लक्षण होते हैं। पहले जांघ में दर्द होने लगता है, फिर सारे पैरों में, बड़ी अशुद्ध रक्तवाहिनियों की दिशा से वह दर्द फैलता है। कभी कभी दर्द सिर्फ पिंडलियों में ही प्रारम्भ होता है। इसके बाद फिर वह जँघाओं की ओर चढ़ता है। चौबीस घंटे के बाद सूजन प्रारम्भ होती है, और दर्द यद्यपि एक दम बन्द नहीं होता, फिर भी कुछ कम अवश्य हो

जाना है। जिस जगह पीड़ा होती है, वह जगह देखने में भयंकर जान पड़ती है, और वहां की नसें काली और बैंगनी हो जाती हैं। छूने से और भी अधिक दर्द होता है, वह जगह सफेद झलकती सी रहती है।

दस पन्द्रह दिन यह विशेष कष्टदायक हालत रहती है, फिर दर्द और सूजन कम होने लगती है। सूजन के पूर्णतया आराम होने में बहुत दिन लगते हैं।

इस रोग का कारण यह है कि, नसों में रक्त का गोला अटक जाने के कारण रुधिराभिसरण बन्द हो जाता है, इस कारण नसों के सतप्त हो जाने से यह रोग हो जाता है। विशेष कर यह रोग पे सर, कफक्षय अथवा अन्य किसी विषैले रोग के विष का सम्बन्ध रक्त में हो जाने से पैदा होता है। इसके सिवा यदि उस स्त्री का रक्त बिलकुल पहले से ही निस्सत्व होता है, अथवा प्रसवोत्तर रक्तस्राव के कारण वह वैसा हो जाता है, तो भी इस विकार के होने की सम्भावना रहती है।

उपाय-सूतिका स्त्री को पहले पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये और फलालेन का कपड़ा गर्म पानी में डुबो कर, उसको निचोड़ कर, उस पर अफीम का अर्क छिड़कना चाहिये इसके बाद उसको वैसा ही गरम गरम सूजे हुये भाग पर लगा कर सेकना चाहिये। दर्द और फूटन कम होने पर पैर का निचला भाग सदैव ऊंचा करके पैर रखना चाहिये और पैरमें उंगलियों

सा दिखाई देता है अथवा शरीर की अशुद्ध रक्तवाहिनि य ननी हुई दिखाई देती हैं, तो कोई छोटी सी नस तोड़ कर अथवा छाती पर कुछ लगा कर रक्त मोक्षण करते हैं। सौभाग्य से यदि उसको कुछ लाभ हो जाय, तो बिलकुल शान्ति के साथ बिछौने पर पड़ा रहने देना चाहिये, हिलने, डुलने बिलकुल न देना चाहिये। उसको थोड़ा थोड़ा और पतला भोजन देना चाहिये।

६- सूति को न्माद (Puerperal Insanity) प्युएर पिरल इन्सानिटी) इसके दो भेद होते हैं। एक सूतिकोन्माद और दूसरा सूतिका विभ्रम। सूति को न्माद प्राय सदैव हुआ करता है, और यह सूतिकाकाल के पहिले पखवाड़े में होता है

सूतिका स्त्रीको पहिले कुछ दिनतक नींदनहीं आती धीरेधीरे उसका स्वभाव चिड़चिड़ा और क्रोधी होने लगता है। वह कभी बिना कारण हंसने लगती है, और कभी योंही रोने लगती है, कभीकभीदाई को तथाअपनी अन्य साथिनियों को व्यर्थके लिये दोष दने लगती है उसमें भी जो लोग उसके अत्यन्त प्यारे होते हैं, उनसे वह बहुतही रूखा बर्ताव करने लगती है। अपने दुधमुहे बच्चे के साथ भी वैसा ही बर्ताव करती है। अनेक स्त्रियों को यह विकार बहुत धीरे धीरे होता है।

सूतिका विभ्रम Puerperal melancholia प्युएर पिरल मेलाकोलिया) यह विकार प्रायः प्रसूतावस्था के अन्त में

हुआ करता है इन विकार के हो जाने पर सूतिका स्त्री का स्वं भाव उदासीन हो जाता है, वह अपने काल्पनिक दुखों की याद कर उनका विचार करने मही अपना सारा समय बिताती है। काल्पनिक दुखों में से एक, एक कल्पना यह होती है कि हमने कोई न कोई भारी अपराध किया है, और इस कारण अब हमारी उत्तम गति न होगी, उसको स्वय अपने और दूसरे के जीवन के विषय में शंकायें उत्पन्न होती हैं और उसके कुटुम्बियों अथवा सहेलियों में से जब कोई उसके पास आता है तब वह उससे अजनबी सी हो जाती है।

उपर्युक्त प्रकारों में से सूतिका विभ्रम का प्रकार, अधिक भयङ्कर है क्योंकि इससे आगे चल कर स्थायी रूप से पागल पन आ जाता है। सूतिकोन्माद से यह बात नहीं होती यह जल्दी अच्छा हो जाता है, परन्तु उस रोग का, बार बार, प्रत्येक प्रसूतावस्था में, होने की सम्भावना रहती है। इसकी भयङ्करता प्रतिवार बढती जाती है और अन्त में वह स्त्री हमेशा के लिये पगली बन जाती है।

दाई को इस विषय में इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि, सूतिका स्त्री स्वयं अपने को अथवा अन्य किसी को हानि न पहुंचाने पावे। इसलिये उसपर नजर रखनी चाहिये। बच्चे को माता से अलग रखना चाहिये क्योंकि उस पर इसका क्रोध अधिक रहता है। पुस्तक पठन, अथवा अन्य किसी

साधारण कार्य से अथवा किसी मनोरंजन से उसको अव
समय बिताने की शिक्षा देते रहना चाहिये।

इस विकार में प्रायः निम्नलिखित उपायों की योजना क
जाती है। जिस स्त्री को अच्छा और पुष्टिकारक भोजन दे
चाहिये वह यदि उसे खाना अस्वीकार करे तो पतला कर
नाक से अन्न नालिका के द्वारा एक नली डाल कर पिला
चाहिये। पोटाशियम ब्रोमाइड, क्लोरल, हैड्रेट अफीम मार्फिय
इत्यादि शामक औषधियां खिलाई जाती हैं। कभी कभी थोड़
परिमाण में रात को उत्तेजक औषधियां देने से भी अच्छी नींद
आती है स्त्री को यदि अपने बच्चों अथवा पति से अनमनाप
हो गया हो तो उनको उनके पास न भेजना चाहिये। इस
विकार में वायु परिवर्तन से भी कभी कभी बहुत लाभ होता है
ऐसी स्त्रियों को कभी पागल खाने भी भेजना होता है।

७-प्रसूतिकाज्वर (Puerperae fever प्युअरपिरल फीवर
यह एक सासर्गिक विकार है। इसका कारण यह है कि जनन
मार्ग में प्रसूति के समय जो जखम हो जाते हैं, उनके द्वारा विषैले
पदार्थ रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं।

जैसा कि पीछे बतलाया गया है, रक्त का गोला, जरायु का
टुकड़ा अथवा गर्भोत्पादक का कुछ भाग जब गर्भाशय में रह
कर सड़ने लगता है, तब उसी में विष पैदा हो जाता है,
अथवा दाई की लापरवाही से भी अनेक प्रकार के कारणों से
यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

इस रोग का विष यद्यपि भिन्न भिन्न प्रकार का है, फिर भी सब प्रकार के विषों का परिणाम समान ही होता है। यद्यपि सम्पूर्ण तया लक्षण भिन्न भिन्न होते हैं, तथापि सर्वसाधारण लक्षण दो ही होते हैं। एक तो उस स्त्री को थकावट अत्यन्त आती है, और दूसरे उसकी नाड़ी जल्दी जल्दी चलती है। प्राय: बुखारभी खूब बढ़ता है। परन्तु कभी कभी वह कमभी होता है। इस विकार में दर्द भी रहता है, परन्तु उसकी जगह और जोर अनियमित रहता है। कभी सारा पेट दर्द करता है, तो कभी छाती में ही दर्द होता है, कभी जोड़ों में दर्द होता है, तो कभी कहीं दर्द नहीं मालुम होता।

इस रोग का प्रादुर्भाव प्राय प्रसूति के तीसरे दिन होता है पहले जाड़ा मालुम होने लगता है, इसके बाद नाड़ी जल्दी जल्दी चलने लगती है, ज्वर बढ़ता है, और उलटी होती है। कभी कभी दो ही तीन घंटे के अन्दर स्त्री मर जाती है। परन्तु अकसर दो तीन अठवाड़े वह बीमार पड़ी रहती है, और अन्त में बहुत कमजोरी आजाने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है।

सूति का ज्वर में पहले बेहोशी आजाती है और बाद को शरीर छूट जाता है। इधर कुछ समय से जन्तुनाशक प्रणाली के अनेक अच्छे अच्छे उपचारों का प्रचार होगया है, इसलिये अब इस विकार की मृत्यु सख्या बहुत कुछ घट गई है।

सूति का ज्वर जिन स्त्रियों को आता है, उनके लिये प्राय निम्नलिखित कारण भी होते हैं –

१ कष्टप्रसूति, २ प्रथम प्रसूति, ३ प्रसूतिके समय शास्त्रप्रयोग। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि यथोचित रूप से सावधानीनहीं रखीजाती, तो बिलकुल साधारण स्वाभाविक प्रसूति के बाद भी इस रोगके हो जाने का डर रहता है।

इस रोग के प्रतिबन्धक उपायों का बहुत सा विवेचन पीछे किया जा चुका है परंतु दाई को यहां पर भी यह सूचित कर देना अनुचित न होगा कि स्वच्छता और जंतुनाशकऔपधियों का उपयोग ही प्रत्येक प्रसूति में अत्यंत आवश्यक बात है। दाई को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि रोग हो जाने पर उसके उपचार करने बैठने की अपेक्षा पहले ही से ऐसी सावधानी रखी जाय कि उक्त रोग बिलकुल होने ही न पावे।

इस विकार में योनिमार्ग को जन्तुनाशक औषधियों से धो डालना चाहिये। धोने के बाद, यदि दुर्गन्धि युक्त स्राव होना हो, तो, १५ से २० ग्रेन तककी आयोडोफार्म की गुट्टी योनिमार्ग में रखनी चाहिये। कभी कभी गर्भाशय भी जंतुनाशक पानी से धोना पड़ता है। पतला भोजन खिलाना चाहिये। मद्य भी थोडे परिमाण में देने से लाभ होता है। इस विकारमें सर्वोत्तम औषधि कुनैनहै। इसको ५ से १५ ग्रेन तक देते हैं। इसके अति-रिक्त सालोल, सोडासेलिसिलस, अंटीपायरीन, सोडासल्फो-कर्बोलस, बारबर्ण्म, टिंक्चर इत्यादि औषधियां भी दी जाती हैं। यदि पेट में बात भर जाता है, तो शक्कर के साथ १० बूंद टरपेंटाइन भी देते हैं। यदि वेदनायें होती हैं, तो अफीम अथवा

मार्फिया उचित परिमाण में देते हैं। कभी कभी इस विकार में जुलाब भी दिया जाता है। ज्वर कम करने के लिये बर्फ की थैली का उपयोग और भिन्नभिन्न रीतियों के स्नानों का उपयोग भी किया जाता है।

स्तनों के रोग--(अ) अति दुग्धस्राव (Galactorrhoea ग्यालाक्टोहिया) यह विकार कभी कभी होता है। यदि यह बहुत दिन तक जारी रहता, है, तो स्त्री कमजोर पड़जाती है। उसको नीरक्तता आ जाती है। दृष्टि में मन्दता आजाती है। इसके बाद अन्त में प्राय कफक्षय का रोग हो जाता है और वह मर जाती है। उक्त रोग में बच्चा भी दूध नहीं पीता है। इस कारण वह अशक्त होता है।

उपाय-बच्चा और जच्चा दोनों के कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि दूध पिलाना स्वय ही बन्द कर दिया जाय। इसके बाद यदि दुग्धस्राव जारी रहे, तो स्तनों पर किसी न किसी प्रकार का दाब रखना चाहिये, पहले स्तनों पर थोड़ी सी रुई रखकर उनको दो बड़े रुमालों से बांध देना चाहिये। एक रुमाल की गाठ सामने के कंधे पर बांधनी चाहिये और दूसरे की गांठ सामने की कांख में ले लेनी चाहिये, अथवा बेंडेज से दोनों स्तन एक साथ ही बाध देने चाहिये। स्तनाग्रों को खुला रखना चाहिये। स्त्री को पतले पदार्थों का उपयोग बिलकुल कम परिमाण में करना

चाहिये। कोई रेचक क्षार देकर पाखाना बहुत बार होने देना चाहिये। टिंक्चर बेलो डोना के भी ५से १० बूंद तक दिये जाते हैं। एक्स्ट्राक्ट बेला डोना ६० ग्रेन्स और ग्लिसरीन एक औंस दोनों का मिश्रण स्तनों पर लगाते है। पोटाशियम आयोडाइड १० से १२ ग्रेन तक पिलाते हैं। शक्ति आने के लिये, लोह कुनैन, इत्यादि औषधियों का भी उपयोग किया जाता है। हवा बदलने से भी इस विकार में लाभ होता है।

(ब) दूध कम होना—इस विकार में माता को बहुत से पतले पदार्थ पीने को देना चाहिये। विशेष कर दूध अथवा दूध की खीर देनी चाहिये। मतलब यह है कि भोजन शक्ति वर्धक होना चाहिये। मूंग और उड़द की दाल खाने से भी दूध बढ़ता है। कहते हैं कि मछलियाँ विशेष कर आइस्टर जाति की मछलियां खाने से भी दूध बढ़ता है। अफीम की औषधियां उचित परिमाण में और पायलोकार्पिन नामक औषधि बहुत ही कम परिमाण में देने से भी दूध अधिक होता है।

(क) चूचुकों का चपटा होना (Depressed nipples डिप्रेस्ड निपल्स)-यह विकार प्रायः कपड़ों की दाब के कारण हो जाता है। उनको उंगलियों से खींच खींच कर बाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि बच्चा पी न सके, तो कांच अथवा रबर के चूचुक संरक्षक यंत्रका उपयोग करना चाहिये।

(ड) स्तनाग्रों पर बिवाई फटना और उनका दुखना-
(Cracked and sore nipples क्रेक्ड एंड सोअर निपल्स)
यह विकार बहुत सी स्त्रियोंको हो जाया करता है। यह बिवाई बहुत छोटी होती है परंतु दर्द बहुत करती है, इस विकारसे बचने के लिये गर्भावस्था में ही प्रति दिन स्तनाग्रों को खूब मल मल कर धोते रहना चाहिये। उनमें यदि दर्द होता हो तो टैनिक एसिड के पानी से, फिटकरी के पानी से, अथवा अन्य किसी ऐसे ही पानी से, अथवा स्पिरिट और पानी मिलाकर उसीसे प्रति दिन धोना चाहिये। जब बच्चा स्तन पान करने लगे, तब उसको दूध पिलाने के बाद सदैव स्तनाग्रों को खूब धो पोंछ कर साफ रखना चाहिये।

उपाय-आधा औंस सल्फ्यूरिक एसिड, आधा औंस ग्लिसरीन आफ टैनिक एसिड, और एक औंस पानी इन सब का मिश्रण तैयार करके स्तनो में लगाया जाता है। इसी प्रकार बोरेक्स और ग्लिसरीन का मिश्रण भी लगाते हैं। एक औंस में दस ग्रेन के परिमाण वाले नाय ट्रेट आफ सिलवर के पानी से प्रति दिन बिवाइयों को धोना चाहिये। कोई नाय ट्रेट आफ सिलवर का अन्य प्रकार से भी उपयोग करते हैं। कोई टिंकचर बेंज़ाइन को नामक औषधि काम में लाते हैं। बच्चे को पिलाने में यदि कष्ट होता हो, तो पिलाना बन्द कर देना चाहिये।

(इ) स्तन दाह– (Inflammation of the breast इन्फ्लेमेशन आफ दि ब्रेस्ट) और स्तनों मे पीव पड़ना (Abscess of the breast ऐब्सेस आफ दि ब्रेस्ट) कारण स्तनों में विवाई होजाने के कारण ही यह विकार होता है। नीरक्तता और अशक्तता की दशाओं में भी इस विकार के हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है। स्तनों में धक्का लगने अथवा अन्य कोई चोट पहुंचने से भी यह विकार हो सकता है।

लक्षण-स्तनों में दर्द बहुत होता है, नाड़ी वेग से चलती है, और जब पीव पड़ने लगती है, तब जाड़ा देकर बुखार भी आजाता है। जैसे जैसे पीव पड़ती जाती है, वैसे वैसे स्तन एक जगह बड़ा होता जाता है, और ऊपर की खाल सुर्ख होती जाती है। उस जगह दाबने से यह भी मालूम होता है कि यहां पीव है। इसके बाद कुछ काल में वहां पर एक छेद हो जाता है, जिससे थोड़ी थोड़ी पीव बाहर निकलने लगती है। इसके बाद स्तन के भीतर भिन्न भिन्न भागों में पीव उत्पन्न होजाती है, और इसका सम्बन्ध उसी छिद्र वाली जगह से हो जाता है। इस प्रकार से स्तन भीतर ही भीतर सड़ता जाता है, और यह विकार कई महीने तक बना रहता है, तथा स्त्री बिलकुल कमजोर पड़ जाती है।

उपचार–दाह के प्रारम्भ होते ही मैग्नेशिया सल्फेट (चौथाई ड्राम) के समान रेचक क्षार देते हैं। पूर्व कथनानुसार

न्थन से भी स्तनों पर दाब देना चाहिये । ऊपर ग्लिसरीन बैला डोना नामक औषधि लगानी चाहिये । वेदना कम होने के लिये अफीम का अर्क (५-२० बूंद) देना चाहिये । बच्चे को दूध पिलाना बन्द करना चाहिये । यदि ऐसा मालूम हो कि भीतर दूध बहुत सा संचित हो रहा है, तो दुग्धशोषक यंत्र से समय समय पर उसे निकालते रहना चाहिये । स्त्री को सदैव लिटाये रहना चाहिये । सूजन यदि अधिक आ गई हो, तो बर्फ की थैली स्तनों पर रखनी चाहिये अथवा अन्य ठंढे उपचार करने चाहिये ।

उपर्युक्त उपचार करने से यदि सूजन कम न हो, किन्तु और भी बढ़ती ही जाय, और यह निश्चय हो जाय कि, भीतर पीव भी पड़ने लगी है, तो उपर्युक्त सारे उपाय बन्द करके स्तन को अलसी की पुल्टिस से सेंकना प्रारम्भ करना चाहिये। पीव पड़ने के विषय में यदि पूरा पूरा विश्वास होजाय तो शस्त्र प्रयोग भी किया जा सकता है। स्तनाग्र से छेद की दिशा त्रिज्या की दशा से होनी चाहिये । इस प्रयोग की यदि आवश्यकता जान पड़तीहै,तो क्लोरोफार्मभी सुंघानाजाता है, स्तनाग्र के भीतर की सब पीव निचोड़ कर निकाल डालने के बाद भीतर ड्रेनेज ट्यूब अथवा बत्ती डाल दी जाती है, और सदैव की जन्तु नाशक पद्धति के जखम बांधने की प्रणाली से जखम बांधकर अगली व्यवस्था करते हैं, क्विनैन, लोह इत्यादि औषधियां देते हैं।

जब उचित समय पर शस्त्रप्रयोग नहीं किया जाता, और इस कारण बहुत देर तक पीव बहते रहने से स्तनों में छेद हो जाते हैं, तब उन छेदों को शस्त्र से बड़ा कर देते हैं, और भीतर उंगलियां डालकर सब सड़ा हुआ भाग निकाल डालते हैं इसके बाद भीतरी भाग टिंक्चर आयोडाइन के पानी से (टि. आ० १ भाग और पानी २ भाग) अथवा चालिस में एक के परिमाण वाले कारबोलिक एसिड के पानी से धोते हैं। इसके बाद जखम की साधारण जन्तुनाशक प्रणाली से व्यवस्था रखते हैं।

(फ) स्तनार्बुद-दुग्धार्बुद (Galactocele गालाक्टोसील)-दुग्धवाहिनी के बन्द हो जाने के कारण कभी कभी बन्द हुई जगह की पिछली ओर वह फूल जाती है, और इसी से यह विकार हो जाता है, और कुछ दिन बाद दूध का पतला अंश सूख जाता है, और भीतर गाढ़े भाग का भीतर गोला बँध जाता है। यह कभी कभी कभी बहुत बड़ा होता है। शस्त्र प्रयोग से निकालने के अतिरिक्त इसके लिये अन्य उपाय नहीं है।

उन्नीसवा भाग।

बच्चे की शुश्रूषा।

पैदा होते ही बच्चे को जोर से रोना चाहिये, और खूब स्वच्छन्दता से उसको हाथ पैर हिलाने चाहिये।

जैसा कि पहले बतला चुके हैं, नालच्छेदन और नाल-बन्धन हो जाने के बाद बच्चे को किसी मुलायम और गर्म कपड़े में लपेट कर उसे किसी गरम और सुरक्षित जगह में रखना चाहिये। और फिर इसके बाद माता के प्रबन्ध में लग जाना चाहिये। माताका जब सारा प्रबन्ध ठीक ठीक होजाय, और प्रसवोत्तर रक्त स्राव, जो कि ऐसे समय में कभी कभी होने लगता है, उसका भय न रहे, तब पहले बच्चे को नहलाने का प्रबन्ध करना चाहिये। पहले उसका मुँह धोना चाहिये विशेष कर आँखें २००० में १ के परिमाण वाले मर क्युरिक परक्लोराइड के लोशन को गरम करके उससे सावधानी के साथ धोनी चाहियें।

इसके बाद दाई बच्चे के शरीर में आलिव तेल, वेसलीन, अथवा गरी का तेल लगावे, जिससे त्वचा की चिप चिपाहट दूर हो जायगी। इसके बाद बच्चे को ९० फा० के स्नान,भाजन में रखना चाहिये, और उसका सिर पानी के ऊपर पकड़े रहना चाहिये। इसके बाद साबुन और पानी लेकर उसका शरीर खूब साफ करके धो डालना चाहिये। बच्चे के सिर के नीचे हाथ डालकर उसका सिर पानी के बाहर पकड़े रहना चाहिये। इसके बाद उसको बाहर निकाल कर नयन स्पञ्ज अथवा फलालेन के मुलायम और साफ कपड़े से उसका शरीर मलना चाहिये। सिर को विशेष सावधानी के साथ साफ करके धोना चाहिये। इसके बाद मुलायम तौलिये से

फिर उसका शरीर पोंछ डालना चाहिये। इसके बाद शरीर पर चावल का आटा अथवा बोरासिक एसिड की बुकनी बुरक देना चाहिये। तत्पश्चात् नाल के ऊपर का कपड़ा छोड़कर यह देखना चाहिये कि वहां से रक्त तो नहीं आ रहा है। यदि रक्त आता हो, तो उसको फिर से भली भांति बांध देना चाहिये।

नाल बांधते समय एक स्वच्छ कपड़े के टुकड़े के बीचों बीच एक छेद करके नाल को उसके भीतर पिरोना चाहिये। और फिर उस कपड़े को उसके आस पास लपेट देना चाहिये। इसके बाद उस पर बोरिक एसिड की बुकनी डाल कर जन्तु नाशक रुई की गद्दी लपेट देनी चाहिये, और फिर उसके ऊपर से पतला और मुलायम फलालेन का पट्टा ढीला सा बांध देना चाहिये। इसके बाद बच्चे को सदैव की भांति कपड़े पहना कर ऐसी जगह रखना चाहिये कि जहां उसको ठंढक की बाधा न पहुँचे। बच्चे के कपड़े ढीले रहने चाहियें, वे यदि फलालेन के हों, तो बहुत अच्छा होगा।

पैदा होते समय बच्चा कभी कभी बहुतही कमजोर यहां तक कि कभी कभी तो मरा हुआ सा दिखाई देता है। हाथ पैर नहीं हिलाता। गर्दन ढीली रहती है। मुंह विकृत रहता है। कभी कभी तो नाभि की नाड़ी भी नहीं मिलती। ऐसी दशा में उस बच्चे को पेट का मरा हुआ बच्चा कहते हैं। इतना होने पर भी पीछे से वह बच्चा कभी कभी जाग्रित हो सकता है।

इसके लिए उपाय यह है कि बच्चे के गले में पीस, अथवा उंगली में रूमाल लपेट कर उसे डालना चाहिये। बच्चे के मुंह पर यदि नीला रंग हो, तो एक दम नाल काट कर चमचा डेढ़ चमचा रक्त जाने देना चाहिये। मुंह और छाती पर ठंढा पानी छिड़कना चाहिये। इसके बाद कूले पर धीरे से चपत मारकर बच्चे को रुलाना चाहिये, अथवा थोड़ी सी ब्रांडी वा ह्विस्की उसकी छाती में लगानी चाहिये।

इससे यदि श्वासोच्छ्वास प्रारम्भ न हो, तो बच्चे को बारी बारी से ठंढे और गरम पानी के बर्तन में डुबाना चाहिये, अथवा कुछ सेकंड तक उसके पैर ऊपर को करना चाहिये, इससे मस्तिष्क की ओर रक्त प्रवाह शुरू हो जायगा, और श्वास नलिकाएं भी खुल जायगी। यदि किसी उपाय से भी श्वासोच्छ्वास प्रारम्भ न हो, तो कृति से उसको प्रारम्भ कराना चाहिये। वह कृति इस प्रकार है-एक आदमी बच्चे की गर्दन कुछ नीची करके मुंह खुला रख कर उसको पकड़े। मुंह को स्वच्छ करके उस पर एक रूमाल डाले इसके बाद एक हाथ से बच्चे का पेट दाब कर दूसरे हाथ से नासा पुट बन्द करे। इसके बाद दाई बच्चे के मुंह में अपना मुंह लगा कर धीरे से थोड़ी सी हवा रूमाल से एक मिनट में बीस बार फेफड़े में पहुँचाने का प्रयत्न करे, और बीच बीच में छाती को धीरे से दबावे, इससे फेफड़े खुल जायगे और श्वासोच्छ्वास प्रारम्भ

हो जायगा। सिल्वेस्टर की रीति इससे भिन्न है। वह इस प्रकार है:-

बच्चे को उताना जमीन पर लिटाकर उसके कंधे और सिर को ज़रा ऊंचे में रखें। कुहनी के ऊपर उसके दोनों हाथ पकड़ कर अपने दोनों हाथों से उनको धीरे धीरे बच्चे के सिर के ऊपर लावे, और कुछ समय तक वैसे ही लम्बे किये रखे। इससे छाती फूलती और उसमें हवा पैठती है। इसके बाद हाथों को धीरे धीरे नीचे करके, उनके योग से फेफड़ों की हवा बाहर निकलने के लिये उन हाथों से कोखों पर दाबे, और फिर थोड़ा सा ठहर जाय। उपर्युक्त कृति एक मिनट में लगभग बीस बार करे। इस कृति से बच्चा श्वासोच्छ्वास करने लगता है। इस रीति से एक घंटा और कभी कभी इससे भी अधिक कृत्रिम श्वासोच्छ्वास कराने में लग जाता है। क्योंकि जब तक छाती में हृदय की धड़कन होती रहती है, तब तक बच्चे के श्वासोच्छ्वास करने की सम्भावना रहती है।

कृत्रिम श्वासोच्छ्वास कराने की और भी कई रीतियां हैं, परन्तु उनका वर्णन करने की यहां आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उपर्युक्त कृतियों से जो बच्चा हिलने डुलने न लगे, तो उसके जीने की प्राय: आशा ही न करनी चाहिये।

कमजोर बच्चों को १००° फा० के पानी से सावधानी पूर्वक स्नान कराना चाहिये। कमजोर अथवा कम दिन के

बच्चों को इन्क्युबेटर (Incubator) के योग से प्राय. जिला सकते हैं।

बच्चे को धोकर, उसके शरीर में वस्त्र इत्यादि पहना कर, उसको पलने में रखना चाहिये और उसके आस पास जाड़े के दिनों में और ठंडे प्रदेशों में गरम पानी की बोतलें रखनी चाहिये। प्रति दिन सध्या काल में बच्चे को स्नान कराना चाहिये, और सुबह सिर्फ मुह, हाथ और कूले ही धो देना चाहिये। कमरे में वायु का संचार खूब होना चाहिये। भीड़-भाड़ बिलकुल न रहनी चाहिये।

नाल प्राय. पांचवें दिन गिर पड़ता है। जब तक वह गिर न पड़े, आसपास लपेटे हुये कपड़े को प्रति दिन सावधानी पूर्वक बदलते रहना चाहिये। यदि कुछ बदबू आने लगे, अथवा कुछ रक्तस्राव होने लगे, अथवा नाल काटने पर यदि नाभि में सूजन आ जावे, तो डाक्टर को बतलाना चाहिये। नाल के गिर पड़ने पर भी कुछ सप्ताह तक पेट बांधते रहना चाहिये। परन्तु यदि नाभि भली भाति अच्छी हो गई हो, तो पेट बांधने की आवश्यकता नहीं। बच्चे के सब कपडेलत्ते गन्दे हो जाने पर बदलते रहना चाहिये। उसका मैला अंग कुनकुने पानी से धोकर उसपर बोरासिक एसिड का मलहम लगाना चाहिये। गंदे कपड़ों से बच्चा बीमार हो जाता है, उसे चैन नहीं पड़ता।

इसके बाद कुछ देर विश्राम लेने पर माता, जब तक दूध न आवे, चार घंटे में एक बार और फिर दो घंटे में एक बार, बच्चे को पन्द्रह मिनट तक स्तनों में लगावे अकसर तीसरे दिन तक दूध नहीं आता। ऐसे समय में बच्चे की भूख शान्त करने के लिये चमचा भर गरम पानी में थोड़ा सा दूध डाल कर पिलाना चाहिये। और कुछ न देना चाहिये। पहले जो दूध उत्पन्न होता है, उसे प्रथम दुग्ध (Colostrum कोलोष्ट्रम) कहते हैं। उससे बच्चे को पाखाना अधिक होता है। इससे बहुत सा मल निकल जाता है, और अतड़ियां साफ हो जाती हैं। यह प्रथम दुग्ध देखने में पानी सा जान पड़ता है।

जब दूध ठीक ठीक आजाय, तब पहले दो मास तक दिन में दो घंटे में एक बार और रात में एक दो बार बच्चे को पिलाना चाहिये। जब बच्चा तीन मास का हो जाय, तब प्रति तीन घंटे में एक बार पिलाना चाहिये। बच्चे को अच्छी आदतें डलवाना बहुत महत्व की बात है, क्योंकि उसको आदतें बहुत जल्द पड़ती हैं। कम से कम खाने और सोने की आदतें तो जरूर ही पड़ती हैं। यदि उसको भर पेट खाना मिल जाता है, तो वह बहुत जल्द सो जाता है, और फिर दो तीन घण्टे के बाद जगता है। अरोग्य बच्चे की भूख लग भग पन्द्रह मिनट दूध पीने पर शान्त हो जाती है। प्रत्येक बार दोनों स्तनों को पिलाना माता के लिये विशेष सुखदायक बात होगी। प्रथम

तीन महीनों में बच्चा प्रति दिन बीस घंटे भी यदि सोते रहें, तो भी कोई हानि नहीं। एक वर्ष के बच्चे के लिये चौदह घंटे की निद्रा काफी होगी। बच्चे को कंधे में लगा कर सुलाना चाहिये, किन्तु उसके जगते रहते ही उसको पलने में लिटा देना चाहिये। और यदि उसको पहले से ही आदत डलवा दी जाती है, तो वह आपही आप सो जाया करता है।

अक्सर देखा जाता है कि ज्यों ही बच्चा रोया कि माता उसको दूध पिलाने लगती है, यह ठीक नहीं। इसी आदत से प्राय बच्चा बीमार हो जाता है। इसमें तिल मात्र भी सन्देह नहीं।

दिन में दो से लेकर चार बार तक भी यदि बच्चे को पाखाना हो, तो कोई हानि नहीं। उसका मल घोले हुये मोटे सरसों के आटे के समान होना चाहिये। उसमें दुर्गन्ध बहुत न होनी चाहिये। फटे हुये दूध के गोले उसमें न होने चाहिये। बच्चा जब पन्द्रह दिन का हो जाय, तब यदि वायु साफ हो तो घंटे दो घंटे के लिये उसे बाहर खुली हवा में ले जाने में कोई हानि नहीं।

बच्चे को माता यदि भरदूधपेट पिलाने की शक्ति रखती हो, तो बहुतही अच्छा है। ऐसी दशामेंफिर उसकोऔर कोईचीज देने की आवश्यकता ही नहीं। फिर भी जब कभी माता से उसको पूरा पूरा दूध नहीं मिलता, तब ऊपर का दूध कांच की शीशी से पिलाना पड़ता है। यदि माता कमजोर हो अथवा

किसी कारण से पिलाना ही न चाहती हो, और यदि हाल की जच्चा दाई न मिलती हो अथवा दाई रखने की इच्छा ही न हो तो बच्चे को बाहर का दूध शीशी से पिलाना ही पड़ेगा। डाक्टर की सम्मति बिना दाई को पसन्द न करना चाहिये।

शीशी में पिलाने के लिये दूध निम्न लिखित रीति से तैयार करना चाहिये। पहले गौ का ताजा दूध ६६० फा० तक गरम करे, और इसके बाद उसमें दूध से दूना पानी अथवा चूने का थिराया हुआ पानी मिलावे। उसमें थोड़ी शक्कर डाले। प्रत्येक शीशी में चुटकी भर नमक डाले।

हम लोगो में साधारण तौर पर यह खयाल पाया जाता है कि पानी मिला हुआ दूध बच्चे को न पिलाना चाहिये। परंतु वास्तव में यह भ्रम है। सच तो यह है कि खालिस दूध पचाना बच्चे के लिये बहुत कठिन बात है, और उसके पिलाने से बच्चे की पाचनक्रिया बिगड़जातीहै, इसलिये यदि दूधमें पानी मिलाकर उसे पिलाया जाता है तो उसको सहज ही में पच जाता है। माता का दूध यदि हम निकाल कर देखें, तो वह जितना पतला दिखाई देगा, उतना ही पतला दूध बच्चे के पचने योग्य होता है, इसलिये यदि बाहर का दूध बच्चे को पिलाना हो, तो माता के दूध के समान ही पतला करके पिलाना चाहिये।

पहले दो तीन मास के बाद फिर पानी का परिमाण क्रमशः कम करते जाना चाहिये यहां तक कि नौ दस मासके बाद गौ

का खालिस दूध, बिलकुल पानी न डालते हुए, उसमें थोड़ीसी शक्कर डालकर बेधड़क पिलाना चाहिये।

शहर में और गर्मी में दूध तपाकर, अथवा जन्तुविरहित करके देना चाहिये। उसमें जो पानी मिलाया जाय, वह भी अदहनका (गरम) होना चाहिये खौलाया हुआ दूध मलविरोध नहीं करता। वह सहज ही पचजाता है। कच्चा दूध तपाये हुए दूध की भांति शीघ्र पचनेवाला नहीं होता, उसमें पेटमें बिगाड़ पैदा होजाता है, और बच्चे कोबारबार पाखाना होता है। गरमकिये हुये दूधमें यह बात नहीं। इसके सिवाय दूध में यदि रोगजन्तु होते हैं, तो वे भी खौलाने से मर जाते हैं। दूध पर जो साढ़ी या मलाई पडती है, उसे चमचे से उसी में मिला देना चाहिये। यदि मलाव रोध हुआ हो तो, चूने के पानी की जगह अलसी का पानी (बार्लीवाटरBarley water) डालना चाहिये। यह तैयार करनेके लिये दो चम्मच अलसी एक पाइन्ट पानी में डालो और उसको यहा तक पकाओ कि दो-तृतीयांश रहजावे बाद को छान लो। अलसी का पानी प्रतिदिन तैयार करना चाहिये। निम्नाङ्कित कोष्टक के अनुसार भिन्न भिन्न अवस्था के बालकों को यदि दूध अथवा अन्न दिया जायगा, तो उनके लिये सहसा हानिकारक न होगा। फिर भी भिन्न भिन्नबालकों की प्रकृति के अनुसार फेरफार करना आवश्यक है।

बच्चे की उम्र।	कितनी देर से देना।	प्रत्येकबार कितना देना।
पहला अठवाड़े तक।	२ घंटे	१ औंस

१ से ६ अठवाडे।	३॥ ,,	१॥ से दो
६ से १२ ,,	३ ,,	३ से ४
चौथा और पाँचवा मास।	३ ,,	५
छठवां मास।	३ ,,	६
सातवां ,,	३ ,,	६
८। १० मास।	३ ,,	८

छठवें मास से लेकर दसवें मास तक दूध का परिमाण प्र मास पूतिवार लगभग एक औंस बढ़ाते जाना चाहिये।

आठ मास का बच्चा यदि दृढ़ और आरोग्य हो, और यदि उसके कुछ दांत निकल आये हों, तो उसको दिन में और प दो बार खूब पकी हुई रोटी, अथवा बिस्कुट अथवा भात दूध के साथ देना चाहिए। इसके सिवाय माता का अथवा गौ क दूध उसे अलग मिलना ही चाहिये।

जान पड़ता है, कुछ बच्चोंको जमा हुआ दूध Candeuse milk कान्डेन्स्ड मिल्क) भी लाभदायक होताहै। एक पियाले भर गरम पानी लो, और उसमें एक अथवा दो चमचे दूध डालो और उसको घोल कर पिलाओ। परन्तु तीन मास बाद फिर गौ का दूध पारम्भ करना चाहिये। उस दूध को यन्त्र कर देना चाहिये। दूध पिलानेकी शीशियां और नलियोंमें किसी पकार की गन्ध न रहनी चाहिये, उनको खूब साफकरके रखना चाहिये। दूध पिलानेके बाद अवशिष्टदूधको फेंकदेना चाहिये। और तुरन्त ही शीशी गरम पानी और सोडा से साफ कर

डालनी चाहिये। धोनेके लिये नली के जोड़ खोल देना चाहिये और उनको भलीभांति धोकर फिर ठंढे पानी में डाल कर खल-बला डालना चाहिये। जब उनका उपयोग न करना हो, तब एक पिंट में एक चम्मच के परिमाण से सेलिसि आफ सोडा अथवा बोरासिक एसिड ठंढे पानी में मिलाकर, उसको तपावे, और फिर उसी गरम पानी में उनको खलबला कर रख दे।

ऐसे अनेक बच्चे छुटपन में ही मर जाते हैं, जो माता के दूध के बिना पलते हैं। उनको दाल भात, रोटी, इत्यादि अन्न प्राय बहुत जल्द शुरू कर दिया जाता है। सात महीने के भीतरबच्चेको दूधके अतिरिक्तओर कोईखूराक न देनी चाहिये।

साधारण तया बच्चा जब नौ मास का हो जाय, तब उसे माता अपना दूध पिलाना बन्द करे, और दाल भात अथवा पतली खीर दी जावे। इसके बाद उसे थोड़ी थोड़ी रोटी और तरकारी भी देना शुरू करना चाहिये, परन्तु यह ध्यान में रहे कि जब तक बालक दो ढाई वर्ष का न हो जावे तब तक उसे अन्न का पदार्थ बहुत ही कम देने चाहिये-उसका मुख्य भोजन वास्तव में दूध रहना चाहिये।

कम उम्र और कमजोर बच्चों को थोड़ी थोड़ी खूराक कई बार में देनी चाहिये, यदि वे माता के स्तनों से दूध खींचने की शक्ति न रखते हों, तो चम्मच से उनको दूध पिलाना चाहिये (पश्चिमी देशों में, आवश्यकतानुसार बच्चों को दिन में दो बार ब्रांडी के दो दो बूंद भी दिये जाते हैं।

जिस बच्चे का अच्छी तरह से पालन पोषण होता है, व
पहले पांच महीने में प्रति सप्ताह पांच औंस के परिमाण
वजन में बढ़ता जाता है।

बच्चा जब रोता है, तब प्रायः हम लोगों में यह समझ
जाता है कि उसे कोई चीज चाहिये। परन्तु यह समझ
भूल है कि जितने बार वह रोवे, उसे भूख ही लगी है। ना
कभी कभी वह अन्य कुछ कारणों से भी रोता है। बच्चे
रोने का कारण दाई को ताड़ जाना चाहिये। जब बच्चे
खूराक दिये बहुत देर हो जाय, अथवा वह अपना अंगू
चहकने लगे, तब यह जानना चाहिये कि उसे भूख तो न
लगी है। जब कभी बच्चे के कपड़ों के बन्द कड़े बंध जाने
शरीर में कुछ घिसने लगता है, अथवा कोई चीज चुभ जा
है या पेट दर्द करता है, तब भी बच्चा रोता है, पाखाने-पेशा
के समय भी वह रोता है। जब बच्चा रोते समय एक विचि
प्रकार से मुह बनाता हो, अथवा उस का शरीर गरम हो
अथवा श्वासोच्छ्वास जल्दी जल्दी होता हो, तब वैद्य य
डाक्टर की सलाह लेना चाहिये।

आरोग्य बच्चे के भी दिन में एक दो बार रोने की आवश्य
कता है। रोने से उसके फेफड़ों से व्यायाम मिलता है, और
मजबूत होते हैं। यदि उसको कोई कष्ट न होगा, तो वह रो
के बाद तुरन्त ही सो जायगा। अकसर जब बालक उनी
होवे है, तब भी रोते हैं। कभी कभी उनको प्यास भी लगत

है, ऐसे समय में यदि उन्हें थोड़ा सा पानी भी पिला दिया जाय, तो कोई हानि नहीं।

कभी कभी बच्चों का थोड़ी देर के लिये पेशाब रुक जाता है। ऐसी दशा में यदि उनका निचला भाग सेंक दिया जाय, तो पेशाब शुरू हो जाता है। जब बच्चे को बहुत देर तक पेशाब नहीं होता, और इस कारण कष्टित होकर जब वह अस्वस्थ हो जाता है, तब मूत्रोत्सर्जक नलिका का भी उपयोग करना पड़ता है।

स्तन फूलना—हालही के उपजे हुये बच्चे के स्तन कभी कभी फूल जाते हैं, और सुर्ख तथा मुलायम हो जाते हैं, और उनसे कभी कभी दूध के समान एक पदार्थ भी निकलता है। गरम पानी से सेंकने से वे बहुत जल्द आराम हो जाते हैं। इस विकार के होने पर स्तनों को मलना अथवा निचोड़ना न चाहिये।

पेट में बात भरना और दर्द करना—अकसर खाने के बाद अथवा दूध पीने पर ये विकार हो जाते हैं। इनके कारण बच्चा अस्वस्थ होकर प्राय रोने लगता है। रोते समय उसको लेकर जब उसको पीठ पर थपथपाया जाता है, तब उसे शान्ति होती है और तब उसको कुछ आराम मालूम होता है। इस विकार के होने पर उसका पेट अलसी की गरम पुलटिस से सेंकना चाहिये, और ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे

उसे पाख़ाना साफ हो जाय । बच्चे की ख़ूराक में कोई गड़बड़ी हो जाने के कारण यह विकार हो जाता है, इस लिये इस ओर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये । ऐसी हालत में, यदि बच्चे को ऊपर का दूध पिलाया जाता हो, तो उसमें चूने का पानी कुछ अधिक कर देना चाहिये, अथवा बार्लीवाटर डाल कर उसको पतला बनाना चाहिये । बच्चे को ठंढक न लगने पावे ।

मलावरोध—कभी कभी जन्म ही से बच्चे का मलद्वार बन्द होता है, इस लिये उसके पैदा होते ही यह भली भाँति देख लेना चाहिये कि वैसा तो नहीं है, और यदि वैसा ही हो, तो शस्त्र वैद्य के द्वारा इसका उपाय करना चाहिये । मलावरोध अक्सर अँतड़ियों के विकार से अथवा अयोग्य अन्न के देने से हो जाता है । जो बालक अपनी माता का दूध पीता है, उसे मलावरोध हो जाय, तो उसकी माता को ही कोई सौम्य रेचक देना चाहिये । सिडलिज़ पाउडर चाय के आधे चमचे भर यदि बच्चे को दे दिया जाय, तो भी कोई हानि नहीं ।

बालकों के लिये फास्फेट आफ सोडा एक सारक ओषधि है । इसको दो बार थोड़ा थोड़ा देना चाहिये ।

साबुन की गुल्ली पाखाना होने के लिये गुदद्वार में लगाते हैं । दो इंच लम्बा और आध इंच मोटा एक टुकड़ा साबुन का लो, और उसको घिस करके चिकना तथा एक ओर कुछ

बारीक झुकता हुआ बनाओ। इसके बाद उसका सिर्फ सिरा गुदद्वार में डालो। इससे पाखाना साफ हो जायगा।

अतिसार—यह विकार बारम्बार हो आता है। साधारण तया बच्चे को जब आवश्यकता से अधिक अथवा खराब अन्न दे दिया जाता है, तभी यह विकार होता है। कभी कभी मल पतला और हरे रंग का होता है। उसमें आव न पचे हुये दूध की गुलथियां होती हैं। मलमें दुर्गन्धि आती है। इस विकारके समय बालक की खुराक की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये और यदि बालक को ऊपर का दूध पिलाया जाता हो, तो उसको खूब तपा कर और बहुत सा चूने का पानी डाल कर पिलाना चाहिये। यदि वह माताका दूध पाता है,और पाखाने से बिलकुल हैरान हो गया हो, तो दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिये। और दूध और लाइम वाटर या चूना का पानी अथवा बार्लीवाटर या चावलों का पानी प्रत्येक बार थोड़ा थोड़ा देते जाना चाहिये। ऐसे समय में बच्चे का शरीर और उसके वस्त्र बिलकुल गरम होने चाहिये, उसको गरम कपड़े में लपेट कर रखना चाहिये, जिससे उसका शरीर गरम बना रहे उसके पैर भी खुले न रखने चाहिये।

उल्टी—कभी कभी जब बालक को बहुत खिला दिया जाता है, उसको उल्टी होने लगती है। खाने के बाद तुरन्त ही खाकि होती है। उससे कष्ट नहीं होता। सिर्फ एक या दो बार बच्चा ओंकता है। परन्तु इससे उसकी अरोगता में बिलकुल

धक्का नहीं लगता। यह विकार यदि अधिक वेग से होने लगे तो उस पर योग्य उपचार करना चाहिये।

कवँल-बहुत से बच्चों को कवॅल का विकार भी हो जाता है। पाखाने का रंग जब तक सफेद न हो, आखें बहुत पीली न हो जांय, और पेशाब से कपड़े में जब तक पीले दाग न पड़ने लगें, तब तक डरने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि ये सब लक्षण शुरू हो जांय, तो उस पर योग्य उपचार करना चाहिये।

मुख के भीतरी भाग में सफेद चट्टे पड़ना-यह विकार जब बच्चों को होजाय, तब यह समझ लेना चाहिये कि जो खुराक उसको दी जाती है, वह उसको पचती नहीं। ऐसी दशा में खुराक का परिमाण कम कर देना चाहिये, और यह देखना चाहिये कि पाखाना साफ होता है या नहीं। ग्लिसेराइन आफ बोरेक्स नामक औषधि मुँह और जीभ में मलनी चाहिये। यदि इस विकार के साथ ही साथ अतिसार शुरू हो जाय, गुद-द्वार के आस पास फुंसिया उठ आवें, तो योग्य उपचार करने में विलम्ब न करना चाहिये।

झटके-बच्चों को झटकों का आना बहुत ही भयानक विकार है। दन्तोद्भेद के समय अथवा उदर जन्तुओं के हो जाने पर, अथवा कोठे के बिगाड़ के कारण,अथवा अन्य कारणोंसे यह विकार होजाता है। प्रथम झटकेके आतेही बच्चे को पांच मिनट तक गरम पानी में गले तक डुबा रखना चाहिये। उस पानी में

क गेलन में १ बड़े चमचे भर राँकी बुकनी डालनी चाहिये। च्चे का शरीर जब कि गरम पानी में डूबा हो, उसके सिर पर ढे पानी से भीगा हुआ रूमाल रख कर उसके सिर को ठण्डा नना चाहिये। उसको रेंडी का तेल देकर उसका कोठा साफ जाने देना चाहिये। उपर्युक्त उपायों से जब लाभ मालूम हीं होता हो तब इस विकार में पोटासियम ब्रोमाइड, क्लोरल ायडस इत्यादि शामक औषधियां देते हैं। बच्चे की अवस्था अनुसार एक से दो ग्रेन तक नेटोलियन नामक ओषधि ोड़ी सी शक्कर के साथ खिलाना चाहिये, इससे यदि जन्तुओं ा विकार हुआ होगा, तो आराम होजायगा।

आखों का सूजना—माता के योनिमार्ग के दुर्गन्धियुक्त ्राव का सम्बन्ध जब बच्चे की आखों से हो जाता है, तब ह विकार होता है, इसके अतिरिक्त साबुन का फेन आखों चले जाने से अथवा ठण्ढक मे भी यह विकार हो जाता है। स लिये बच्चे के पैदा होते ही मर्क्युरिक परक्लोराइड (२००० ें १) लेकर उससे उसकी आखें सावधानी पूर्वक धोनी ाहिये।

यदि समय पर ही यथोचित उपाय नहीं किया जाता, तो ाखें खराब हो जाने की भी सम्भावना रहती है। यह विकार तब एक आख में हो जाता है और उसका मवाद इत्यादि ूसरी आख में लगता है, तब वह आख भी बिगड़ जाती है, ही नही, बल्कि स्पर्श से यह विकार दूसरों को भी हो जाता

है। इस लिये नेत्र–वैद्य की सलाह से उचित उपचार करना चाहिये। इसके सिवाय उपर्युक्त लोशन से बार बार आंखों को धोते रहना चाहिये। जिन कपड़ों के टुकड़ों से इस प्रकार की बिगड़ी हुई आखें पोंछी जावें, उनको जला देना चाहिये। पलकों में वेसलीन भी लगाना चाहिये, जिससे आंखों में रूक्षता न आने पावे।

दन्तोद्भव–बच्चों के प्रथम दांत प्राय सातवें मास से लेकर नवें मास तक आते हैं। कभी कभी इससे कुछ जल्दी और देर को भी दांत निकलते हैं। पहले दांत कुल बीस होते हैं, जो क्रमश प्राय दो वर्ष के अन्दर सब निकल आते हैं। नीचे के दांत अकसर ऊपर के दांतों की अपेक्षा जल्दी निकलते हैं। इस समय में बच्चे के राल बहुत गिरती है, और उसके मसूड़े अलसाते हैं; जिससे किसी कठिन पदार्थ के चबाने को उसकी इच्छा होती है। निम्बू के ताजा रस में उंगली डुबो कर उसके मसूड़ों में मलना चाहिये, इससे उसको आराम मालूम होगा, और मसूड़ों की अलसाहट दूर हो जायगी।

दांत निकलते समय कुछ बच्चों को तो कोई तकलीफ नहीं होती, कुछ को झटके आते हैं, अतिसार होता है, खांसी आने लगती है, बुखार आने लगता है, इत्यादि। दांत निकलते समय अनेक लड़कों को इतना कष्ट होता है, कि उससे वे मर भी जाते हैं। इस लिये इस समय में बच्चों की विशेष खबरदारी रखनी चाहिये। उनको सर्दी न होने देना चाहिये, ऐसे समय

में पूय शामक ओषधियां दी जाती है। दन्तोद्भव के समय के विकार जब विशेष बढ़ते हुये दिखाई दें, तब बहुत जल्द उन पर उचित उपचार करने चाहिये।

बीसवा भाग।

भिन्न भिन्न प्रयोगों की रीति।

बस्ति (Enema एनीमा)–द्रव पदार्थों को शरीर में पहुंचाने की क्रिया को बस्ति देना कहते हैं। फिर वह अंतड़ियों के निचले भाग को खाली करने के लिये हो, अथवा मुंह से उस रोगी को अन्न पहुंचाने के लिये हो कि जो मुंह से अन्न निगल नहीं सकता, अथवा निगला हुआ अन्न जिसके पेट में नहीं ठहरता।

जिस पिचकारी से गुदद्वार का मल निकालकर मलाशय को खाली करना होता है, वह पिचकारी लगभग एक पाइन्ट की अथवा उससे बड़ी होनी चाहिये। परन्तु जिससे अन्न डालना होता है, वह छोटी, अर्थात् दो से चार औंस तक की होनी चाहिये। पिचकारी कोई भी हो, जब उसका व्यवहार करने लगें, तब उसकी सारी हवा को बाहर निकल जाने देना चाहिये। इसके बाद उसके सिरे में तेल लगाकर उसको धीरे धीरे गुदकांड में डालना चाहिये।

अच्छी रेचक वस्ति तैयार करने की साधारण कृति-४ ड्राम रेंडी का तेल, ८ ड्राम आलिव आइल या गरी का तेल १ ड्राम टरपेंटाइन और २० औंस गरम पानी। इतना पानी गुदकाड में डालने से मलाशय बिलकुल साफ हो जायगा। साबुन का पानी २० औंस यदि गुदद्वार से पेट में जायगा, तो भी अच्छा जुलाब हो जायगा। इधर कुछ दिनों से शुद्ध ग्लिसराइन की भी वस्ति दी जाने लगी है। गुदकाड में एक छोटे चमच भर ग्लिसेराइन के जाने से पाखाना साफ हो जाता है। इस काम में एक खास तरह की ग्लिसेरिन सिरिंग नामक पिचकारी का उपयोग किया जाता है।

बृंहण वस्ति (Nutrient Enema न्यूट्रियेंट एनीमा)-यह अनेक पदार्थों को मिलाकर दी जाती है। इसमें प्राय मांस-रस, पोर्ट वाइन अथवा ब्रांडी और कच्चा अन्डा होता है। इन पदार्थों को भीतर पहुँचाते समय गरम करना होता है, और फिर उनको धीरे धीरे सावधानी के साथ भीतर पहुँचाते है, क्योंकि उस समय यदि अतड़ियों की कुछ भी गड़बड़ हो जायगी, तो वस्ति के उक्त सब पदार्थ बाहर गिर जायगे, और कुछ लाभ न होगा। सिर्फ बृंहण वस्ति लेकर ही रोगी बहुत दिन तक जीवित रह सकता है।

औषधि गुटिकायें (Suppository सपोजिटरी) ये एक मुलायम पदार्थ कोकोकी तरह बनाई जाती है, और बन्दूककी गोलीके समान, लंबी परन्तु गुल्ली के समान उभड़ी होती है। उनमें

औषधि के पदार्थ पड़े होते है। ये जब गुदकांड में रखदी जाती हैं तब उनका प्रभाव शरीर पर पडता है। इन्हीं के समान योनिमार्ग में रखने की भी गुटिकायें होती हैं।

ये गुटिकाएं शरीरके गुह्य भागमें जब रखी जाती हैं,तब शरीर की उष्णता से उनका चरबी का भाग पिघल जाता है, और उनकी ओषधि गुदकांड की पतली श्लेष्मल त्वचा के द्वारा धीरे धीरे प्रविष्ट हो जाती है। जब कभी शरीर के किसी विशिष्ट भाग पर ओषधि का असर डालना होता है, अथवा किसी कारण वश मुह से ओषधि नहीं दी जाती, तब इन गुटिकाओं का उपयोग किया जाता है। अफीम का सत प्राय इन गुटिकाओं में डाला जाता है। डाक्टर की सम्मति के बिना दाई को इन गुटिकाओं का उपयोग बार बार न करना चाहिये। मलविसर्जन के लिये ग्लिसेराइन की गुटिकाओं का उपयोग किया जाता है।

योनि धावन (Vaginal dauch वजायनल डूश)-यह प्रयोग धावन यन्त्र अथवा पिचकारी से किया जाता है। धोने का यन्त्र और कुछ नहीं, एक जस्ते का बर्तन होता है। जिसमें धाने का पानी रहता है। इसको रोगी से कुछ ऊंचे पर रखते है उसके अन्त में एक काक रहता है, उसमे एक रबर की नली लगाकर योनिमार्ग में, बराबर प्रवाह जारी रखा जा सकता है।

धोते समय रोगी स्त्री उतानी लेटे, नितम्ब खूब ऊपर करके इस प्रकार अपने शरीर की स्थिति रखे कि जिससे योनिमार्ग से जो पानी बह कर आवे, वह परात में अथवा अन्य किसी उथले बर्तन में गिरे। प्रसूति के बाद योनिमार्ग में हवा का जाना बहुत खतरनाक है, इसलिये पहले नली का काक जब छुड़ा दिया जाय, और भीतर की सब हवा निकल जाय, तथा पानी बराबर आने लगे, तब नली का मुंह इस प्रकार पकड़ना चाहिये कि वह योनिमार्ग की पिछली ओर की दीवार के अन्तमें लगे। यह तजवीज इसलिये आवश्यक है कि जिससे ग्रीवा में हवा का प्रवेश न हो, और गर्भाशय की धुलाई में पानी न पहुँचे। योनिमार्ग में डालने की नलिका वल्कनाइट अथवा कांच की बनी होती है, उसके बिलकुल अन्त में सिरे पर बीचो बीच छेद नहीं होते, किन्तु वे छेद अन्त में परन्तु एक ओर होते हैं। क्योंकि ग्रीवा के छिद्र से गर्भाशय में पानी के जाने की बहुत सम्भावना रहती है।

योनि धोने के लिये (११० से १२० फा०) जितना सहा जाय, उतना ही गरम पानी काम में लाना चाहिये। उसमें कारबोलिक एसिड का पानी, कांडी का फ्लुइड अथवा अन्य कोई जन्तुनाशक द्रव्य उचित परिमाणमें डालना चाहिये। ओषधि के पानी का बर्तन रोगी से बहुत ऊंचे पर न होना चाहिये। क्योंकि इससे उस पानीका वेग अत्यन्त ज़ोरदार हो जायगा। रोगी के शरीर के नीचे वाटरप्रूफ का कपड़ा अथवा

मोमजामा डालना चाहिये। इससे यदि कुछ पानी गिरेगा भी तो कोई हर्ज नहीं। अस्पताल में प्राय प्रत्येक रोगी के लिये अलग अलग कांच की योनिधावन-नलिका होती है, इस से एक रोगी का संसर्ग दूसरे रोगी से नहीं होने पाता।

कठोर में यदि दाह होता है, तो उष्णोदक से योनिधावन करने से बहुत लाभ होता है। धावन का गुण प्राय धोने की योग्यता पर ही सर्वथा अवलम्बित है। रोगी स्त्री उतानी पड़े, नितम्ब उठाए रहे, और सिर नीचे किये रहे। दिन में दो अथवा तीन बार प्रत्येक बार लगभग बीस मिनट तक प्रति दिन धावन किया जाता है। धावन के बर्तन का पानी ज्यों ज्यों समाप्त होता जाय, त्यों त्यों उसमें उतनी ही उष्णता का पानी और डालते जाना चाहिये। हिजिन्सन की पिचकारी से भी योनि धावन किया जाता है। उसका उपयोग करने के पहले भीतर की हवा निकाल डालनी चाहिये, और एक दम अधिक वेग न देना चाहिये। योनिधावन करते समय पलंग के बिलकुल किनारे पर स्त्री के नितम्ब करके बाईं करवट लिटाना चाहिये। हिजिन्सन की पिचकारी में लगी हुई योनिधावन नलिका में जन्तु-नाशक तेल लीन लगा कर, जब यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि उसके भीतर हवा बिलकुल नहीं है तब उसे योनिमार्ग में डालना चाहिये। धोने का पानी जरा गहरे बर्तन में रखना चाहिये, और योनि से निकलने वाला पानी

नितम्बों के नीचे रखी हुई परात में गिरने देना चाहिये, इससे बिछौना भी गीला न होगा।

रोगी स्त्री को उताना लिटा कर भी यह प्रयोग किया जा सकता है। पिचकारी का उपयोग खूब साफ धोने या रक्त स्राव बन्द करने में किया जाता है। प्रसूति के बाद योनिधावन करते समय द्रव्य में जन्तु नाशक द्रव्य जैसे कारबोलिक एसिड परक्लोराइड आफ मरक्यूरी, अथवा कांडी का फ्लुइड, इत्यादि डालने ही चाहिये। यदि परक्लोरोइड आफ मरक्यूरी का उपयोग किया जाय तो उस द्रव को अधिक जोरदार न बनाने की सावधानी रखनी चाहिये। इसका परिमाण २००० भाग पानी में १ से अधिक कदापि न होना चाहिये। भीतर गया हुआ द्रव जितना कि गया हो उतनाही योनिमार्ग से बाहर निकलना अन्यथा योनि द्रव से फूल जायगी, और उस द्रव के गर्भाशय में जाने का भी भय रहेगा। यदि ऐसा हो जाय, तो उंगली से विटप को धीरे धीरेसे ही पीछे खींचना चाहिये,इससे,सब पानी बाहर निकल आवेगा।

योनिमार्ग में गूंजे लगाना (Plugging the vagina प्लगिंग दि वजायना-गर्भपात होने समय अथवा अन्य कारणों से होने वाला रक्त स्राव कुछ समय के लिये बन्द करने को योनि मार्ग में गूंजे लगाये जाते है। रूई के गूंजे सब से अच्छे होंगे। कारोमिच सब्लिमेण्ट अथवासालिसिक एसिड के पानी

में डुबाये हुये लिंट के टुकड़े भी यदि इस काम में लाये जाय तो कोई हर्ज नहीं।

साधारण मुर्गी के छोटे से अंडे के समान उस कपड़े के अथवा लिंट के बहुत से गूजे बना लिये जाय, और फिर उनको कारबालिक एसिड के द्रव में भिगो कर साधारण तौर से निचोड़ लिया जाय। इसके बाद फिर उनको एक लम्बी और बारीक डोरी में छैः छैः इंच के अन्तर पर बांधा जाय। इसके बाद फिर उनको एक के बाद एक करके योनिमार्ग में तहां तक डाला जाय कि जब तक सारा मार्ग भर न जावे गूजे लगाने के पहले गुदकाड और मूत्राशय को खाली कर देना चाहिये, और योनिमार्ग को पिचकारी से धोकर उसके जमे हुये रक्त के गालों को निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार योनिमार्ग में जब गूजे लगा दिये जाते हैं तब रक्त का एक बूंद भी बाहर नहीं आता। छः से लेकर दस घण्टे से अधिक समय गूजों को भीतर न रहने देना चाहिये। जिस डोरी में वे गूजे बंधे होते हैं उसका सिरा खींचते ही सब गूजे सहज ही में निकल आते हैं। गूजे जब तक भीतर रहते हैं तब तक, पेशाब होने को होना हो तो वह मूत्रोत्सर्जक शलाका से निकालना पड़ता है। योनिमार्ग में जब तक गूजे हैं तब तक पाखाना न होने देना चाहिये। योनिमार्ग को बन्द करने के लिये कभी कभी रेशमी अथवा रबरी कपड़े के टुकड़ों का उपयोग भी किया जाता है। किसी किसी मौके पर

गूंजो की जगह सादे रेशमी रुमाल का भी उपयोग कर लिया जाता है।

जिस समय गर्भाशय अधिक बड़ा होता है, उस समय यदि योनिमार्ग गूंजो से बन्द किया जायगा, तो उसके भीतर ही रक्तस्राव होता रहेगा इस लिये ऐसे समय में योनिमार्ग में गूंजे न लगाना चाहिये।

ग्लिसराइन का फाहा—इसका उपयोग प्राय कटीरदाह और रक्त सञ्चय के समय किया जाता है। यह फाहा ग्लिसराइन में रुई को भिगो कर बनाया जाता है। उसको योनिमार्ग में रखते हैं। इसमें भी एक बारीक डोरा बांध देते हैं कि जिससे शीघ्र ही निकाला जा सके।

मूत्रोत्सर्जक नलिका—मूत्रोत्सर्जन कराने के लिये दाई को चाहिये कि,८या१० नम्बर की पुरुष की रबरी मूत्रोत्सर्जक नलिका अपने पास रखे। स्त्रियोंकी नलिकाका इस काम में उपयोग नहीं होता क्योंकि वह छोटी होती है। नलिका,जहां तकहो सके,खूब साफ रखने की सावधानी रखनी चाहिये। और इसके लिये उपयोग करने के पहले, और उसके बाद उसको कारबोलिक एसिड के पानी से धोना चाहिये। कुछ रोगियों को मूत्रोत्सर्जन बहुत दिनों तक कराना पड़ता है। ऐसी दशामें नलिका का उपयोग हो जाने के कारण उसको कारबोलिक एसिड के पानी में (४० में १) डाल रखनी चाहिये। जो नलिका

घिस गईहो अथवा उसपर काई या मेल जम गया होतो उसका उपयोग न करना चाहिये। नलिका से यदि कोई अशुद्ध द्रव

द्रव्य मूत्राशयमें चला जाता,है,तो उसमें दाह पैदा होजानेकी बहुत सम्भावना रहती है। यह रोग बहुत बुरा है। कभी कभी इस रोग का रोगी अच्छा ही नहीं होता। इसलिये इस विषय में पूरी पूरी सावधानी रखनी चाहिये। मुलायम मूत्रोत्सर्जक नलिका ओं का उपयोग करने के पहले, उनको गरम पानी में दस पन्द्रह मिनट तक खौलाना चाहिये। इससे वे, साफ हो जा ती है। रबर की नलिका ओं का विशेष उपयोग सूतिका काल में होता है।

प्रसति के बाद यदि मूत्रोत्सर्जक नलिका मूत्राशय में डाल नी हो, तो मूत्रमार्ग का छिद्र आखों से देख कर उसमें उसको डालना चाहिये। सिर्फ उँगली से मूत्रमार्ग का छिद्र टटोल कर उसमें नलिका के डालने का प्रयत्न न करना चाहिये। क्यों कि ऐसा करने से नलिका के साथ ही सूतिकास्राव के अंश के मूत्राशय में चले जाने की सम्भावना रहती है। स्त्री उतानी लेट कर अपनी जघाएं एक दूसरे से दूर करके पकड़े रहे। और दूसरा कोई भगोष्ठ चौड़ा करके पकड़े रहे। सम्पूर्ण भाग जन्तु नाशक द्रवसे धो डाले। इसके बाद पेशाब जब बाहर निकल ने लगे, तब इस बातकी खबर दारी रक्खे कि योनिमार्ग में वह न गिरने पावे और जननेन्द्रिय के जखमों में भी न लगने पावे।

उदर-बंधन--यह बन्धन इतना, चौड़ा होना चाहिये कि उरोस्थि के सिरे और नाभि के बीचों बीच की जगह से ले कर जघनास्थि के नीचे तक पहुंच जाय। जघनास्थि सन्धि के उपरी ओर गर्भाशय पर दाब पड़ने के लिये तौलिये की घड़ी रख कर उसके ऊपर से उदर बन्धन सेफ्टी पिन्स से पूर्वोक्त रीति से खूब मजबूत बाधना चाहिये।

बाह्य जननेन्द्रियों पर लगाये हुये लेप अथवा औषधियों के रहने के लिये अंगरेजी के T इस अक्षर के आकार का बन्धन काम में लाते हैं। इस बन्धन का ऊपरी आड़ा पट्टा कमर के आसपास लपेट कर बांध देना चाहिये और खड़ा पट्टा, दोनों जघाओं के बीच से डाल कर लगोटी के समान बाधना चाहिये। इस पट्टे के योग से बाह्य जननेन्द्रियों और विटप के ऊपर के जखमों की पट्टियां मजबूत बेठ जाती हैं।

दुग्धशोषक यंत्र (Breast pump ब्रेस्ट पम्प) दूध से भरे हुये स्तनों से दूध निकालने के लिये इस यंत्र का उपयोग किया जाता है। इससे फूले हुये स्तन आकुचित हो जाते हैं, और चूचुकों के भीतर चले जाने से जो कष्ट होता है वह भी कम होजाता है। दूध निकालने में वास्तव में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे दूध तैयार होने की क्रिया में कोई कमी नहीं होती। दूध का प्रवाह बराबर जारी रहता है। दुग्धशोषक यंत्र के बदले कोई चोडे मुंह की शीशी खोलते हुये पानी से भर कर, उसका कुछ पानी निकाल

कर, तुरन्त ही उसके मुंह को स्तन के चूचुक पर लगा देना चाहिये, और ठंडे पानी में निचोड़ा हुआ कपड़ा उस शीशी के आसपास लपेट देना चाहिये, इससे भीतर की उष्ण हवा ठंडी होकर थोड़ी जगह घेरती है, इस कारण स्तनों के चूचुक शीशो में खींचे जाते हैं।

हायपोडर्मिक सिरिंज—त्वचा के अन्दर ओषधि डालने के लिये इस नाम की एक पिचकारी होती है। इस पिचकारी के सिरे पर एक पोली सुई लगाई जा सकती है। उसके द्वारा खाल के अन्दर ओषधि का द्रव पहुँचाया जा सकता है। कभी कभी अर्गाटिन देने के लिये दाई इस पिचकारी का भी उपयोग करती है। इस पिचकारी का उपयोग करते समय दाई को यह जाँच करके देख लेना चाहिये कि पिचकारी साफ और काम में लाने योग्य है,अथवा नहीं। यह पिचकारी लगाने के पहले सारी हवा बाहर निकाल देनी चाहिये। ओषधि का द्रव मांसल भाग में, अर्थात् नितम्ब के समान भाग में, छोड़ना चाहिये। हायपोडर्मिक पिचकारी का उपयोग डाक्टर की देख रेख में ही करना चाहिये। किसी बड़ी अशुद्ध रक्तवाहिनी में पिचकारी के न जाने की विशेष खबरदारी रखनी चाहिये।

पुल्टिस और बफारा—लिन्सीड मील अथवा अलसी की पुल्टिस तैयार करने के लिये कटोरेमें शुद्ध और स्वच्छ खौलता हुआ पानी डालना चाहिये, और उसमें अलसी का भुनी हुआ आटा डाल कर उसे वहां तक घोलना चाहिये कि जहां

खौलते हुए पानी से भर करा रखनी चाहिये। बच्चों ज
इसे सन्दूक में रखा जाय, तब उसके शरीर पर सदैव के कप
रहने चाहिये। इसके अतिरिक्त जो बच्चा कम दिन का होत
है उसके शरीर के आस पास रुई की गद्दियाँ भी लगा देते
कि जिससे वह ठंडक से पेंड न जाय। इस रीति से बहुत कम
दिन के बच्चे जीवित रक्खे जा सकते हैं।

दुग्ध शुद्धि—(Sterilization of milk स्टेरिलायजे
शन आफ मिल्क)—गौ के दूध में अक्सर रोग-जन्तुओं के बढ़
की बहुत सम्भावना रहती है, इस लिये गौ का दूध यदि छोटे
बच्चों को पिलाना हो तो वह बिलकुल जन्तु विरहित अवश्य
होना चाहिये। दूध किस रीति से दुहते हैं, यह देखने पर
उसकी आरोग्य-नाशकता तुरन्त ही ध्यान में आजायगी।
गौओं के बाड़े, जहाँ वे बाँधी जाती हैं उनमें हवा का संचार
तो बिलकुल होता ही नहीं, बाड़े जन्तुओं से बिलकुल
भरे रहते हैं। गौ भैंसों के अस्वच्छ शरीरों को एक ओर रख
कर यदि दूध दुहाने वालों की स्वच्छता-विषयक लापरवाही
को देखा जाय तो मन में बिलकुल घृणा का भाव जागृत ह
जाता है। दूध दुहते समय पहले वह हाथों में लगता, और
फिर बर्तन में आकर गिरता है। उपर्युक्त सब बातों पर यदि
ध्यान दिया जावे तो अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि हमारे
कच्चे दूध में लाखों ही जन्तु होते, और उनके कारण भिन्न
भिन्न रोगों का उत्पन्न हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

जो गौएँ शहर में बाड़ों में रखी जाती हैं उनमें से अधिकांश गौओं के थनों में रोग अवश्य होता है। ५० फी सदी गौओं के दूध में उनके थनोंके रोग अवश्य रहते हैं। इससे स्पष्ट मालूम हो सकता है कि बाजारू कच्चे दूध के उपयोग से क्या हानि होती है। यदि आप चाहते हैं कि दूध के द्वारा बच्चों के पेट में रोगजन्तु न जाया करें, अथवा कम जावें, तो, जन्तु नाशन करना ही चाहिये। दूध को कुछ देर तक पकने देना चाहिये। वह जब २१२ फा० या इससे भी अधिक तपाया जाता है तब उसके रोग जन्तु मरते हैं। परन्तु इतना तपाया हुआ दूध कोई इस्तेमाल नहीं करता, इसलिये उसे कमसे कम १५६ फा० तो अवश्य तपाना चाहिये, इससे अधिकांश रोग-जन्तु मर जाते हैं। और दूध का स्वाद भी ज्यों का त्यों बना रहता है। तपाते समय दूध को चमचे से चलाते रहना चाहिये और थर्मामीटर से उष्णता भी देखते रहना चाहिये।

टायफाइडज्वर के जन्तु १४० फा० उष्णता से दस मिनट में मर जाते हैं। डिफथेरिया के जन्तु १४६ फा० की उष्णता से दस मिनट में मरते हैं। थना के रोग जन्तु १४८ फा० से १५ मिनट में अथवा १५८ फा० से दस मिनट में मरते हैं।

दूध तपानेकी रीति-खौलते हुए पानी के बर्तन में एक दूध का बर्तन रख कर उन बर्तनों को मन्दाग्नि पर रख देना चाहिये। दूध के बर्तन में जितना दूध हो उसका तिगुना पानी नीचे के बर्तन में होना चाहिये। दूध के बर्तन में उष्णता माप

खौलते हुये पानी से भर कर रखनी चाहिये। बच्चा
इस सन्दूक में रखा जाय, तब उसके शरीर पर सदैव के
रहने चाहिये। इसके अतिरिक्त जो बच्चा कम दिन का
है उसके शरीर के आस पास रुई की गद्दियाँ भी लगा दे
कि जिससे वह ठंढक से ऐंठ न जाय। इस भांति से बहुत
दिन के बच्चे जीवित रखे जा सकते हैं।

दुग्ध शुद्धि—(Sterilization of milk स्टेरिलाय
शन आफ मिल्क)—गौ के दूध में अकसर रोग-जन्तुओं के व
की बहुत सम्भावना रहती है, इस लिये गौ का दूध यदि
बच्चों को पिलाना हो तो वह बिलकुल जन्तु विरहित अव
होना चाहिये (दूध किस रीति से दुहते हैं, यह देखने
उसकी आरोग्य-नाशकता तुरन्त ही ध्यान में आजायग
गौओं के बाड़े, जहां वे बांधी जाती हैं उनमें हवा का सच
तो बिलकुल होता ही नहीं, बाड़े जन्तुओं से बिलकु
भरे रहते हैं। गौ भैंसों के अस्वच्छ शरीरों को एक ओर र
कर यदि दूध दुहने वालों की स्वच्छता-विषयक लापरवा
को देखा जाय तो मन में बिलकुल घृणा का भाव जागृत
जाता है। दूध दुहते समय पहले वह हाथों में लगता, अ
फिर बर्तन में आकर गिरता है। उपर्युक्त सब बातों पर य
ध्यान दिया जावे तो अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि हम
कच्चे दूध में लाखों हो जन्तु होते, और उनके कारण भिन
भिन्न रोगों का उत्पन्न हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

जो गौएँ शहर में थाडों में रखी जाती हैं उनमें से अधिकांश गौओं के थनों में रोग अवश्य होता है। ५० फी सदी गौओं के दूध में उनके थनों के रोग अवश्य रहते हैं। इससे स्पष्ट मालूम हो सकता है कि बाजारू कच्चे दूध के उपयोग से क्या हानि होती है। यदि आप चाहते हैं कि दूध के द्वारा बच्चों के पेट में रोगजन्तु न जाया करें, अथवा कम जावें, तो जन्तुः नाशन करना ही चाहिये। दूध को कुछ देर तक पकने देना चाहिये। वह जब २१२ फा० या इससे भी अधिक तपाया जाता है, तब उसके रोग-जन्तु मरते हैं। परन्तु इतना तपाया हुआ दूध कोई इस्तेमाल नहीं करता, इसलिये उसे कमसे कम १५६ फा० तो अवश्य तपाना चाहिये, इससे अधिकांश रोग-जन्तु मर जाते हैं। और दूध का स्वाद भी ज्यों का त्यों बना रहता है। तपाते समय दूध को चमचे से चलाते रहना चाहिये और थर्मामीटर से उष्णता भी देखते रहना चाहिये।

टायफाइड ज्वर के जन्तु १४० फा० उष्णता में दस मिनट में मर जाते हैं। डिफथेरिया के जन्तु १४६ फा० की उष्णता में दस मिनट में मरते हैं। थनों के रोग जन्तु १४६ फा० में २० मिनट में अथवा १५८ फा० से दस मिनट में मरते हैं।

दूध तपाने की रीति-खोलते हुए पानी के बर्तन में एक दूध का बर्तन रख कर उन बर्तनों को मन्दाग्नि पर रख देना चाहिये। दूध के बर्तन में जितना दूध हो उससे तिगुना पानी नीचे के बर्तन में होना चाहिये। दूध के बर्तन में उष्णता न

क यंत्र रखना चाहिये। १५८ फा० के उपर उष्णता न बढ़ने देनी चाहिये। बीस मिनट तक जब १५४ फा० से लेकर १५८ फा० तक दूध तपाया जायगा तब वह रोगजन्तु विरहित होगी।

दूध के तपाने के बाद फिर इस बात की भी पूरी पूरी खबरदारी रखनी चाहिये कि नवीन जन्तु उसके अन्दर न पैठ जावें। और यदि तुरन्त ही उसे न पिलाना हो तो उसको ठंढी जगह में, स्वच्छ बर्तन में भर कर रख देना चाहिये, और उसके ऊपर साफ ढकन भी लगा देना चाहिये, जिससे उसमें अशुद्ध वायु अथवा रोग जन्तु प्रविष्ट न हो सकेंगे।